ISSN 2349-137X
Peer Reviewed

अनहद लोक

(प्रतिध्वनि कला संस्कृति की)

वर्ष-7, अंक-13
(अर्धवार्षिक शोध पत्रिका)

सम्पादक
डॉ. मधु रानी शुक्ला

सम्पादक मण्डल
डॉ. राजश्री रामकृष्ण, डॉ. मनीष कुमार मिश्रा,
डॉ. धनंजय चोपड़ा, डॉ. ज्योति सिन्हा

सहायक सम्पादक
सुश्री शाम्भवी शुक्ला

व्यंजना
आर्ट एण्ड कल्चर सोसायटी
109 डी/4, अबुबकरपुर, प्रीतमनगर, सुलेमसराय
प्रयागराज - 211011

अनहद लोक

(प्रतिध्वनि कला संस्कृति की)

सम्पादक : डॉ. मधु रानी शुक्ला

सम्पादक मण्डल : डॉ. राजश्री रामकृष्ण, डॉ. मनीष कुमार मिश्रा, डॉ. धनंजय चोपड़ा, डॉ. ज्योति सिन्हा

सहायक सम्पादक एवं कला संयोजन : सुश्री शाम्भवी शुक्ला

प्रकाशक

व्यंजना

(आर्ट एण्ड कल्चर सोसायटी)

109 डी/4, अबुबकरपुर, प्रीतमनगर

सुलेमसराय, प्रयागराज-211 011

मो. : 9838963188, 8419085095

Email: anhadlok.vyanjana@gmail.com

वेबसाइट : vyanjanasociety.com/anhad_lok

वितरक : पाठक पब्लिकेशन, महाजनी टोला, इलाहाबाद-211 011

फोन नं. 0532-2402073

मूल्य : 200/- प्रति अंक, पोस्टल चार्जेज अलग से

सदस्यता शुल्क

वार्षिक : 500/-

तीन वर्ष : 1500/-

आजीवन : 10,000/-

© सर्वाधिकार सुरक्षित

- रचनाकारो के विचार मौलिक हैं
- समस्त न्यायिक विवाद का क्षेत्र इलाहाबाद न्यायालय होगा

मुद्रक : विकास कंप्यूटर एंड प्रिंटर्स, ट्रोनिका सिटी, लोनी, ग़ाज़ियाबाद-201 102

मार्गदर्शन बोर्ड :

डॉ. सोनल मानसिंह, पं. विश्वमोहन भट्ट, पं. भजन सपोरी, पं. रोनू मजुमदार, पं. विजय शंकर मिश्र, पं. रामकृष्ण दास 'नादरंग', प्रो. कमलेश दत्त त्रिपाठी, प्रो. चित्तरंजन ज्योतिषी, प्रो. ऋत्विक् सान्याल, प्रो. दीप्ति ओमचारी भल्ला, प्रो. के. शशि कुमार, डॉ. राजेश मिश्रा, डॉ. आशा आस्थाना

सहयोगी मंडल :

प्रो. संगीता पंडित, प्रो. लावण्य कीर्ति सिंह 'काब्या', प्रो. निशा झा, प्रो. प्रभा भारद्वाज, प्रो. नीलम पॉल, प्रो. अर्चना अंभोरे, डॉ. राम शंकर, डॉ. इंदु शर्मा, डॉ. सुरेंद्र कुमारी, प्रो. भावना ग्रोवर, डॉ. अंबिका कश्यप, डॉ. स्नेहाशीष दास, डॉ. सुजाता व्यास, डॉ. कस्तूरी पाइगुड़े राणे, डॉ. शान्ति महेश, डॉ. कल्पना दुबे

संगीत नाटक अकादेमी
के
सहयोग से प्रकाशित

संगीत नाटक अकादेमी

कबीरा जब हम पैदा हुए जग हँसे हम रोये, ऐसी करनी कर चलो, हम हँसे जग रोये

अनहद लोक का यह अंक आप सभी को सौंपते हुए हर्ष का अनुभव हो रहा है, थोड़ा वक्त लगा स्थिर होने में क्यूँकी बीते माह तो विषम रहे कोरोना काल के ग्रास ने लगातार पिछले देढ़ वर्षों में अनेक कलाविदों को लीला, प्रतिदिन किसी न किसी हृदय विदारक घटना की सूचना पाकर हम असहाय से भगवान से सभी की रक्षा की प्रार्थना कर रहे थे एक पर एक आघात हमारे धैर्य को तोड़ रहे थे, हम ईश्वर को याद करते हुए लगातार नकारात्मक माहौल में जी रहे थे समाचार जगत से सानिध्य का तो मन ही नहीं होता था साथ ही सोशल मीडिया से जुड़ने में भी डर लगने लगा था हर वक्त भय बना रहता कि कहीं किसी अप्रिय घटना से परिचित न होना पड़े।

आध्यात्म तथा रस से परिपूर्ण गायकी के सशक्त हस्ताक्षर पं. जसराज जी का संगीत के क्षेत्र में अमूल्य योगदान रहा, अपनी स्वयं की सृजित गायकी से लोगों के मन पर अमिट छाप छोड़ी है उनका अचानक जाना स्तब्ध कर गया। सितार के प्रख्यात कलाकार, दिल्ली वि.वि से सेवा निवृत्त पद्मविभूषण पं. देबू चौधरी जी का जाना हमारी व्यक्तिगत क्षति रही अनहद लोक पत्रिका के आप मार्गदर्शन मंडल के वरीष्ठतम सदस्य थे, आपका स्नेह व आशीर्वाद पत्रिका के प्रकाशन के पूर्व से उनके जीवन काल के अन्तिम समय तक अनवरत जारी रहा, उनके साथ ही कोरोना बीमारी से लड़ते हुए अपनी जिन्दगी को हार जाने वाले उनके पुत्र पं. प्रतीक चौधरी का जाना सम्पूर्ण कला जगत को तोड़ गया, सुदर्शन व्यक्तित्व, उच्चकोटि के कलाकार एवं अत्यन्त व्यहवारिक व मृदुभाषी डॉ. प्रतीक जी दिल्ली वि. वि. में सितार के प्रोफेसर पद पर कार्यरत रहे अनेक शोधार्थियों को आपका मार्ग दर्शन मिला साथ ही सितार के लोकप्रिय गुरू भी रहे। कितने कलाकारों से चर्चा होती रही और वो प्रतीक जी के दुःख से विमुख हो ही नहीं पा रहे थे।

मृदुभाषी, हँसमुख स्वभाव के धनी व पदम् भूषण से सम्मानित पं. राजन मिश्रा का जाना तो जैसे गायन जगत में एक शून्यता को उपजा गया वो जब मंच पर गायन के लिए बैठते तो मानो ईश्वर से तादात्म्य कर लेते एक-एक सुर आज भी कानों में गूंजते हैं माधूर्य, ओज व प्रसाद गुण से युक्त वाणी से आध्यात्मिक गायकी की भरपायी असम्भव है।

गायन, वादन एवं नृत्य की त्रिवेणी में निष्णात, मृदुभाषी, स्वाभीमानी पं. अनुपम राय जी का जाना अत्यन्त मर्माहित कर गया हमारे प्यारे अनुपम भईया का मार्ग दर्शन अनहद लोक पत्रिका को निरन्तर मिलता रहा, कार्य की प्रशंसा से जो आत्मबल मिलता था वो रिक्तता अब कभी पूरी न हो पायेगी।

सहज, सरल, मृदुभाषी पद्मश्री से सम्मानित गुरूअप्पा चेट्टी, कलमकारी के अद्भुत कलाकार रहे, जिनकी कलाकृतियाँ अमूल्य है कितने ही विधार्थियों को आपने अपनी कला से अभिसिंचित किया है उनका जाना दुखद रहा।

सिने समीक्षक नेशनल अवार्ड से सम्मानित श्री सुनील मिश्र, नाटककार, लेखक तथा संस्कृति कर्मी रहे उनका जाना हृदय पर बहुत बड़ा आघात रहा, आपने मध्य प्रदेश संस्कृति विभाग में रहते हुए कला जगत को अमूल्य योगदान दिया है। आपने व्यंजना संस्था को मध्य प्रदेश संस्कृति विभाग के साथ मिलकर वैश्विक सन्दर्भ में शिव शक्ति विषय पर इंटरनेशनल कांफ्रेन्स आयोजित करने में जो सहयोग दिया, वो अनिवर्चनीय है। डॉ. योगेन्द्र प्रताप सिंह, निदेशक, अयोध्या शोध संस्थान का राम साहित्य पर अद्भुत काम था तथा जैसे वो रामकाज के लिए ही बने थे देश-विदेश की यात्राएँ कर उन्होंने अयोध्या शोध संस्थान को विश्वविख्यात किया साथ ही उत्तर प्रदेश संस्कृति विभाग से उन्होंने अनेक सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन कर कला जगत को अनुपम योगदान दिया। ज्योतिष, विज्ञान, साहित्य, संस्कृति में निष्णात एवं वरिष्ठ पत्रकार डॉ. राम नरेश त्रिपाठी जी का जाना व्यक्तिगत हानि थी आपका स्नेह सानिध्य व्यंजना परिवार को हमेशा मिला अनहद लोक के अनेक अंको में आपने अपनें सारगर्भित लेख भी लिखे, आपकी रिक्तता हमेशा महसूस होगी।

अवधी संस्कृति के अभूतपूर्व ज्ञाता डॉ. योगेश प्रवीण जी का जाना शून्यता पैदा कर गया कर्मठ, निश्छल, सारगर्भित ज्ञान से परिपूर्ण और उसको व्यक्त करने की रोचक शैली अपनी माटी की सोंधी महक से जन-जन को जोड़ जाती थी, वो शून्यता शायद ही कहीं भर पाये।

सरल एवं मधुर कर्नाटक शैली के वॉयलिन वादक व पदमभूषण से सम्मानित विद्वान टी. एन. कृष्णन जी कला रसिकों के मन में अमिट छाप छोड़ गये। मित्रा व वॉयलिन वादिका डॉ. सुवर्णा खुण्टिया एवं सितार वादिका डॉ. रश्मि दीक्षित जी का अल्पायु में जाना स्तब्ध कर गया। पद्मभूषण से सम्मानित विदुषी कपिला वात्सायन जी का कला जगत को अमूल्य योगदान रहा कला तथा शास्त्रा दोनों में समान रूप से अधिकार रखने वाली तथा अपने अन्तिम समय पर कला जगत में सक्रिय रहने वाली कपिला जी का जाना जो रिक्ति कर गया उसकी भरपायी असम्भव है। सुप्रसिद्ध गायक उस्ताद गुलाम मुस्तफ़ा ख़ाँ जो ख्याल व ठुमरी दोनों को ही सामन अधिकार से गाते थे वो भी काल के ग्रास बने। नाट्य विद् डॉ. अनुपम आनन्द, आचार्य गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव, लेखक श्री हरीशचन्द्र श्रीवास्तव तथा सितार वादक श्री सतीश चन्द्र श्रीवास्तव का जाना संगीत जगत की क्षति रही।

कुचिपुड़ी नृत्यांगना पद्मश्री से सम्मानित विदुषी शोभानायडू का जाना एक प्रबुद्ध नृत्यांगना तथा गुरू की क्षति है, विद्वान पी. एस. नारायणस्वामी, विदुषी टी. एस. रामा, विदुषी परसाला बी. पुन्नम्मल, रंगमंच निदेशक श्री बंसी कॉल, निदेशक इब्राहिम अल्काजी, श्री अनुपम श्याम जी का जाना दुखद रहा है। गायक श्री सारथी चटर्जी, तबला वादक श्री सरित दास, ध्रुपद गायक पं. संजय कुमार मल्लिक, गुरू व लेखिका श्रीमति महारानी शर्मा, सुप्रसिद्ध लेखिका, कवियित्री, कलाविद् पद्मा सचदेव, समाज सेवी सुन्दर लाल बहुगुणा का जाना असहय वेदना दे गया, वरिष्ठ कला समीक्षक सुनील कोठारी जी के जाने से कला समिक्षा के क्षेत्र में रिक्ति आयी, स्पिक मैके से जुड़े अनेक संगीत सेवियों का जाना भी दुखद रहा, हँसमुख स्वभाव की जीवंत महिला डॉ. टी. गंगादेवी जी संगीत की विद्वान थीं, अनेक सांस्कृतिक आयोजनो, बैठकों में उनका सानिध्य प्राप्त था विवेकशील, स्पष्ट वक्ता, सबका बहुत ध्यान रखने वाली उनका जाना कला जगत की अपूराणीय क्षति हैं साथ ही स्पिक मैके जयपुर राजस्थान के कर्मठ आयोजक संदीप चन्दोक जी तथा दिल्ली के अंशुमान पाण्डेय जीका जाना दुखद रहा।

इण्डिया टी.वी. के वरिष्ठ पत्रकार रोहित सरदाना का जाना मात्र मिडिया जगत को ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारतवर्ष को झकझोर गया। कुछ फिल्म कलाकारों का जाना यद्यपि वो कोरोना से नहीं रहा फिर भी इसी काल में हुआ ट्रेजडी किंग दिलीप कुमार ने अभिनय के क्षेत्र में जो लकीर खींची उस पर चलकर ही अनेक युवाओं ने अपनी कला यात्रा शुरू की, इरफ़ान ख़ान, ऋषि कपूर, सुशांत सिंह राजपूत, सुरेखा सिकरी का जाना अत्यन्त दुखद रहा।

अनेक सफल फिल्मों के निर्माता बासु चटर्जी भी इसी समय हमें छोड़ गये, 'इतनी शक्ति हमें देना दाता', 'सावन को आने दो' जैसे गीतों के शब्द रचनाकार श्री अभिलाष भी चले गये, अभिनेता अनिल सूरी, फिल्म संगीतकार श्रवण राठौर तथा तेलगु अभिनेता जयप्रकाश रेड्डी, 'कहीं दूर जब दिन ढल जाये' गीत को रचने वाले श्री योगेश गौर, दक्षिण भारतीय फिल्मी गायक एस. बी. बाला सुब्रणयम्, अभिनेत्री कुमकुम, निम्मी, शशिकला, श्रीपदा, हास्य अभिनेता जगदीप, नृत्य निदेशक सरोज खान, अभिनेता आसिफ़ बासरा, सौमित्र चटर्जी, राजीव कपूर, कम्पोजर एवं सिंगर वाज़िद ख़ान, विक्रमजीत कांडपाल जैसे महान कलाकारों का जाना फिल्म जगत की अपूरणीय क्षति है।

कवि राहत इंदौरी, कुँवर बेचैन, प्रो. बुद्धदेव दास गुप्ता, गायिका विदुषी शान्ति हीरानन्द, लोक का सशक्त हस्ताक्षर डॉ. शान्ति जैन, प्रख्यात सेरामिस्ट एवं शिल्पकार ज्योत्सना ज्योति भट्ट, शास्त्रीय गायक इकबाल अहमद खाँ, आर्ट तथा मूर्तिकला से जुड़ी ज़रीना हाशमी, भजन गायक नरेन्द्र चंचल, प्रयाग संगीत समिति के अध्यक्ष डॉ. मिलन मुखर्जी, कोषाध्यक्ष आदित्य नारायण, उर्दू लेखक शमर्सुर रहमान फ़ारुखी, हिन्दी के मूर्ध्यन्य लेखक नरेन्द्र कोहली, लेखक मंजूर अहतेशम, पत्रकार शेष नारायण सिंह, कन्नड़ कवि एवं संस्कृतज्ञ गोंविन्दाचार्य, तेलगु कवि, पत्रकार एवं लेखिका देवप्रिया, फिल्म मेकर एवं लेखिका सादिया देहलवी, अभिनेता तथा पत्रकार आर. वी. स्मिथ का जाना मर्माहित कर गया, खेल जगत में कीर्तिमान हासिल करने वाले धावक मिल्खा सिंह का जाना तो अपूरणीय क्षति है।

इनके अतिरिक्त अनेक ऐसे नाम हैं जिनके योगदान से कला संस्कृति समृद्ध हुई है, जिन्होंने भारतवर्ष के गौरव को बढ़ाया है उनकी आत्मा की शान्ति की हम कामना करते हैं। मैं सभी को हृदय से श्रद्धासुमन अर्पित करती हूँ, जीवन रूकता नहीं अतः गातिशील रहा, मन विछोह से भरा होने पर भी काम तो चलते ही रहे, अतः अनहद लोक का यह अंक भी आया, कुछ त्रुटियाँ अवश्य होंगी उनके लिए क्षमा याचना करते हुए।

—डॉ. मधु रानी शुक्ला

अनुक्रम

गान

1. दक्षिण भारतीय शास्त्रीय संगीत मे प्रचलित रचनाएं — डॉ. राजश्री रामकृष्ण अनुत्तमा मुरली — 13
2. सांगीतिक साहित्य में गंगा — डॉ रामशंकर — 16
3. हवेली संगीत एवं अष्टछाप कवि — डा. स्मिता पाण्डेय — 19
4. महाराष्ट्र की कीर्तन परंपरा — डॉ. मंजुश्री खेरडे — 21

आतोद्य

5. प्रमुख कठिन लयकारियों के गणितीय सूत्र — प्रो. पं. विद्याधर प्रसाद मिश्र प्रीति केसरवानी — 27
6. भारतीय वाङ्मय में तन्त्री वाद्यों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि — डॉ. रितु सिंह — 32
7. शास्त्रीय ताल वाद्य (तबला, पखावज) उत्पत्ति के संदर्भ में विभिन्न मत एवं उपयोगिता — डॉ. शिव नारायण मिश्र — 38

शास्त्र

8. भरतनाट्यशास्त्र पश्यन्ति की उत्तरआधुनिक व्युत्पत्तियां — डॉ. गौतम चटर्जी — 47
9. अध्वदर्शक स्वर — प्रो. निशा झा — 53
10. RâgaVarâ7 i in the Early Telugu Publications – An Overview — Dr Rajshri Ramakrishna, Pranathi G — 56
11. थाट, स्केल तथा रागः कुछ उत्तर - आधुनिक अवधारणाएँ — गिरीश प्रेमलाल चंद्रिकापुरे — 65

संस्कृति

12. संत कबीर एवं मीता का दार्शनिक परिदृष्य — डॉ. अनामिका द्विवेदी — 71
13. शास्त्रीय संगीत के प्रचार-प्रसार में मध्यप्रदेश के संगीतज्ञो का योगदान (1 नवम्बर 1956 से अद्यतन तक) — नन्दलाल सिंह रघुवंशी — 76
14. किन्नौर जनपद का सांस्कृतिक अनुशीलन — डॉ. दिनेश कुमारी नेगी — 82
15. संगीत के विकास में भक्तिकाल का योगदान — शिवेश कुमार — 87

थाती

16. कजरी विकास की उर्वरा भूमि — मन्नू यादव — 93
17. चंबा जनपद की प्रमुख लोक गाथाएं एवं मेले — छविंदर कुमार — 98

सामायिकी

18. Role of Music in Indian Economy — Ruma Chakraborty — 107
19. हिन्दी सिनेमा और स्त्री जीवन — डॉ संतोष — 111

20. Music Career in the Post-Globalisation ERA — Dr. Keshavchaitanya Kunte — 115
21. साहित्य और राजसत्ता — डॉ. वीना सुमन — 124
22. भारतीय शास्त्रीय संगीत के नवीन आयाम (रोहिलखंड के विशेष सन्दर्भ में) — सविता चौहान — 129
23. उत्तर प्रदेश की संगीत पत्रिकाएँ : ऐतिहासिक अभिज्ञान — विनोद कुमार — 135

सौन्दर्य

24. लोक संगीत में सौन्दर्य — डॉ. रश्मि गुप्ता — 141

व्यक्तित्व

25. राहुलसांकृत्यायनः - साहित्य का महापण्डित — शंकर लाल माहेश्वरी — 147
26. संगीत गुरु स्वामी हरिदास की संगीत चेतना — डॉ. संगीता घोष — 150
27. कभी हार न मानने वाला कलाकार (आरा) — अरविन्द कुमार — 155
28. त्रिलोचन की सामाजिक सचेतनता और वैश्विकरण — पुष्पा मल्ला — 157

अनुभूति

29. विरल अनुभवों की सूक्ष्म ज्यामिति का काव्य संसार — डॉ. मुकेश कुमार मिरोठा — 163

साहित्यिकी

30. अमृतलाल नागर की सिने-पटकथा — कुमार नीरज — 171
31. जैन साहित्य में रामकाव्य (विशेष संदर्भ स्वयंभू और पुष्पदंत) — डॉ. शशिकला राय — 175
32. गजल गायकी ने संगीत के क्षेत्र में अपना एक अलग — निलेश चन्द्र त्रिवेदी — 180
33. दलित साहित्य और वैचारिकी का अन्तः सम्बंध — मुकेश कुमार मिरोठा — 183

अंकन

34. भारतीय कला में वस्तुनिरपेक्ष कलाकारों का योगदान — डॉ. हेमन्त कुमार राय, गगन कुमार — 191
35. भारतीय लघु चित्रण शैली में राम — डॉ. मीरू दुसेजा — 197

साक्षात्कार

36. पंडित देबू चौधरी से वर्ष-2009 में यह साक्षात्कार लिया गया था — शशिप्रभा तिवारी — 201
37. Music in Tourism and Prospects: A Case study of Sikkim — Manoj Rai, Surendra Kumar, Sanjoy Bandopadhyay — 204
38. गुरु-शिष्य शिक्षण परम्परा के परिप्रेक्ष्य में ऑनलाईन संगीत शिक्षा — महुआ बनर्जी, डॉ. कावेरी त्रिपाठी — 213
39. ग़ज़ल गायकी के दो महानायकों पद्मभूषण जगजीत सिंह जी एवं उस्ताद गुलाम अली जी का सांगीतिक परिचय — डॉ. स्मृति त्रिपाठी — 218
40. सांगीतिक ग्रंथों की सम-सामयिकता — डॉ. विनय कुमार मिश्र — 223
41. नहीं रहे सुरों के साधक — पं. विजयशंकर मिश्र — 226
42. पूर्वाञ्चल लोक कलाओं में सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना का प्रतिबिम्ब — डॉ. सुरेंद्र कुमार — 229

गान

दक्षिण भारतीय शास्त्रीय संगीत मे प्रचलित रचनाएं

डॉ. राजश्री रामकृष्ण

एसोसिएट प्रोफेसर व विभागाध्यक्ष
भारतीय संगीत विभाग
मद्रास विश्वविद्यालय
चेपॉक, चेन्नई - 600005

अनुत्तमा मुरली

शोधार्थी
भारतीय संगीत विभाग
मद्रास विश्वविद्यालय
चेपॉक, चेन्नई - 600005

भारतीय शास्त्रीय संगीत में जाने दो मुख्य प्रकार हैं - उत्तर भारतीय संगीत अथवा हिंदुस्थानी शास्त्रीय संगीत और दक्षिण भारतीय संगीत अथवा कर्नाटक शास्त्रीय संगीत। इन दोनों पद्धतियों को अपने से भिन्न करने वाली कुछ विशेषताएं हैं, उनकी रचनाएं, रचनाकार, साहित्य आदि। इस अनुच्छेद में प्रचलित दक्षिण भारतीय शास्त्रीय संगीत की रचनाओं का एक सारांश देने की कोशिश की गयी है। मुख्य विचार-विमर्श पर जाने से पहले दक्षिण भारतीय शास्त्रीय संगीत में रचनाओं के विभाजन पे कुछ जानकारी दी गयी है।

दक्षिण भारतीय संगीत के रचनाओं में कल्पित और मनोधर्म संगीत का वर्गीकरण ज्यादा प्रचलित है। कल्पित संगीत में उन रचनाओं को गिना जाता है जो की पहले से रची गयीं हों। इनमें गीतम्, वर्णम्,कीर्तनम्, कृति, पल्लवि, स्वरजति इत्यादि रचनाएँ हैं। मनोधर्म संगीत की पहलुएँ काल्पनिक और समयोचित होती हैं। मनोधर्म संगीत में कलाकार अपनी कल्पना के अनुसार किसी राग या किसी रचना को बुनता है। यह पूर्व रचित नहीं होती। उदाहरण के लिए आलाप/रागम्, निरवल, कल्पनास्वरम् और तानम्। हिंदुस्थानी संगीत में निबद्ध (जो ताल में बद्ध हो) और अनिबद्ध गान (जो ताल में बद्ध न हो) का वर्गीकरण प्रख्यात है। अगर दक्षिण भारतीय संगीत के रचनाओं को निबद्ध और अनिबद्ध वर्गीकरण के द्वारा सम्प्रेषित करना हो, तो निबद्ध गान में गीतम्, वर्णम्, कृति/कीर्तनम, पल्लवि, निरवल, कल्पनास्वरम् और अनिबद्ध गान में आलापना /रागम् और तानम् यह बिंदुएं आएँगी।

मनोधर्म संगीत के पहलुओं पर विवरण देकर फिर कल्पित संगीत पर चर्चा की गयी है। दक्षिण भारतीय मनोधर्म संगीत में नीचे दी गयी पहलुएँ पायी जाती हैं -

१) **रागम् / आलापना / राग आलापना**–राग के रूप को स्थापित करने के लिए आकार, उकार, इकार, नकार, 'तदरी', 'न' जैसे अक्षरों को लेकर, राग के अलग अलग पकड़ों को प्रस्तुत करने की प्रथा ही दक्षिण भारतीय संगीत में रागम्/आलापना/राग आलापना कहलाता है। यह अनिबद्ध संगीत का एक प्रकार है। इसे कृति /कीर्तनम् या पल्लवि पेश करने से पहले प्रस्तुत किया जाता है। इसकी तुलना हिंदुस्थानी संगीत के आलाप से की जा सकती है, किन्तु फर्क इतना है कि दक्षिण भारतीय संगीत में आलाप कृति/कीर्तनम् या पल्लवि से पहले विस्तारिक रूप से किया जाता है और बंदिश के बीच नहीं किया जाता, पर हिंदुस्थानी संगीत में बंदिश से पहले आलाप संक्षेप में और बंदिश के बीच में बोल आलाप के रूप में लिया जाता है।

२) **निरवल -** रचना में किसी साहित्य की एक सार्थक पंक्ति को लेकर उसको राग में विकसित करने की प्रथा को दक्षिण भारतीय संगीत में निरवल कहते हैं। यह ठाय लय और द्रुत लय में पेश की जाती है। इसकी तुलना हिंदुस्थानी संगीत के बोल आलाप से की जा सकती है। परन्तु निरवल करते

समय बोल बाँट को नहीं बदला जा सकता। उदहारण के लिए अगर कोई शब्द का मूल स्थान ताल के 6,१0 या 12 इत्यादि मात्रा पर हो, तो निरवल करते समय भी कलाकार को ध्यान रखना चाहिए की यह शब्द वही स्थान मे रहे। बोल आलाप में यह पहलू नहीं देखा जाता।

३) **कल्पनास्वरम् -** कल्पनास्वरम् कृति/कीर्तनम् या पल्लवि के अंत में, निरवल खत्म होने पर प्रस्तुत करते हैं। आधे आवर्तन से भी कम के सरगम से शुरू होकर कई आवर्तनों के सरगम लेकर फिर मुखड़े पर आने की प्रथा को कल्पनास्वरम् कहते हैं। यह ठाय लय, दुगुन और कभी कभी तिगुण में भी किया जाता है।

४) **तानम् -** 'रागम् तानम् पल्लवि' के प्रस्तुति में तानम् की पेशकश होती है। तानम् में 'आनंत तानम् त', इन शब्दों को लेकर द्रुत लय में रागानुसार अलंकारिक पकड़ों का प्रदर्शन किया जाता है। यह पारम्परिक रूप से अनिबद्ध होता है, पर कुछ कलाकार तानम् प्रदर्शन मे ताल और मृदंग का साथ लेते हैं।

मनोधर्म संगीत का संक्षेप में वर्णन करने के बाद, कल्पित संगीत में आने वाली कल्पित रचनाओं का एक एक कर के नीचे संक्षेप में वर्णन किया गया है।

१) **गीतम् -** गीतम् ज्यादा कर के विद्यार्थी वर्ग में सिखाया जाता है, मंच में नहीं पेश किया जाता। गीतम् अधिक तर बांडीरा भाषा में पाए जाते हैं। इस रचना में दो या तीन अंतरे होते हैं जिनका कोई निश्चित नाम नहीं। हर एक में साहित्य की कुछ पंक्तियाँ रची जाती हैं। हर अंतरे की धुन समान होती है, सिर्फ साहित्य का फर्क होता है। इस रचना की यह विशेषता है की हर एक ठेके पर एक स्वर और ज्यादातर हर एक स्वर पे एक साहित्य रचा जाता है, जिससे गायक को स्वर ज्ञान और वादकों को बोइंग (वायलिन में), प्लकिंग (वीणा में), तथा ब्लोइंग (बांसुरी में) का अभ्यास होता है। नीचे मलहारी राग में एक गीतम का उदाहरण दिया गया है। यह गीतम, पारंपरिक रूप से, संगीत के विद्यार्थियों को सर्व प्रथम सिखाया जाता है।

राग - मलहरी

ताल - रूपक (६ मात्रा - १ धृतम और १ चतुस्र जाती लघु। इसे '' व।'' ऐसे दिखाया जाता है)

रचनाकार - पुरंदरदास

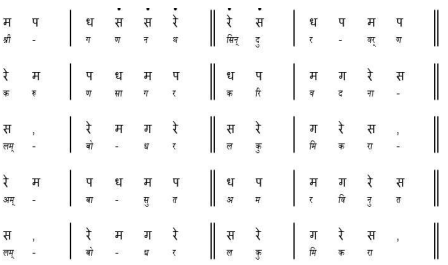

२) स्वरजति - स्वरजति रचना शास्त्रीय संगीत के शिक्षण क्रम में भी आता है और मंच पर भी पेश किया जाता है। खास कर, श्यामा शास्त्री, इनकी स्वराजतियाँ मंच पर अधिक पेश किये जाते हैं। यह रचना स्थायी से शुरू होती है, जिसे पल्लवि कहते हैं। इसके कई अंतरे होते हैं जिसे चरणम् कहते हैं। सरगम और उसके उपयुक्त साहित्य, दोनों को पेश किया जाता है। यह ज्यादा करके तेलुगु भाषा में रचे होते हैं। इस रचना मे भी, गीतम् जैसे, हर एक ठेके पर एक स्वर और हर एक स्वर पे एक साहित्य रचा जाता है। कुछ स्वरजति में निरवल, कल्पनास्वरम् का भी प्रदर्शन किया जाता है।

३) वर्णम् - इस रचना में सरगम और साहित्य को बराबर का संतुलन होता है। वर्णम् के दो मुख्या प्रकार हैं - तान वर्णम् और पद वर्णम। पद वर्णम् का प्रयोग नृत्य प्रदर्शनों बे ज्यादा होता है। पल्लवि, अनुपल्लवि, मुक्ताई स्वर, चरणम्, चिट्टस्वरम् ऐसे इसके भाग होते हैं। मुक्ताई स्वर और चिट्ट स्वर सरगम युक्त होते हैं। कई वर्णम् में इन खण्डों में भी साहित्य पाये जाते हैं। वर्णम् में अकार,आकार, इकार, मकार आदि पर गौर देकर साहित्य रचा जाता है। वर्णम् के धुन राग के मुख्य प्रयोग, पक्कड़ और अन्य स्वरों पर गौर करके रचा जाता है। अक्सर संगीत महफिल के आरम्भ मे कलाकार वर्णम प्रस्तुत करता है, पर यह अनिवार्य नहीं। वर्णम् अधिकतर तेलुगु भाषा में रचे मिलते हैं। तामील भाषा में भी

वर्णम् पाए जाते हैं। नीचे मोहनम वर्णम के पल्लवी का उदाहरण दिया गया है।

राग - मोहनम

ताल - आदि (16 मात्रा - 1 चतुस्र जाती लघु और 2 धृतम - इसे "। ० ० " दिखाया जाता है)

रचनाकार - रामनाथपुरम श्रीनिवास अय्यंगार

४) कीर्तनम्/कृति - आम तोर पर कीर्तनम् और कृति इन दोनों में पल्लवि, अनुपल्लवि और चरणम् ऐसे अंग देखने को मिलता है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे अंग जैसे स्वरसहित्य, चिट्टस्वरम् रचनाकार के शैली के अनुसार पाए जाते हैं। कुछ कलाकारों का मानना है कि कीर्तनम् और कृति दोनों अलग किस्म की रचनाएं होती हैं और कई दूसरों का यह कि इनमे कोई फरक नहीं। कुछ कलाकारों का यह मानना है कि जिन रचनाओं में पल्लवि और उसके बाद कई अंतरे होते है वह कीर्तनम् और जिनमे पल्लवि अनुपल्लवि और चरणम् होते हैं वह कृति। कईयों का मानना है की रचना का चलन, ताल और उसकी गति से ही रचना का कीर्तनम् या कृति होने का निर्णय होता है। कभी कभी किसी एक वाग्गेयकार (जो रचना की धुन और साहित्य दोनों का निर्माता है) की रचनाओं को कीर्तनम् और किसी दूसरे वाग्गेयकार की रचनाओं को कृति मानी जाती हैं। परन्तु दक्षिण भारतीय संगीत में मौजूदा सभी प्रकाशनों में दोनों ही शब्दों का प्रयोग, बिना किसी भेद के दिखाई पड़ते हैं।

आम तोर पर कीर्तनम्/कृति के पल्लवि, अनुपल्लवि, चरणम् ऐसे तीन भाग होते हैं। कई रचनाओं में अनेक चरणम् पाए जाते हैं। अनेक कृतियों में स्वरसहित्य, मध्यमकालसाहित्य (द्रुत लाय में साहित्य) पाए जाते हैं। कीर्तन या कृति पेश करने के दौरान आलाप, निरवल, कल्पनास्वरम् गाने की प्रथा है। कीर्तनम्/कृति तेलुगु, संस्कृत, कन्नड़ा, तामील भाषा में रचे मिलते हैं।

५) रागम् तानम् पल्लवि - रागम् तानम् पल्लवि में सिर्फ पल्लवि पूर्व रचित होती है। रागम् और तानम् की व्याख्या मनोधर्म संगीत में दी गयी है। पल्लवि १ आवर्तन में रची साहित्य की एक सार्थक पंक्ति होती है। पल्लवी का साहित्य तेलुगु, संस्कृत और तामील भाषा में ज्यादा रचे मिलते हैं। शुरुवात में राग आलाप और तानम् विस्तार रूप में किया जाता है। फिर पल्लवि के साहित्य को निरवल लेकर विस्तृत किया जाता है। निरवल ठाय लय और द्रुत लय में होता है। इसके बाद पल्लवि को ठाय लय, दगुण, दुगुन और तिगुण में पेश किया जाता है। इसके बाद कल्पनास्वरम् पेश किये जाते हैं। रागम् तानम् पल्लवि की पेशकश हर एक कलाकार कि व्यक्तित्व क्षमता और रियाज पे निर्भर है। बहुत कलाकार इसमें मौजूदा लयकारी के कारण रागम् तानम् पल्लवि की तुलना हिंदुस्थानी संगीत के 'ध्रुपद' गायन से करते हैं। यह इसलिए कि तानम् और आलाप जोड़ झाला में काफी समानता होती है। इसी तरह इन दोनों में लयकारी में भी समानता पायी जाती है।

इस अध्ययन से नीचे दिए गए कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

निष्कर्ष

१) दक्षिण भारतीय संगीत की रचनायेन हिंदुस्थानी संगीत की रचनाओं से काफी भिन्न होती हैं। इनकी भिन्नता के कुछ पहलू हैं रचनाओं के विभाग, भाषा, संरचन और इसमें पेश किये जाने वाले काल्पनिक तत्त्व।

२) दक्षिण भारतीय संगीत में कल्पित और मनोधर्म संगीत का वर्गीकरण ज्यादा प्रचलित है।

३) दक्षिण भारतीय शास्त्रीय संगीत के काल्पनिक या मनोधर्म प्रदर्शन में, हिंदुस्थानी संगीत की तुलना में, सरगम का ज्यादा प्रयोग होता है।

४) हिंदुस्थानी संगीत की तुलना में दक्षिण भारतीय संगीत की रचनाओं में साहित्य ज़्यादा होते हैं।

ग्रन्थसूची

बा र देवधर, राग बोध (भाग १ - ६), श्रीमति रोहिणी गोगटे, मुंबई, १९९८

सांगीतिक साहित्य में गंगा

डॉ रामशंकर (सहायक आचार्य)

गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी

तुलसीदास जी ने अपने महाकाव्य में गंगा को बहुत पूजनीय स्थान दिया। गंगा को देवसरि तथा सुरसरि कह कर संबोधित करते हैं जिससे तुलसीदास जी के अंतर्मन में मां गंगा के प्रति लगाओ .ष्टिगोचर होता है। स्वयं तुलसीदास जी के जीवन का एक लंबा और महत्वपूर्ण कालखंड गंगा के किनारे गंग धारा की अनगिनत लहरों के साथ व्यतीत हुआ। यह समय महत्वपूर्ण इसलिए भी है क्योंकि इसी कालखंड में तुलसीदास जी ने श्रीरामचरितमानस जैसे महाकाव्य की रचना की। इस महाकाव्य में जब भी पावनता, पवित्रता और अविरलता कि बात करते हैं तब गंगा का उद्धरण जरूर देते हैं श्री रामचरितमानस में बहुत से किरदार गंगा के आसपास ही अपना जीवन बसर करते हैं, जबकि जो गंगा से दूर रहते हैं वह समय-समय पर गंगा स्नान करके स्वयं को पुण्य का भागी समझते हैं। स्वयं भगवान श्री राम के गंगा स्नान का भी जिक्र है। सबसे पहले मुनि विश्वामित्र के साथ जनकपुर जाते समय मार्ग में गंगा के अवतरण की कथा गंगा तट पर मुनि विश्वामित्र से सुनते हैं तथा गंगा स्नान करते हैं-

चले राम लछिमन मुनि संगा।
गए जहां जग पावनी गंगा।।
गाधि सुनू सब कथा सुहाई।
जेहि प्रकार सुरसरि महि आई।।
तब प्रभु रिसिन्ह समेत नहाए।
बिबिध दान महि देवन्हि पाए।। 1

अर्थ - श्री राम जी और लक्ष्मण जी मुनि के साथ चले। वह वहां गए जहां जगत को पवित्र करने वाली गंगाजी थी। महाराज गाधी के पुत्र विश्वामित्र ने वह सब कथा कह सुनाई जिस प्रकार देव नदी गंगा जी पृथ्वी पर आई थी, तब प्रभु ने ऋषियों सहित गंगा जी में स्नान किया। ब्राह्मणों ने भांति भांति के दान पाये। पुनः वन जाते समय गंगा पार करके श्रीराम ने गंगा स्नान तथा पार्थिव का पूजन किया -

तब मज्जनु करी रघुकुल नाथा।
पूजि पारथिव नायउ माथा। 2

अर्थ - रघुकुल के स्वामी श्री रामचंद्र जी ने स्नान करके पार्थिव पूजा की और शिव जी को शीश नवाया इसी समय जानकी जी ने गंगा से विनती करते हुए कहा-

पति देवर संग कुसल बहोरी।
आई करौ जेहि पूजा तोरी।। 3

अर्थ -जिससे मैं पति और देवर के साथ कुशल पूर्वक लौट आ कर तुम्हारी पूजा करूंगी। आगे श्री रामचरितमानस में ही श्रीराम के लिए विभीषण ने रावण से कहा -

तात राम नहि नर भूपाला।
भुवनेश्वर कालहु कर काला।।
ब्रह्म अनामय अज भगवंता।
व्यापक अजित अनादि अनंता।। 4

अर्थात हे तात राम मनुष्यों की ही राजा नहीं हैं वह समस्त लोकों के स्वामी और काल के भी काल हैं वे वे (सम्पूर्ण यश श्री धर्म वैराग्य एवं ज्ञान के भंडार) भगवान हैं वह निरामय अर्थात विकार रहित, अजन्मा, व्यापक अजित, अनादि और अनंत ब्रह्म हैं। जब परम सत्ता स्वयं सपत्नीक गंगा स्नान करके गंगा पूजन कर रही है, तब गंगा के महत्व को लिखने और बताने के लिए और क्या कहा जा सकता है। तुलसीदास जी ने श्रीरामचरितमानस में गंगा जी को केवल नदी ही नहीं अपितु देवनदी तथा मां के रूप में चित्रित किया है।

मां गंगा आरोग्य प्रदान करती हैं, शरीर स्वस्थ तो होता ही है पाप रहित भी हो जाता है। इस धरा पर गंगा में जल नहीं अपितु जल रूप में अमृत प्रवाहमान है। पंडित रामाश्रय झा जी ने अपने पद में इस प्रकार कहा है -

निर्मल काया कर ले रे प्राणी,
धरती बहे जैसे अमृत धार।
हरि चरनंन ते निकस के आई,
ब्रह्म कमंडल रह्यो समाई।
शिव के शीश करे हुंकार।
धरती बहे जैसे अमृत धार।।

हिमगिरी ते हरिद्वार पे आई,
तीर्थराज ते काशी धाई।
जाए मिली सागर के द्वार।।
धरती बहे जैसे अमृत धार।।

गंगा गंगा कहु रे भाई,
जन्म जन्म के दुःख जाई।
किए दर्शन मज्जन एक बार।
धरती बहे जैसे अमृत धार।।

सुर नर मुनि जाके गुन गावे,
गंगा नाम सुमिर सुख पावे।
अगणित अधम किए निस्तार।
धरती बहे जैसे अमृत धार।।

भागीरथी सुरसरि जाके नाम,
और जान्ह्वी जाने जहान।
रामरंग जाकी महिमा अपार।
धरती बहे जैसे अमृत धार।। 5

मां गंगा का तट साहित्य तथा संगीत अथवा यूं कहें कि भारतीय संस्कृति के लिए बहुत उपजाऊ रहा है। साहित्यकार, संगीतकार, चित्रकार सभी ने अपनी कला के माध्यम से मां गंगा की सेवा की है। पंडित रामरंग जी ने अपने पद में इस प्रकार कहा है—

गंगा तोरे नियरे बसत नीक लागे,
दरस परस दुख दरिद्र भागे।
जेहि जेहि ठांव बहें मैया सुरसरि,
तहं तहं जन के भाग ना जाए कहि,
वेद पुराण नितहि जस गावे।।

जय भागीरथी गिरिवर नंदिनि,
जय जान्ह्वी जग की बंदिनि।
सुमिरत नाम सकल अघ भागे।।

धन वह धरती जहां गंगधारा,
धन वह देश नगर गांव पारा।
धन वह जन जिन गंगा ध्यावे।।

सुर नर मुनि जे बड़े महान
सांझ सवेरे करें स्नान।
गंगा गंगा सुमिर सुख पावे।।

शिव के शीश सोहे महारानी,
अघ मन उघरत परसत पानी।
राम रंग तोरे चरन सिर नावे।।

मां गंगा के तट पर भगवान की लीला का एक अंश हुआ अलग-अलग लेखक, गायक कलाकारों ने अपनी अपनी भाषा में इसे कहा और गाया है रामरंग संगीत रामायण में कुछ मनमोहक रचनाएं इस प्रकार हैं।

राग - बिहागडा (झपताल)

स्थाई - गंगा तीर पे ठाड़े रघुवीर, केवट पुकारे प्रभु नाव लावन कह्यो।

अंतरा - गंगा पार उतारिये सखा वेगी, केवट नाय सिर मरम वचन कह्यो।

राग - नट बिहाग (तीन ताल)

स्थाई - नैया ना चढ़ाऊँ तोहे पग धोये बिना मोरे महाराज।

अंतरा - तोरे पग धूरि की करनी, पाहन बनावे मुनि घरनी।

नैया बने नारी डर लागे राजा।

राग -खमाज (दीपचंदी)

स्थाई - प्रभु पग धुरी लगी, पाहन भई नारी।

जान के प्रभु मैं, नैया ना गवैन्हौ

अन्तरा- गंगा पार जान चाहो, चरण पखारन कहौ।

पार उतारी तोसे नाही उतराई चाहौ।

मां गंगा के महात्म्य को कहते हुए तमाम साहित्यकारों ने नेति नेति कहा है? समर्थ तथा पतित पावनी...गंगा को हमारा कोटि कोटि प्रणाम।

सन्दर्भ -

1- बाल कांड 211/1

2- अयोध्या कांड 102/1

3- अयोध्या कांड 102/3

4- सुन्दर कांड 38/1

5- शेष पद - पं. रामाश्रय झा रामरंग जी के डायरी से।

हवेली संगीत एवं अष्टछाप कवि

डा. स्मिता पाण्डेय

शोध छात्र, संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

जीवन के लक्ष्य अखंड आनंद की प्राप्ति के लिए मन, वचन और कर्म से भगवान की भक्ति आवश्यक है। भक्ति के लिए कीर्तन सर्वोत्कृष्ट साधन है। भारतीय संगीत कला भी धर्म का आधार लेकर ही विकसित हुई। मंदिरों में गाये जाने वाली संगीत परंपरा ही "हवेली संगीत" के नाम से भी जाना जाता है जिसकी स्थापना वल्लभाचार्य जी ने की थी।

श्री कृष्ण के प्रति विशुद्ध प्रेम ही पुष्टिमार्गीय भक्ति है। श्री वल्लभाचार्य की पुष्टिमार्गीय भक्ति में संगीत को सर्वाधिक महत्व दिया गया।

आचार्य ने कहा है -

"सेवकानां यथा लोके व्यवहारः प्रसिद्धयति।
तथा कार्य समप्यैंव सर्वेशां बृहमता ततः।।"

(नित्य नियम के 67 पाठ सिद्धान्त रहस्य श्लोक 7-8 पृष्ठ - 747)

देव-पूजन मनुष्य मात्र आराधना, उपासना, प्रार्थना, अर्चन, आरती, स्तुति अथवा कीर्तन के द्वारा करते हैं। हवेली में यह सब संगीत से ही होता है। पूजा की कोई भी क्रिया संगीत विहिन नही होती।

श्री नाथ जी का आठ झाँकियों में गायन करने हेतु "अष्टछाप" भक्त कवियों का भक्ति संगीत ही "पुष्टिमार्गीय" संगीत कहा जाता है। यहीं पुष्टिमार्गीय संगीत हवेलियों में प्रभु के समक्ष गाये जाने पर कालांतर में "हवेली संगीत" के नाम से जाना गया।

अष्टछाप की स्थापना गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने संवत् 1602 में की। विट्ठलनाथ जी ने अपने पिता वल्लभाचार्य के चार सबसे योग्य शिष्यों एवं अपने चार शिष्यों को मिलाकर अष्टछाप की स्थापना की।

1. कुंभनदास 2. सूरदास 3. परमानंददास 4. कष्णदास 5. गोविन्दस्वामी 6. नंददास 7. छीतस्वामी 8. चर्तुभुजदास।

अष्टछाप के आठों कीर्तनियां आठों झांकियों के कीर्तन में विशिष्ट ऋतु और काल के अनुसार राग-रागनियों में भगवत्कीर्तन किया करते थे।

पुष्टिमार्गीय संगीत के अष्टछाप कीर्तनकारों ने सर्वप्रथम कीर्तनकार का सम्मान श्री कुंभनदास जी को प्राप्त है। इन्होने निम्नलिखित पद का राग बिलावल ताल धमार में गान किया, जो आज भी प्रायः उष्णकाल में खंडिता के पद-गान के समय गाया जाता है-

सांझ के साँचे बोल तिहारे।
रजनी अनंत जागे नंदनंदन आये निपट सवारे॥1॥

आतुर भये नील पट ओटें पीरे बसन विसारे।
कुंभनदास प्रभु गोर्वधनधर भलेजु बचन प्रतिपारे॥2॥

अष्टछाप कवियों में सूरदास जी ने सूरसागर और सूरसारावली में अनेक राग-रागिनियों का वर्णन किया है। सूरसागर में इनके रचित 4936 पदों में निम्नलिखित रागों का उल्लेख मिलता है -

आसावरी, अड़ाना, झिंझोटी, विहाग, जंगला, मुल्तानी, धनाश्री, नायकी, जैजैवन्ती, गौड़, मेघमल्हार, अल्हैया, बिलावल, तोड़ी आदि।

सूरदास रचित छहों राग छत्तीसों रागिनी इक-इक नीकै गावैं री

(सूरसागर पद 1856 पृ. 698)

यह पंक्ति स्पष्ट बताती है कि उस समय मंदिरों में राग-रागिनी पद्धति प्रचलित थी। सूरदास जी मिश्र रागों का भी गायन करते थे-

"सारंग नट पूरबी मिलै राग अनुपम गाऊँ।"

महात्मा परमानंद ने श्रीनाथ जी के सेवा कीर्तन में सर्वस्व समर्पित कर उनकी लीला गाई। परमानंददास जी ने अपने आराध्य की लीला के विविध पक्षों का वर्णन करते हुए संप्रदाय में गाये जाने वाले पद रचे।

भगवद् विरह सम्बन्धी पद-

मेरो माई हरिनागर सो नेह।
जबतें दृष्टि परे मनमोहन तबते बिसर्‌यो गेह।।

कोऊ निंदो कोऊ बंदो मो मन गयो संदेह।
सरिता सिंधु मिली परमानंद भयो एकरस नेह।।

अष्टछाप कवियों में कृष्णदास जी के अधिकतर पद रासलीला के रचे हैं। रासलीला ही एक ऐसी लीला है जिसमें गायन-वादन तथा नृत्य की चर्मोत्कर्ष स्थिति देखने को मिलती है।

राग केदार

श्री वृशभानु नन्दिनी नाचत गिरधर संग लागडाट उरय निदप रास संग राखौ।

कृष्णदास जी के पदों में विभिन्न वाक्यों के उल्लेख के साथ-साथ मृदंग, तबला आदि के विभिन्न बोलों का प्रयोग मिलता है। उदाहरण स्वरुप -

द्रं द्रं द्रण ण णा धि धिकट तिति कट गिडि गिडि धिं धिं।
तिति कट तिकट तालसली उघटित शब्द थुंग थुंग थेइ।
(कृष्णदास पद 597 पृष्ठ 225)

गोविन्द स्वामी जी ने बाललीला, वनलीला, दानलीला रास, गोर्वधनपूजा आदि विविध लीलाओं का वर्णन किया है। इनके द्वारा रचित पदों में ताल व राग का वर्णन भी मिलता है।

गावत केदारो राग सानुराग कीडत रस उपजत अति भारी।

(गोविन्दस्वामी पद 29 पृष्ठ 29)

नन्ददास जी के प्रायः सभी ग्रन्थ छन्दों में लिखे गये हैं। इनके पदों में गायन प्रकार राग, ताल पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग है -

गावत फाग धमार हरखि भरि हलधर ओ सब ग्वाल
(नन्ददास ग्रन्थावली पद 92 पृष्ठ 332)

छीतस्वामी जी अृटछाप कवियों में से एक कीर्तनकार थे। छीतस्वामी ने सभी पदों को रागों में बद्ध किया है।

राग बसन्त के पद -

आयो रितुराज साज पंचमी बसंत आज।
बाजत आवत उपंग बांसुरी मृदंग चंग।।

छीतस्वामी जी ने अपने पदो के माध्यम से ब्रज जीवन की सफल झांकी प्रस्तुत की है।

अष्टछाप कवियों में चतुर्भुजदास ने भगवान की भक्ति का गान वात्सल्य भाव से किया है -

परम भागवत अति भये भजन मांहि दृढ़ धीर।
चतुर्भुज वैष्णवदास की बानी अति गम्भीर।।

सकल देश पावन कियो भगवत जसहि बढाई।
जहां-तहां निज एक रस गाई भक्ति लड़ाई।।
(ध्रुवदास कृत भक्त नामावली छन्द 48-49)

हवेली संगीत के अष्टछाप कवि उच्चकोटि के संगीतकार थे। इन कवियों ने नित्य लीला, बसंतोत्सव, वर्षोत्सव इत्यादि के पद विभिन्न रागों में रचे हैं। आज भी मन्दिरों में पारम्परिक गायन प्रणाली सुनने को मिलती है। नाथद्वारा में श्रीनाथ जी के मन्दिर में आज भी आठ कीर्तनिया ही कीर्तन करते हैं। निष्कर्षतः अष्टछाप के सभी भक्त संगीतज्ञ संगीत के ज्ञाता थे और वे तत्कालीन गायन की विविध पद्धतियों व शैलियों से परिचित थे। अष्टछाप कवियों ने जिस सौन्दर्य युक्त भक्ति मार्ग का आश्रय लिया तथा संगीतात्मक लालित्य को संजोकर भक्तिपूर्ण पदो के माध्यम से भारत की प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर को परिपुष्ट किया वह निःसन्देह अवर्णनीय है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. मध्ययुगीन वैष्णव सम्प्रदायों में संगीत - डॉ. राकेश बाला सक्सेना, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली
2. अष्टछाप के कवि परमानंददास - डॉ. हरगुलाल सूचना और प्रसारण मंत्रालय पृठ 97
3. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय - डॉ. दीनदयाल गुप्त, हिन्दी साहित्य सम्मेलन
4. पुष्टिमार्गीय मंदिरों की संगीत परम्परा - प्रो. सत्यभान शर्मा, राधा पब्लिकेशन्स।

महाराष्ट्र की कीर्तन परंपरा

डॉ. मंजुश्री खेरडे

ए-9, तेजश्री अपार्टमेंट्स, फेज ४,
बिब्वेवाडी, पुणे-411037

भारतीय दर्शन में वर्णित ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्ति योग की अवधारणाओं में से हमारी संस्कृति ने भक्ति को कहीं अधिक सरलता से अपनाया है। ईश्वर प्राप्ति का यह मार्ग सामान्य जनता को अधिक सुकर लगता है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं।

''श्रवणं कीर्तनं विष्णोःस्मरणम् पादसेवनं
अर्चनं वंदनम दास्यं सख्यं आत्म निवेदनम''

भगवदगीता में वर्णित नवविधा भक्ती के कीर्तन को द्वितीय माना गया है। वैसे तो पूरे भारतवर्ष में कीर्तन की परंपरा बहुत प्राचीन है। पंजाब में इसे सबद कीर्तन कहते हैं तो उत्तर प्रदेश में हरि कीर्तन। गुजरात में इसे नाम संकीर्तन कहा जाता है, दक्षिण में हरि कथा तो आंध्र प्रदेश में कथकली। महाराष्ट्र में इसे कीर्तन के नाम से ही संबोधित किया जाता है। नाम कुछ भी हो, इसका उद्देश्य एक ही है, वह है। जन सामान्य को ईश्वर परायण बनाना एवं विविध कथाओं वह आख्यानों माध्यम से जनता को प्रेरित कर उन्हें राष्ट्रहित के लिए सक्षम बनाना।

वस्तुतः संस्कृत शब्द 'कीर्त' से कीर्तन शब्द की उत्पत्ति हुई है। जिसका अर्थ है. स्तुति , प्रशंसा या गुण गौरव करना। कीर्तन में पौराणिक कथाओं का वर्णन कर देवों का गुणगान, संतो, वीरों एवं महापुरुषों के चरित्र का प्रसादिक व ओजस्वी शैली में निरूपण किया जाता है। यह 'एक पात्री' अर्थात, एक ही व्यक्ति द्वारा संगीत, अभिनय व नृत्य के मिलाप प्रस्तुत किया जाता है। कीर्तन करने वाले व्यक्ति को कीर्तनकार कहते हैं। वह झांझ, मंजीरा, खड़ताल की सहायता से तबला और हारमोनियम की संगत में अपना कीर्तन प्रस्तुत करता है।

भारत में कीर्तन के प्रवर्तक नारद मुनि माने जाते हैं। उन्होंने महर्षि वेदव्यास को कीर्तन सिखाया और व्यास मुनि से उनके पुत्र शुक ने सीखकर इसका प्रसार किया। अतः कीर्तन पद्धति के दो मुख्य प्रवाह प्रचलित हुए। 1. नारदीय कीर्तन एवं 2. वैयासिक कीर्तन।

नारदीय कीर्तन मुख्यतः संगीत प्रधान होता है और वैयासिक कीर्तन गद्य प्रधान होता है। इस गद्य प्रधान कीर्तन में मुख्य रूप से हरि कथा, प्रवचन और पौराणिक कथाओं का वर्णन किया जाता है। भारत के उत्तर व पूर्व भागों में इस प्रकार का कीर्तन होता है। नारदीय कीर्तन, जोकि संगीत प्रधान या यूं कहें की पद्यात्मक होता है, मुख्य रूप से महाराष्ट्र, कर्नाटक वह तमिलनाडु के प्रदेशों में प्रचलित है।

महाराष्ट्र में कीर्तन की मूल नारदीय परंपरा के साथ ही अन्य परंपराएं भी विकसित हुई है, जिनमें, वारकरी कीर्तन परंपरा, रामदासी कीर्तन परंपरा, गाणपत्य एवं शाक्त कीर्तन तथा आधुनिक कीर्तन के अंतर्गत। संयुक्त कीर्तन, जुगलबंदी कीर्तन, राष्ट्रीय कीर्तन और पथ कीर्तन जैसी परंपराएं है। प्रस्तुत लेख में इन परंपराओं के विषय में चर्चा की जाएगी।

कीर्तन की विषय वस्तु

कीर्तन में कीर्तनकार जिस विषय या आख्यान पर कीर्तन करना तय करते हैं, उससे संबंधित संत

साहित्य, सुभाषित, श्लोक, कविता एवं प्रसिद्ध काव्यों के उद्धरण प्रयुक्त करते हैं। कई बार लोकप्रिय चल चित्रों की धुनों आधारित स्वरचित काव्य भी प्रस्तुत करते हैं। आर्या, श्लोक, साकी, दिंडी, ललित, अभंग, पोवाडा, कटाव और फटका जैसे काव्य प्रकारों का भी अपने कीर्तन में समावेश कर, संगीत अभिनय एवं नृत्य का प्रयोग कर कीर्तन को प्रभावशाली बनाते हैं। वस्तुतः पौराणिक आख्यानों, देवी देवताओं, भक्तों, संतो, वीरों और महापुरुषों के चरित्र का गुणगान कर जनता को प्रेरणा प्रदान करना एवं समाज प्रबोधन करना कीर्तन का मुख्य उद्देश्य है।

कीर्तन के अंग

नारदीय कीर्तन के 5 भाग होते हैं। मुख्य रूप से पूर्वरंग एवं उत्तर रंग यह दो ही भाग होते हैं। कीर्तन प्रारंभ करने से पूर्व नमन किया जाता है।

1. नमन–देवों का आवाहन व प्रार्थना
2. पूर्वरंग–अध्यात्मिक विषय पर अभ्यास अपूर्ण निरूपण (वेदांत सार)
३. नाम जप–मध्यांतर में नाम जप या नाम संकीर्तन
४. उत्तर रंग–आख्यान अथवा कथा वर्णन (वेदांत, गीता, उपनिषद, पुराण, शंकर भाष्य)
५. आरती–लोकप्रिय प्रादेशिक आरतियों का गायन (गणपति, देवी, शंकर, पांडुरंग)

नारदीय कीर्तन परंपरा

''सगुण चरित्रे परम पवित्र सादर वर्णावी,
सज्जन वृन्दे मनोभावे आधी वंदावी''

संत एक नाथ के इस कथन का नारदीय कीर्तन की परंपरा में भली-भांति पालन किया गया है। पूर्वांग में वेदांत निरूपण एवं उत्तर रंग में आख्यान यह नारदीय कीर्तन परंपरा की विशेषता है। कीर्तन के प्रथम भाग नमन में गणेश, सद्गुरु, माता-पिता एवं श्रोताओं को अभिवादन किया जाता है। नमन की दो परंपराएं हैं। पहली परंपरा गोविंद तारक आश्रम की है इस परंपरा में कीर्तन का आरंभ जय जय राम कृष्ण हरि के नाम घोषित किया जाता है इसके बाद अभंग और तराना गया जाता है। वापस अभंग गाकर विषय का निरूपण किया जाता है। इस कीर्तन में कीर्तनकार के दोनों ओर तबला एवं हारमोनियम संगतकार बैठते हैं। कीर्तनकार के हाथ में कभी झांझ तो कभी खड़ताल होती है। पूर्वरंग निरूपण में अभंग, ओवी, श्लोक, आदि काव्य प्रकारों का प्रयोग होता है। उत्तररंग में जो आख्यान कीर्तनकार चुनता है उनमें मुख्यतः रामायण महाभारत भागवत आदि पर आधारित कथाएं होती है।

वारकरी कीर्तन परंपरा

संत नामदेव इस परंपरा के प्रवर्तक हैं। संत ज्ञानोबा से लेकर संत निळोबा तक के अभंग इस परंपरा में गाए जाते हैं इनका जय घोष ''जय जय राम कृष्ण हरी'' है। संत गाडगे बाबा की कीर्तन पद्धति थोड़ी भिन्न है। उनका मूल मंत्र देवकीनंदन गोपाला है। इसमें श्रोता वक्ता संवाद अधिक होता है।

रामदासी कीर्तन परंपरा

समर्थ रामदास स्वामी के द्वारा इस कीर्तन परंपरा का प्रारंभ किया गया है ऐसी मान्यता है। इस कीर्तन परंपरा के आख्यानों में राम कथा, राम पूजा, राम भक्ति की प्रमुखता होती है। मुख्य रूप से श्रीधर स्वामी, समर्थ रामदास स्वामी एवं केशव स्वामी के द्वारा रचित अभंग ही गाए जाते है। आज भी रामदासी कीर्तन गुरुकुल पद्धति से ही सिखाया जाता है। तमिलनाडु के तंजौर भाग में यह कीर्तन मुख्य रूप से प्रचलित है।

गाणपत्य कीर्तन परंपरा-

यह परंपरा नारदीय परंपरा से मिलती जुलती है इसमें पूर्व रंग एवं उत्तर रंग दोनों होते हैं। इस कीर्तन परंपरा में कीर्तन के प्रस्तुतीकरण से पूर्व कीर्तनकार 1 दिन का उपवास रखते हैं। प्रातः काल उठकर गणपति अथर्व शीर्ष के 108 आवर्तन करते हैं। कीर्तन के समय अपनी कमर पर गणपति की छोटी सी मूर्ति बांधते हैं और फिर कीर्तन करते हैं।

शाक्त कीर्तन परंपरा

यह कीर्तन परंपरा माहुर- सप्तश्रृंगी के परिसर में ही प्रचलित है। इस परंपरा के कीर्तनकार किसी अन्य स्थान पर जाकर कीर्तन प्रस्तुत नहीं करते हैं। 'देवी का स्थान नहीं छोड़ेंगे' ऐसा इनका नियम होत है। इस कीर्तन परंपरा में भी पूर्वरंग एवं उत्तर रंग दो भाग होते हैं। पूर्वरंग में मंगलाचरण एवं देवी को आवाहन किया जाता है, उत्तर रंग में देवी चरित्र, शंकर पार्वती विवाह, शुंभ निशुंभ आख्यान, लक्ष्मी चरित्र का गायन या वर्णन किया जाता है।

आधुनिक कीर्तन परंपरा

इस परंपरा के अंतर्गत तीन प्रकार के कीर्तन गाए जाते हैं।

1. संयुक्त कीर्तन
2. जुगलबंदी कीर्तन
3. राष्ट्रीय कीर्तन

संयुक्त कीर्तन परंपरा में दो कीर्तनकार मिलकर एक ही विषय का निरूपण करते हैं। जुगलबंदी कीर्तन में दो कीर्तनकार मिलकर किसी एक विषय पर दो विरोधी पक्ष प्रस्तुत करते हैं। अपने-अपने पक्ष को सबल बनाने के लिए वे दोनों विविध आख्यान और पौराणिक कथाओं का संदर्भ देते हैं अंत में इस सारे कीर्तन का सार, तात्पर्य एक साथ मिलकर प्रस्तुत करते हैं।

राष्ट्रीय कीर्तन का प्रारंभ भारत में स्वतंत्रता आंदोलन के समय हुआ। लोकमान्य तिलक इसके प्रेरक तत्व माने जाते हैं। स्वतंत्रता संग्राम में सामान्य जनता को सम्मिलित करने के उद्देश्य से कीर्तन की महत्ता को उन्होंने सर्वप्रथम समझा। उनसे प्रेरणा प्राप्त कर वाई के कीर्तनकार डॉक्टर दत्तोपंत पटवर्धन ने राष्ट्रीय कीर्तन का नया प्रकार सबसे पहले प्रस्तुत किया और उसे लोकप्रिय बनाया। इस कीर्तन में मुख्य रूप से शिवाजी महाराज का चरित्र, वीरों का चरित्र, लक्ष्मीबाई जैसी वीरांगनाओं का चरित्र, स्वतंत्रता सेनानियों की कथाएं, राष्ट्रपुरुषों, क्रांतिकारियों एवं समाज सुधारकों की कथाओं का जन जागृति के लिए प्रेरणादायी प्रयोग किया गया।

प्रमुख कीर्तनकार

मध्यकाल में मंदिरों में होने वाले कीर्तनो के प्रमुख कीर्तनकार संत नामदेव, संत ज्ञानेश्वर, संत, एकनाथ, संत तुकाराम एवं समर्थ रामदास स्वामी प्रमुख कीर्तनकार हुए हैं। इन संतो द्वारा रचित साहित्य का आने वाले समय में कीर्तनकारों ने प्रयोग किया है।

महाराष्ट्र के प्रमुख कीर्तन कारों में बंडा तात्या कराडकर, संत गाडगे बाबा, संत तु कड़ोंजी महाराज, मामासाहेब दांडेकर, निजामपुरकर, ओतुरकर, गोविंद स्वामी आफळे, बाबा महाराज सातारकर, नारायण बुआ काणे, निवृत्ति महाराज देशमुख, इंदुरीकर महाराज, दिवेगांवकर महाराज, आनंद स्वामी उर्फ शंकर महाराज धोटे जैसे कई ख्याति प्राप्त कीर्तनकार महाराष्ट्र में हुए हैं।

इन कीर्तन कारों में वारकरी एवं रामदासी कीर्तन की परंपराओं के कीर्तनकारों का समावेश होता है। श्री गोविंद स्वामी आफले ने कीर्तन को राष्ट्रीय स्तर पर लोकप्रिय बनाया। कीर्तन में जुगलबंदी कीर्तन का प्रयोग सर्वप्रथम उन्होंने ही किया। ओतुरकार महाराज अपने कीर्तन के उत्तर रंग में ऐतिहासिक आख्यान से संबंधित कथाओं का प्रयोग करते थे। इतिहास के स्नातक एवं स्नातकोत्तर विद्यार्थी उनके कीर्तन में ज्ञान प्राप्ति की अभिलाषा से आकर बैठा करते थे। निजामपुरकर महाराज का कीर्तन अध्यात्म विषय प्रधान हुआ करता था।

इन सभी कीर्तनकारों ने अपने ज्ञान एवं व्यक्तिगत कौशल्य का प्रयोग कर न केवल कीर्तन की परंपरा को सजीव रखा अपितु संस्कृति को ही सजीव रखा है। हम इन कीर्तन कारों एवं उनकी परंपराओं के सदैव ऋणी है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कीर्तन परंपरा महाराष्ट्र की संस्कृति का एक अविभाज्य अंग है।

वेदांत, पुराण, उपनिषद, गीता के आख्यानों से लेकर वीरो, महापुरुषों के जीवन चरित्र ओं से सामान्य जनता को अवगत करा कर उनमें राष्ट्रीयता, देश प्रेम जैसे मूल्यों और ईश्वर परायणता जैसे गुणों का संवर्धन कर, राष्ट्र को एक सकारात्मक दिशा में ले जाने का महत्वपूर्ण कार्य कीर्तन की यह परंपराएं निश्चित रूप से करती है। समय के साथ इनमें कई परिवर्तन हुए हैं और अब यह आज के समाज की सामाजिक, राजकीय समस्याओं और प्रश्नों को भी संबोधित करती है। पुरातन काल से लेकर आज तक समाज को जागरूक करने वाली इस परंपरा का यूं ही संवर्धन होता रहे। आज के विज्ञान प्रधान और प्रौद्योगिकी के काल में यह अपना अस्तित्व बनाए रखेगी इसमें कोई संदेह नहीं।

संदर्भ

पाठक, यशवंत–कीर्तन परंपरा– एक लोक साहित्याविष्कार

मांडे, प्रभाकर–लोकरंग भूमि-परंपरा, स्वरूप आणि कंपनी

ह.भ.प. विनायक गणेश भागवत. कीर्तन चार्यकम-1926

कीर्तन सुधा धारा

ह. भ. प. गंगाधर बुआ कोपरकर- कीर्तनाची प्रयोग प्रक्रिया प्रकाश बुआ मुले गोंदीकर-कीर्तन रहस्य

यू ट्यूब एवं नेट जाल पर कीर्तनकारों के कीर्तन, साक्षात्कार, जानकारी

आतोद्य

प्रमुख कठिन लयकारियों के गणितीय सूत्र

प्रो. पं. विद्याधर प्रसाद

शोध निर्देशक
संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग,
इलाहाबाद विश्व विद्यालय

मिश्र प्रीति केसरवानी

शोध छात्रा
संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग,
इलाहाबाद विश्व विद्यालय

आड़-

मात्रैक मात्राधाँशश्च मिलिता गति मास्थिता।
लयस्य विकृतिः ख्याहा मात्राश्चैकर्ध्द ईरिता।।

मात्रा और मात्रा का आधा हिस्सा मिलकर जो गति होती है उसे डेढ़ी लय (यति) कहते हैं। एक मात्रा में डेढ़ मात्रा के काल-मान का उच्चारण आड़ कहलाता है।

एषारवा भास युक्ताश्चेन्तदावै सर्पिणी भवेत्।

यही एकार्धं अर्थात् एक और आधी मात्रा के साथ जब लय की गति सर्प के चाल सदृश्य होती है, तब इसे आड़ी लय, कहते है और त्रीतीय, झूलना भी कहते हैं।

साधारण शब्दों में एक मात्रा में डेढ़ मात्रा बोलना या दो मात्रें में तीन मात्रा बोलना आड़ की लयकारी कहलाती है। गणितीय माध्यम से इसे इस प्रकार समझा जा सकता है कि $\frac{1.50}{1}$ अर्थात् एक मात्रा के काल में डेढ़ मात्रा, इसको दुगुना करें तो $\frac{1.50}{1}\times\frac{2}{2}=\frac{3}{2}$ अर्थात् 2 मात्रा के काल मान में 3 मात्रा के कालमान का उच्चारण।

किसी भी ताल को आड़ी लय में लिखने के लिये उस ताल की प्रत्येक मात्रा को दो बराबर भागों में बाँटकर दो मात्रा बनाना होता है और आवश्यकतानुसार 'ऽ' का प्रयोग करते है। एक वर्ण, दो वर्ण और चार वर्ण वाली मात्रा को इस प्रकार दो मात्राओं में विभक्त किया जायेगा-

मात्रा	**1**	**2**
धा	धा	ऽ
तेटे	ते	टे
तिरकिट	तेटे	किट

इस प्रकार से ताल की प्रत्येक मात्रा में जितने भी वर्ण हो उसे दो बराबर भागों में बाँट कर लिख देंगे और ताल की अन्तिम मात्रा से आरम्भ करते हुये प्रत्येक मात्रा में तीन-तीन मात्राओं को बाँधेगे। एक आवर्त्तन में आड़ कितनी मात्राओं में आयेगी और कितनी मात्राओं के पश्चात् शुरू होगी यह ज्ञात करने के लिये निम्नलिखित दो सूत्र है-

सूत्र 1- आड़ लय की मात्रा = (ताल की मात्रा × 2) ÷ 3

चूँकि आड़ में प्रत्येक मात्रा को दो मात्रा बनाना होता है इसलिये सूत्र में तसल की मात्रा को 2 से गुणा किया गया है और 3 मात्राओं को एक मात्रा के कालमान में स्थान देना होता है इस कारण तीन से भाग दिया गया है।

इसके पश्चात् कितनी मात्राओं के ठहराव के पश्चात् आड़ आरम्भ होगी यह ज्ञात करने के लिये-

सूत्र 2- ठहराव की मात्रा ताल की मात्रा - आड़ लय की मात्रा

दोनों सूत्रों के माध्यम से एकताल (12 मात्रा) का उदाहरण देखिए-

सूत्र (1) आड़ लय की मात्रा = (ताल की मात्रा×2)÷3

आड़ लय की मात्रा = (12×2) ÷ 3

आड़ लय की मात्रा = 24 ÷ 3

आड़ लय की मात्रा = 8

सूत्र (2) ठहराव की मात्रा = ताल की मात्रा - आड़ लय की मात्रा

ठहराव की मात्रा = 12 - 8

ठहराव की मात्रा = 4

अर्थात् दोनों सूत्रों के अनुसार एकताल की आड़ 12 मात्रा में आयेगी और 4 मात्रा के ठहराव के पश्चात् आरम्भ होगी–

धिं	धिं	।	धागे	तिरकिट	।	धिंऽधि	ऽधागे	।			
×			0			2					
तिरकिटतू	ऽनाऽ	।	कऽता	ऽधागे	।	तिरकिटधी	ऽनाऽ	।	धिं		
०			3			4			×		

झपताल की आड़-

सूत्र (1) आड़ लय की मात्रा = (ताल की मात्रा×2)÷3

आड़ लय की मात्रा = (10×2)÷3

आड़ लय की मात्रा = 20÷3

आड़ लय की मात्रा = $6\frac{2}{3}$

सूत्र (2) ठहराव की मात्रा = ताल की मात्रा–आड़ लय की मात्रा

ठहराव की मात्रा = $10-6\frac{2}{3}$

ठहराव की मात्रा = $3\frac{1}{3}$

उपर्युक्त सूत्रानुसार, झपताल की आड़ मात्रा में आयेगी और मात्रा के ठहराव के पश्चात् आरम्भ होगी–

धी	ना	।	धी	ऽधीऽ	नाऽधी	।		
×			2					
ऽधीऽ	नाऽती	।	ऽनाऽ	धीऽधी	ऽनाऽ	।	धी	
०			3				×	

कुआड़-

चतुर्थांशं श्चैक मात्रा मिलिता यति मास्थिता।
लयस्य विकृति जाता सपादैक उदाहता।।

मात्रा और मात्रा का चौथाई हिस्सा मिलकर जो गति, होती है उसे सवाई लय कहते हैं।

सवाई को ही कुआड़ या कुआड़ी लय की संज्ञा दी गयी है। कुआड़ लय के लिये 'सवा' को प्राथमिकता देते हुये सवा गुन $1\frac{1}{4}=\frac{5}{4}$ की लयकारी का वर्णन है अर्थात् की लयकारी कुआड़ की लयकारी कहलाती है। गणितीय आधार पर समझने के लिये हम इसे $10+0.25=1.25$ (अर्थात् $1\frac{1}{4}=\frac{5}{4}$) के तथ्य से भी समझ सकते है। इन दोनों मतों में से प्रचलित मत $\frac{5}{4}$ का है जो इस प्रकार है–

$$\frac{5}{4}=\frac{\text{मात्रा को बाँधना}}{\text{मात्रा को बनाना}}$$

किसी भी ताल को कुआड़ की लय में लिखने के लिये उसकी प्रत्येक मात्रा को 4 मात्रा बनाना होता है-

मात्रा	1	2	3	4
धा	धा	ऽ	ऽ	ऽ
तेटे	ते	ऽ	टे	ऽ
तिरकिट	थ्त	श्र	थ्क	ट

इस प्रकार प्रत्येक मात्रा को उसके वर्णो के आधार पर बराबर कालमान में बाँट के लिख लेंगे तत्पश्चात् आवर्तन के अन्त से 5-5 मात्राओं को 1 मात्रा के कालमान में निर्धारित किया जाता है। एक आवर्तन में कुआड़ कितनी मात्राओं में आयेगी और ठहराव कितनी मात्राओं का होगा इसके लिये निम्नलिखित दो सूत्र है-

सूत्र 1- कुआड़ लय की मात्रा = (ताल की मात्रा × 4) ÷ 5

चूँकि कुआड़ में प्रत्येक मात्रा को चार मात्रा बनाना होता है इस कारण सूत्र 1 में ताल की मात्रा को 4 से गुणा किया गया है तत्पश्चात् प्रत्येक मात्रा

में 5 मात्राओं को स्थान देना होता है इस कारण 5 से गुणा किया गया है।इसके पश्चात् कितनी मात्राओं के ठहराव के पश्चात् कुआड़ आरम्भ होगी यह ज्ञात करने के लिये सूत्र 2 देखिये-

सूत्र 2- ठहराव की मात्रा = ताल की मात्रा– आड लय की मात्रा

दोनों सूत्रों के माध्यम से झपताल की कुआड़ का उदाहरण देखिये–

धी	ना	धी	धी	न	ती	न	धी	धी	न	धी
×		2			0		3			×

सूत्र 1- कुआड़ लय की मात्रा = (ताल की मात्रा×4)÷5

कुआड़ लय की मात्रा = $(10 \times 4) \div 5$

कुआड़ लय की मात्रा = $40 \div 5$

कुआड़ लय की मात्रा = 8

सूत्र 2- ठहराव की मात्रा त्र ताल की मात्रा - कुआड़ लय की मात्रा

ठहराव की मात्रा = $10 - 8$

ठहराव की मात्रा = 2

उपर्युक्त दोनों सूत्रानुसार झपताल की कुआड़ 8 मात्रा में आयेगी और 2 मात्रा के ठहराव के पश्चात् शुरू होगी-

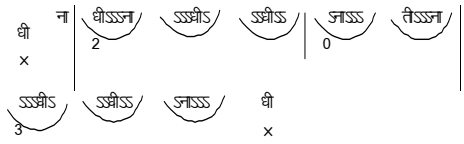

इसी प्रकार 7 मात्रें की रूपक ताल का उदाहरण देखिये-

ती	ती	ना	धी	ना	धी	ना	ती
×			2		3		×

सूत्र 1- कुआड़ लय की मात्रा = (ताल की मात्रा×4)÷5

कुआड़ लय की मात्रा = $(7 \times 4) \div 5$

कुआड़ लय की मात्रा = $28 \div 5$

कुआड़ लय की मात्रा = $5\frac{3}{5}$

सूत्र 2- ठहराव की मात्रा = ताल की मात्रा - कुआड़ लय की मात्रा

ठहराव की मात्रा = $7 - 5\frac{3}{5}$

ठहराव की मात्रा = $1\frac{2}{5}$

उपर्युक्त दोनों सूत्रों के अनुसार रूपक ताल की कुआड़ मात्रा में आयेगी और मात्रें के ठहराव के पश्चात् शुरू होगी–

	ऽऽतीऽऽ		ऽऽऽनाऽ			
ती	ऽतीऽऽऽ	नाऽऽऽधी		ऽऽधीऽऽ	ऽनाऽऽऽ	ती
×	2		3			×

बिआड़-

मात्राश्चैकोन पदांशा सहिता गति-मास्थिता, ।
यतिर्लय, समा योगात् एको नांशान्भि-ईरिता।

मात्रा और मात्रा का पौन हिस्सा मिलकर जो गति होती है। उसको ऊनांश कहते है अर्थात्, पौने दूनी-लय कहते है।

बिआड़ की लयकारी को ''पौने दो गुन'' की लयकारी कहा गया है। पौने दो गुन अर्थात्। इस लयकारी को की लयकारी से दर्शाया जाता है। तात्पर्य यह है कि 7 को 4 से भाग देने पर 1.75 ही आयेगा। इस कारण इसे पौने दो गुन, बिआड़ या बिआड़ी लय भी कहा जाता है।

$$\frac{7}{4} = \frac{\text{मात्रा को बाँधना}}{\text{मात्रा को बनाना}}$$

किसी भी ताल को बिआड़ी लय में लिखने के लिये कुआड़ की भाँति ही प्रत्येक मात्रा को 4 मात्रा बनाना होगा–

मात्रा	**1**	**2**	**3**	**4**
धा	धा	ऽ	ऽ	ऽ
तेटे	ते	ऽ	टे	ऽ
तिरकिट	ति	र	कि	ट

प्रत्येक मात्रा को 4 वर्ण बनाने के पश्चात् आवर्तन के अन्त से एक मात्रा में 7 वर्णो को बाँधना है। बिआड़ लय की मात्रा और ठहराव की

मात्रा ज्ञात करने के लिये निम्नलिखित दो सूत्रों का उल्लेख किया जा रहा है–

सूत्र 1- बिआड़ लय की मात्रा = (ताल की मात्रा × 4) ÷ 7

चूँकि बिआड़ में प्रत्येक मात्रा में 4 वर्ण बनाने होते है इस कारण सूत्र 1 में 4 से गुणा किया गया है और 7 वर्णो को 1 मात्रा के कालमान में स्थान देना होता है इस कारण 7 से भाग दिया गया है। इसके पश्चात् कितनी मात्रा के ठहराव के पश्चात् बिआड़ की लय आरम्भ होगी यह ज्ञात करने के लिये सूत्र 2 को देखिये-

सूत्र 2- ठहराव की मात्रा त्र ताल की मात्रा - बिआड़ लय की मात्रा

उपर्युक्त दोनों सूत्रों के माध्यम से आड़ाचार ताल में बिआड़ की लयकारी का उदाहरण देखिये-

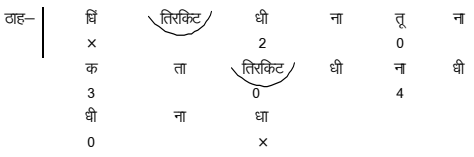

सूत्र 1- बिआड़ लय की मात्रा = (ताल की मात्रा×4)÷7

बिआड़ लय की मात्रा = (14×14)÷7

बिआड़ लय की मात्रा = 56 ÷ 7

बिआड़ लय की मात्रा = 8

सूत्र 2- ठहराव की मात्रा त्र ताल की मात्रा - बिआड़ लय की मात्रा

ठहराव की मात्रा = 14 - 8

ठहराव की मात्रा = 6

उपर्युक्त दोनों सूत्रों के अनुसार आड़ाचार ताल की बिआड़ 8 मात्रा में आयेगी और 6 मात्रा के ठहराव के पश्चात् प्रारम्भ होगी–

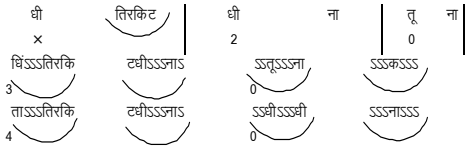

सूत्र 1- बिआड़ लय की मात्रा = (ताल की मात्रा×4) ÷ 7

बिआड़ लय की मात्रा = (14 × 4) ÷ 7

बिआड़ लय की मात्रा = 56 ÷ 7

बिआड़ लय की मात्रा = 8

सूत्र 2- ठहराव की मात्रा = ताल की मात्रा–बिआड़ लय की मात्रा

ठहराव की मात्रा = 14 - 8

ठहराव की मात्रा = 6

उपर्युक्त दोनों सूत्रों के अनुसार आड़ाचार ताल की बिआड़ 8 मात्रा में आयेगी और 6 मात्रा के ठहराव के पश्चात् प्रारम्भ होगी-

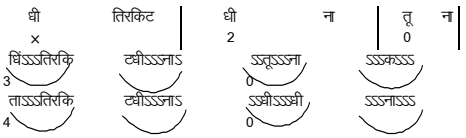

इन्हीं सूत्रों के अनुसार अद्धा ताल को बिआड़ लय को देखिये-

अद्धा ताल-

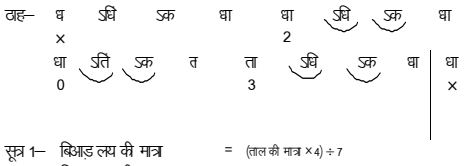

सूत्र 1– बिआड लय की मात्रा = (ताल की मात्र × 4) ÷ 7

बिआड लय की मात्रा = (16 × 4) ÷ 7

बिआड लय की मात्रा = 64 ÷ 7

बिआड लय की मात्रा = $9\frac{1}{7}$

सूत्र 2- ठहराव की मात्रा त्र ताल की मात्रा - बिआड़ लय की मात्रा

ठहराव की मात्रा = $14 - 9\frac{1}{7}$

ठहराव की मात्रा = $6\frac{6}{7}$

उपर्युक्त दोनों सूत्रों से यह ज्ञात होता है कि अद्धा ताल की बिआड़ $9\frac{1}{7}$ मात्र में आयेगी और $6\frac{6}{7}$ मात्रा के पश्चात् शुरू होगी–

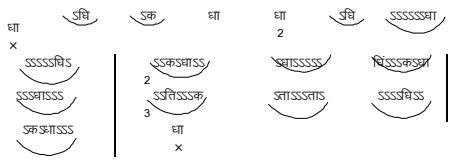

इस प्रकार उत्तर भारतीय संगीत में मुख्य लयकारियों में आड़, कुआड़, बिआड़ का चलन है जोकि उपर्युक्त सूत्रों के माध्यम से किसी भी ताल में आसानी से बनाया जा सकता है।

संदर्भ

1 ताल दीपिका (चतुर्थ भाग)- मृद ाचार्य मन्नू जी -पेज संख्या-13

2 ताल दीपिका (चतुर्थ भाग)- मृद ाचार्य मन्नू जी -पेज संख्या-13

3 ताल-दीपिका (चतुर्थ भाग)- मृद ाचार्य मन्नू जी -पेज संख्या 15

4 ताल दीपिका (चतुर्थ भाग)- मृद ाचार्य मन्नू जी -पेज संख्या -15

भारतीय वाङ्मय में तन्त्री वाद्यों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

डॉ. रितु सिंह

असि. प्रोफेसर - सितार
कमला आर्य कन्या पी. जी. कालेज, मीरजापुर

भारत की गौरवमयी संस्कृति का प्रथम दिग्दर्शन हमें वैदिक युग में ही देखने को मिलता है। वैदिक युग भारत के सांस्कृतिक इतिहास में प्राचीनतम युग माना जाता है। वैदिक युग से अभिप्राय उस सुदीर्घ कालखण्ड से है, जिसमें चारों वेदों तथा उसके विविध अंगों का विस्तार हुआ है। वैदिक साहित्य में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद के अलावा इनकी व्याख्या करने वाले 'ब्राह्मण' 'आरण्यक' 'उपनिषद्' आदि ग्रन्थ तथा तत्कालीन रीति-रिवाजों पर प्रकाश डालने वाले सूत्र ग्रन्थों का समावेश होता है। वेदों को विश्व का आदि वाङ्मय मानते हैं। अतः तन्त्री वाद्यों के विषय में भी सुत्रबद्ध ऐतिहासिक प्रमाण हमें सर्वप्रथम वैदिक वाङ्मय में ही प्राप्त होते हैं।

वैदिक वाङ्मय में तन्त्री वाद्यों का स्थान एवं महत्व

ऋग्वेद को प्राचीनतम वेद माना जाता है। ऋग्वेद में तन्त्री वाद्यों को प्रमुख स्थान प्राप्त था। प्रातः काल पर मंगल वाद्य के रुप में वीणा आदि वाद्यों का वादन किया जाता था। उदाहरण स्वरूप ऋग्वेद में 'आघाटि' नामक तन्त्री वाद्य का उल्लेख 10/146/2 में प्राप्त होता है।

''आघाटिभिरिव धावयन्नरण्यनिर्महीयते''

ऋग्वेद 10/146/2

सायण ने 'आघाटि' के लिए अन्य पर्याय 'घाटलिका' तथा 'काण्डवीणा' बताया है।

'आरण्यक' में यजमान पत्नी के द्वारा 'काण्ड वीणा' तथा 'भूमि दुन्दुभि' के वादन का उल्लेख मिलता है-

''भूमि दुन्दुभि पहन्यश्चकाण्डवीणा''

ऋग्वेद 9/51/1 में 'बाण' नामक तन्त्री वाद्य की गम्भीर ध्वनि का उल्लेख प्राप्त होता है।

शततन्त्री 'बाण' के सम्बन्ध में 'तैत्तिरीय संहिता'' में निम्न उल्लेख पाया जाता है-

''बाणः शततन्तुर्भवति शतायुः पुरूषः शतेन्द्रिय आयुत्र्येवेन्द्रिये प्रतितिष्ठन्ति।''

ऋग्वेद के 'ऐतरेय आरण्यक' में दैवी तथा मानुषी वीणा का सुन्दर सामंजस्य स्थापित करते हुए कहा गया है ''वीणा के शीर्ष से अभिप्राय तुम्ब फल से है, काष्ठ खोह उसका उदर है जो कि ध्वनि में गुंजन उत्पन्न करता है, वीणा की जीह्वा उसकी वादन क्रिया है, वीणा की अनेक तन्त्रियाँ उसकी अगुँलिया हैं, वीणा से उद्भूत होने वाले स्वर उसकी वाणी है। शरीर वीणा में जैसे धमनियाँ है, वैसे ही दारवी वीणा में अनेक तंत्रियाँ हैं। मानव शरीर की भाँति वीणा भी चर्माच्छादित की जाती है।''

संगीत की दृष्टि से 'सामवेद' का अपना विशेष महत्व है। वास्तव में 'सामवेद' मुख्यतया ऋग्वेद के ऐसे मन्त्रों का संकलन है, जो गेय है और यही गेय ऋचाएँ 'सामगान' कहलायी। सामगान को वीणादि वाद्यों के साथ गाया जाता था। वैदिक काल में वीणा

वाद्य के अनेक नाम प्रचलित थे। जैसे गात्र वीणा, कात्यायनी, रावणी, घोषवती, काण्ड वीणा, कर्करि, बाण आदि।

तत्कालीन समय में वीणा के अनेक प्रकार प्रचलित थे, जैसे- गज से बजने वाली वीणा, पिनाकीतेत्तर के दण्ड से बजायी जाने वाली वीणा तथा अंगुलियों एवं कम्रिका (मिजराब) आदि से बजाये जाने वाली वीणा इत्यादि। इस काल में वीणा की महत्ता तथा व्यापकता इतनी बढ़ चुकी थी कि 'ऐतरेयआरण्यक' में वीणा को शरीर की रचनानुसार ही कल्पित किया गया जिसे देवी वीणा कहा गया है।

सामगान में ''वीणा'' नामक तन्त्री वाद्य का वादन होता था। जबकि ऋग्वेद में केवल ''बाण'' या वाण शब्द का उल्लेख मिलता है।

वाल्मीकि कृत 'रामायण' में तन्त्री वाद्यों का स्थान एवं महत्व

महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित 'रामायण'' भारत का प्राचीन सांस्कृतिक महाकाव्य माना जाता है। इस काल की महानगरी श्री राम की अयोध्या, वानर राज सुग्रीव की किष्किन्धा और राक्षस राज रावण की लंका वीणा वादन से सदा अनुनादित होती रहती थी। वीणा का उस समय अत्यधिक प्रचार था। रामायण में वीणा का जगह-जगह वर्णन मिलता है। रामायण में विपंची जैसी प्राचीन वीणाओं एवं शुद्ध सप्त जातियों का वर्णन प्राप्त होता है जिससे यह सिद्ध होता है कि चार षड्ज ग्रामिक एवं तीन मध्यम जातियों से वाल्मीकि परिचित थे। विपंची वीणा का वर्णन एक स्थान पर उन्होंने इस प्रकार से किया है-

''विपंची परिगृहयान्या नियता नृत्यशालिनी।
निद्रावशमनुप्राप्ता सहकान्तेव भामिनी।।''

इस प्रकार वीणा तत्कालीन समय का लोकप्रिय वाद्य रहा है। अतः रामायण में वीणा, विपंची तथा वल्लकी आदि वीणाओं का उल्लेख महर्षि वाल्मीकि ने किया है।

महाभारत में तन्त्री वाद्यों का स्थान एवं महत्व

वीणा वाद्य का महत्व एवं प्रयोजन धार्मिक तथा लौकिक दोनों ही अवसरों पर महाभारत में हमें देखने को मिलता है। व्यास ने बारम्बार वीणा अथवा तन्त्री वाद्य का उल्लेख किया है, जो इस ओर संकेत करता है कि उस समय वाद्यों में तन्त्री वाद्य प्रमुख थी।

इस युग में तत्, वितत्, घन तथा सुत्रिर वाद्यों के विविध प्रकार का उल्लेख मिलता है, किन्तु तन्त्री वाद्यों का सर्वाधिक लोकप्रिय स्थान रहा है। इसके अनेकों उदाहरण देखने को मिलते हैं, जैसे- उस समय महान व्यक्ति, राजा इत्यादि प्रातः काल में मंगलगान एवं वीणा वादन से जगाए जाते थे। यथा–

मधुरेणैव गीतेन वीणाशब्देन चैव ह।
प्रबोध्यमानो बुबुधे स्तुतिभिर्मगंलैस्तथा।।

यज्ञादि समारोहों पर गायन के साथ सदैव वीणा वादन किया जाता रहा है। वीणा एवं वल्लकी दोनों का उल्लेख महाभारत में प्राप्त होता है।

''वीणानां बल्लकीनां च नू पुराणां च शिंजितै।''

इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि वीणा तथा वल्लकी दोनों स्वतन्त्र एवं भिन्न तन्त्री वाद्य थे। महाभारत में वीणा के प्रचुर एवं गौरवपूर्ण उल्लेख से स्पष्ट है कि तत्कालीन समय में तन्त्री वाद्य सर्वाधिक लोकप्रिय वाद्य रहा है।

बौद्ध ग्रन्थों में तन्त्री वाद्यों का स्थान एवं महत्व

भारत की सांस्कृतिक गतिविधि के परिज्ञान के लिए बौद्ध साहित्य का परिशीलन नितान्त आवश्यक है। वैदिक ऋचाओं की भाँति बौद्ध सूत्रों को भी सुस्वर में पढ़ा जाता था। बुद्धचरित में अन्तःपुर में महती वीणा, मृदंग, पणव, तूर्य, वेणु आदि वाद्यों का वादन मनोरंजन हेतु किया जाता था ऐसा उल्लेख मिलता है। बौद्ध ग्रन्थों में वाद्यों के लिए प्रायः 'तुरीयानि' शब्द मिलता है। वैदिक काल के जैसी धनुर्वीणा अर्थात धनुष के आकार की वीणा का उल्लेख जातकों में मिलता है। इस युग में वीणा की तन्त्री और गान के स्वरों में मधुर सामंजस्य रहता था। यथा -

''तन्तिस्सरेण गीतस्सरम् गीतरसरेण तन्तिस्सरम् अनतिक्कमिधा मधुरेण सुरेण गायि''

जैन ग्रन्थों में तन्त्री वाद्यों का स्थान एवं महत्व

वेद, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् के समान जैन वाङ्मय में भी संगीत के सिद्धान्त उपलब्ध होते हैं। जैनियों के साहित्य ठाणांगसुत्र, रायापसेणीय तथा कल्पसूत्र में संगीत विषयक प्रचुर सामग्री मिलती है। इस युग में वीणा वाद्य का विशेष उल्लेख मिलता है। इस युग में अनेक अच्छे-अच्छे वीणा वादक भी हुए।

मलयगिरी ने अपनी टीका में जिन वाद्यों का उल्लेख किया है उनमें निम्नलिखित तन्त्री वाद्यों का उल्लेखनीय वर्णन है- वीणा, विपंची, वल्लकी, महती, कच्छ अथवा कच्छपी, चित्त वीणा अथवा चित्रा वीणा इत्यादि।

तमिल ग्रन्थों में तन्त्री वाद्यों का स्थान एवं महत्व

तमिल साहित्य में वीणा के लिए 'याज़' संज्ञा का प्रयोग किया गया है।

याज़ के निम्न प्रकारों का उल्लेख पाया जाता है-

1. एरियाज़- जिसमें सात तथा इक्कीस तन्त्रियाँ होती थीं।

2. मकरयाज़- जिसमें सत्रह तन्त्रियाँ हाती थीं।

3. सकोटयाज़- जिसमें चौदह तन्त्रियाँ हाती थीं।

4. सेकीट्टयाज़- जिसमें सात तन्त्रियाँ हाती थीं।

संस्कृत नाटकों एवं ग्रन्थों में तन्त्री वाद्यों का स्थान एवं महत्व

वैदिक साहित्य, महाभारत और रामायण ग्रन्थों के अतिरिक्त संस्कृत नाटकों में भी वाद्यों से सम्बन्धित विषयों का अनेक स्थानों पर उल्लेख किया गया हैं, विशेषकर महाकवि कालिदास एवं महाकवि भास के नाटकों में। कालिदास के नाटकों का आरम्भ ही वृंदवादन से हुआ करता था। कालिदास के ग्रन्थों में वीणा सम्बन्धी उल्लेख यत्र-तत्र दिखाई देते हैं। वीणा वादन के विभिन्न पक्षों का वर्णन उनके संगीत विषयक सुक्ष्म ज्ञान को उद्घाटित करता है। वीणा वादन से सम्बन्धित जानकारी के लिए मेघदूत का निम्न श्लोक द्रष्ट्व्य है-

उत्संगे वा मलिनवसने सौन्य! निक्षिव्य वीणां
मदगोत्रांङ्क विरचितपदं गेययुद्गातुकामा।
तन्त्रीमार्द्रां नयनसलिलैः सारयित्वा कथचिदं।
भूयोभूयः स्वयमपि कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्ती।।

उपरोक्त श्लोक से उक्त वीणा का जो स्वरूप सामने आता है उससे यह स्पष्ट होता है कि वीणा में पर्दे नहीं थे तथा किसी पट्टिका पर तन्त्री कसी होती थी। आज भी कुछ तन्त्री वाद्यों में नए राग के वादन के लिए तन्त्री को पुनः सारणा या उस मेल में मिलाना होता है। वीणा को उत्संग में रखकर बजाने का संकेत है। अश्रु से गीले हो जाने के कारण तन्त्री बार-बार विस्वर हो जाती है। वह पुनः सारणा द्वारा वादन योग्य होती है जो कि कवि के संगीत विषयक सूक्ष्म ज्ञान की ओर संकेत करता है। गीले हो जाने पर विस्वर (बेसुरा) हो जाना तन्त्री मूंज की या अन्य प्रकार की तन्त्री की ओर संकेत करता है जिस पर अश्रुओं का प्रभाव पड़ता है।

भास के नाटकों में तन्त्री वाद्य

भास का उल्लेख कालिदास ने प्राचीन एवं प्रौढ़ नाटककार के रूप में किया है। भास की अन्यान्य कृतियों में संगीत विषयक उल्लेख यत्र-तत्र पाए जाते है।

संगीत कला के लिए 'गन्धर्व' शब्द का प्रयोग भास की कृति में पाया जाता है। नारद गान्धर्व वेद के प्रवर्तक है तथा अपनी वीणा के सहारे हरिसत्व करते बतलाये गये हैं। उनसे सम्बद्ध नारदीय वीणा का स्पष्ट उल्लेख भास के नाटकों में उपलब्ध है-

वैतालिकायाः सकाशे वीणां शिक्षितुं नारदीयां गतासीत्।

भास के नाटकों में वाद्य के लिए 'अतोद्य, शब्द का प्रयोग हुआ है। वीणा का गौरव-गान चारूदत्त नाटक के निम्न श्लोक में हुआ है-

उत्कण्ठितस्य हृदयानुगता सखीव
संकीर्णदोषरहिता विषयेषु गोष्ठी।
क्रीडारसेषु मदनव्यसनेषु कान्ता
स्त्रीणां तु कान्तरतिविघ्नकारी सपत्नी।।

अर्थात 'वीणा' सोत्कण्ठ पुरूषों के लिए हृदय सहचरी सखी के समान है तथा विषय-लालसा का निर्दोष रूप है, मदनोचित कामकेलि में कान्ता के सदृश है तथा स्त्रियों के लिए रतिविघ्नकारी सपत्नी के समान है। वीणा वादन न केवल मनुष्यों को आकृष्ट करने वाला है बल्कि मन्त्र विद्या के समान मत्तमातंगों को भी वशीभूत करता है। कोण से बजायी जाने वाली घोषवती नामक वीणा का उल्लेख भास ने इस प्रकार किया है-

हस्तेन स्त्रस्यकोणेन कृतमाकाशवादितम्।।

यह वीणा नव तन्त्रीयुक्त रही हो ऐसा निम्न श्लोक से प्रतीत होता है ''नवयोगां घोषवती कृत्वा शीघ्रमानय''।

इस प्रकार संस्कृत नाटककारों ने भी अपने नाटको में तन्त्री वाद्यों को तरह-तरह की उपमाओं से सजाकर प्रस्तुत किया है। जिससे कि स्पष्ट होता है कि तन्त्री वाद्य का सुदृढ़ वर्चस्व हमेशा से रहा है।

नाट्यशास्त्र में वर्णित तन्त्री वाद्य

प्राचीन काल का संगीत विषयक सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ भरत मुनि द्वारा रचित 'नाट्यशास्त्र' है। भरत का 'नाट्यशास्त्र' भारतीय साहित्य तथा संगीत का बृहद कोष है तथा दोनों के सम्बन्ध में प्राचीन एवं सप्रामाणिक सामग्री प्रस्तुत करता है।

भरत ने नाट्य के लिए जो उपयुक्त संगीत था उस पर विस्तार पूर्वक विचार किया है और साथ ही साथ संगीत के मूलभूत सिद्धान्तों पर भी प्रकाश डाला है। इसी अनुक्रम में आईसवें अध्याय से छत्तीसवें अध्याय तक संगीत का निरूपण किया है जिसके अध्ययन से भारतीय संगीत की मौलिक रूपरेखा भली भाँति स्पष्ट हो जाती है।

भरत ने 'नाट्यशास्त्र' के अट्ठाईसवें अध्याय के प्रथम श्लोक में ही अतोद्य (चतुर्विध वाद्य) का विधिवत उल्लेख किया है। उन्तीसवें अध्याय में 'ततातोद्य विद्यानम्' के अन्तर्गत जातियों का रसानुकूल प्रयोग स्वर-वर्ण अलंकार, विभिन्न प्रकार की वीणाओं की वादन-विधि का विस्तृत उल्लेख किया है। नाट्यशास्त्र में विभिन्न वीणाओं की चर्चा है, जैसे- चित्रा, विपंची, कच्छपी, मत्तकोकिला एवं घोषा इत्यादि। चित्रा एवं विपंची वीणा को प्रमुख माना है तथा कच्छपी तथा घोषा को उनकी अंगभूत वीणा माना है। भरत की मुख्य वीणा 'मत्तकोकिला' वीणा थी। उसका वादक 'वैणिक' कहलाता था।

बृहद्देशी में वर्णित तंत्री वाद्य

मतंग कृत 'बृहद्देशी' ग्रन्थ में तत्कालीन समय में प्रचलित अनेक वीणाओं का उल्लेख मिलता है, जैसे-परिवादिनी, विपंची, वल्लकी, घोषवती इत्यादि। अनेक संगीताचार्यों के अनुसार 'मतंगश ने ही किन्नरी वीणा का अविष्कार किया। वीणा पर परदे लगाने की योजना सर्वप्रथम मतंग ने ही की। कुछ विद्वानों का यह मानना है कि सर्वप्रथम मंतग मुनि ने ही चित्रा वीणा के नाम का उल्लेख किया है। बृहद्देशी में चल वीणा और श्रुति वीणा का भी उल्लेख है।

नारद कृत संगीत मकन्द में तन्त्री वाद्य

श्संगीत मकरन्दश नारद का सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में 19 वीणाओं की चर्चा की गई है जिसमें कच्छपी, कुब्जिका, चित्रा, ब्राह्मी, रौद्री, कूर्मी, रावणी, सरस्वती, किन्नरी, सैन्ध्री और घोषका ये प्रमुख वीणाएँ हैं।

प्राचीन काल से मध्यकाल तक जिन तन्त्री वाद्यों का वर्णन संगीत ग्रन्थों में प्राप्त होता है। वह प्रमुख रूप से चित्रा, कच्छपी, कुब्जिका, परिवादिनी, घोषवती, ज्येष्ठा, जया, महती, नकुली, वैष्णवी, ब्राह्मी, किन्नरी, सरस्वती, घोषक इत्यादि हैं।

मध्ययुगीन ग्रन्थों में संगीत रत्नाकर का महत्वपूर्ण स्थान है। इसके तृतीय प्रकरण में कुवतविन्यास के लक्षण में अठारह वीणाओं की चर्चा की गई है तथा वाद्याध्याय में 11 वीणाओं की चर्चा है। इस तरह सब मिलाकर 29 वीणाओं के नाम संगीतरत्नाकर में

मिलते है जो इस प्रकार हैं - घोषवती, चित्रा, विपंची, परिवादिनी, वल्लकी, कुब्जिका, ज्येष्ठा, नकुली, किन्नरी, जया, कूर्मी, पिनाकी, हस्तिका, शततन्त्री, औदुम्बरी, रावणहस्तक, शाङ्र्गी, अलापिनी, एकतन्त्री, त्रितन्त्री, मत्तकोकिला, लघुकिन्नरी, बृहद्किन्नरी।

जयपुर के महाराज सवाई प्रताप देव जी ने हिन्दी भाषा की अपनी पुस्तक 'संगीतसार' में 16 प्रकार की वीणाओं का उल्लेख किया है। पुस्तक में सभी 16 वीणाओं का संक्षिप्त विवरण भी है। इन वीणाओं के नाम इस प्रकार हैं- रूद्रवीणा, ब्राम्हीवीणा, तुम्बरू वीणा, स्वरमण्डल वीणा, महती वीणा, मत्तकोकिला वीणा, रावणहस्त वीणा, पिनाकी वीणा, दंड वीणा, शुद्धमेल वीणा, मध्यमेल वीणा, एकतन्त्री वीणा, नकुली वीणा, चित्रा वीणा और विपंची वीणा।

मध्य युग में बिना परदे वाली वीणाओं में एकतन्त्री अर्थात घोषिका को जो स्थान प्राप्त था वही स्थान परदे वाली वीणाओं में किन्नरी वीणा को प्राप्त था।

भरतभाष्य में नान्यदेव ने 21 तन्त्री वाली वीणा को महती वीणा कहा जो कि नारद की वीणा रही है। इसके अतिरिक्त नान्यदेव ने निम्नलिखित वीणाओं का उल्लेख किया है ''अलाबू, मत्तकोकिला, चित्रा, विपंची, संवादिनी, परिवादिनी, किन्नरी, सरस्वती आदि।'' नान्यदेव ने द्वितन्त्री को 'विशोका' और परिवादिनी को 'ईश्वरी' वीणा कहा है। भरतभाष्य में अलाबु को द्वितन्त्री वीणा माना गया है-

''द्वितन्त्रीका तु जिज्ञेया, अलाबु पाड़ ग-संज्ञिता।''

उत्तर मध्य कालीन तन्त्री वाद्यों में विपंची और कच्छपी वीणा प्रचलित थी। इन दोनों वीणाओं का उल्लेख पूर्व मध्य काल के ग्रन्थों में तो था ही इन वीणाओं का वर्णन उत्तर पूर्व मध्य काल के ग्रन्थों में भी प्राप्त होता है। उत्तर मध्य युग में भारत में विदेशी संस्कृति के सम्पर्क से कुछ नये वाद्यों का आयात हुआ, यही वाद्य अब भारतीय संगीत के अभिन्न अंग बन गये। उत्तर मध्य युग में विपंची, कच्छपी, रबाब, सुरश्रृगांर आदि वाद्यों का वर्णन प्राप्त होता है।

उत्तर मध्य युग में रबाब, सुरसिंगार, सरोद, सितार जैसे वाद्यों में वादन विधि के नये-नये रूपों का प्रादुर्भाव हुआ, इन सभी नवीन वाद्यों का प्रादुर्भाव स्वतंत्र वाद्यों के स्वरूप तथा तन्त्रियों की संख्या के आधार पर हुआ था। इसका मुख्य कारण तन्त्री का दक्षिण पार्श्व में आ जाना व चिकारियों का मुख्य घुड़च पर रखा जाना इन वाद्यों की तन्त्री व्यवस्था का नया रूप है। तन्त्री व्यवस्था का अन्तिम परिवर्तन लगभग 13वीं शताब्दी से प्रारम्भ हुआ। किन्तु इसका अधिक प्रचार लगभग अद्धारहवीं शताब्दी के आस पास हुआ।

आधुनिक कालीन ग्रन्थों में सौरेन्द्र मोहन ठाकुर द्वारा रचित आंग्ल भाषा में वाद्यों के विषय पर 'यन्त्र कोष' एक प्रचलित पुस्तक है। इस पुस्तक में निम्नलिखित वीणाओं के नामों का उल्लेख है- श्रुति वीणा, सासर वीणा, रूद्रवीणा, शाङ्र्गी वीणा, एकतन्त्री, त्रितन्त्री, विपंची, प्रासमती, आलापिनी, चित्ता, किन्नरी, पिनाकी, महती, निःशक, नन्दु, तन्त्रचम्पक, स्वरमण्डल, तुम्बरू, प्रीयाबी, शततन्त्री, कच्छपी, शारदीय, बलाकी, कात्यायन, भारती, महाकच्छपी, स्वरवीणा, परिवादिनी और दण्डवीणा।

वैदिक काल से आरम्भ हुई तन्त्री वाद्यों की सनातन परम्परा आज भी उतनी ही प्रचलित है जितनी की प्राचीन काल में थी। तन्त्री वाद्यों का विकास न केवल उत्तर भारत में बल्कि दक्षिण भारत में भी समान रूप से हुआ। प्राचीन काल से वर्तमान काल तक तन्त्री वाद्यों के रूपों में बहुत परिवर्तन आयें। प्राचीन काल में समस्त तन्त्री वाद्यों को ''वीणा'' शब्द से सम्बोधित किया जाता था, किन्तु वर्तमान समय में ऐसा नहीं है। वाद्यों की इस विकसित परम्परा में आधुनिक काल में तानपुरा, सितार, सरोद, सन्तूर, सारंगी, सुरबहार प्रमुख हैं जो कि बनावट तथा वादन शैली दोनों ही दृष्टि से मध्ययुगीन तन्त्री वाद्यों के परिवर्तित रूप माने जा सकते हैं। आधुनिक काल के तन्त्री वाद्यों की वादन विधि में प्राचीन हस्त व्यापारों के कई रूप दिखाई पड़ते हैं तथा इनके साथ कुछ नए रूपों का भी प्रादुर्भाव हुआ है।

आधुनिक तन्त्री वाद्यों में तीन प्रकार के वाद्य प्रचलित हैं। एक जिन्हें मिजराब और जवा से बजाते हैं, जैसे- सितार, सरोद, विचित्र वीणा, रबाब, सुरबहार इत्यादि हैं। दूसरे प्रकार के वाद्यों में वह वाद्य हैं जो कि अंगुलियों के स्पर्श से बजते हैं जैसे तानपुरा और स्वरमण्डल। इन दोनों वाद्यों का प्रयोग आधार स्वर के रूप में किया जाता है। यद्यपि कुछ लोग स्वरमण्डल का प्रयोग स्वतन्त्र वादन में भी करते हैं। तीसरे प्रकार के वाद्य वे हैं जिन पर प्रहार के द्वारा वादन किया जाता है, जैसे-संतूर, कानून इत्यादि। यद्यपि इन सभी वाद्यों के विकास का एक काल रहा है और यही वाद्य वर्तमान समय में लोकप्रिय हुए।

उपरोक्त विवरण के आधार पर यह प्रमाणिकता के साथ कहा जा सकता है कि तन्त्री वाद्यों का स्थान एवं महत्व अन्य वाद्यों की अपेक्षा प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक सर्वोपरि रहा है तथा इनका स्वरूप चाहे जिस प्रकार का रहा हो इसमें सन्देह नहीं है कि यह प्रारम्भ से ही समस्त चर अचर को सम्मोहित करने में सक्षम रहे हैं तथा भारतीय संगीत के गौरव को सदा से बढ़ाते रहे हैं।

सन्दर्भ :

1 भारतीय संगीत का इतिहास, डॉ. एस. एस. परांजपे, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी

2 भारतीय संगीत वाद्य, डॉ. लालमणि मिश्र, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली

3 सितार वादन की शैलियाँ, डॉ. रजनी भट्नागर, कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली

4 मानसोल्लास, श्री सोमेश्वर भूपति, भाग 3, पृ. 92

5 भारतीय संगीत का ऐतिहासिक विश्लेषण, डॉ. स्वतंत्र शर्मा, टी. एन. भार्गव, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण - 2010

6 संगीत रत्नाकर - सरस्वती व्याख्या, सुभद्रा चौधरी, तृतीय खण्ड

शास्त्रीय ताल वाद्य (तबला, पखावज) उत्पत्ति के संदर्भ में विभिन्न मत एवं उपयोगिता

डॉ. शिव नारायण मिश्र

संगीत शिक्षक, सूरज नारायण सिंह देवनारायण गुड़मैता
उच्च विद्यालय सह वाट्सन इन्टर महाविद्यालय, मधुबनी

तबला उत्पत्ति के संदर्भ में विभिन्न मत

भारतीय संगीत में तबला की उत्पत्ति कब हुई यह एक विवादित प्रश्न है। तबला की उत्पित्ति के संदर्भ में संगीत जगत के विद्वानों के बीच मतभेद है। यहाँ हम तबला की उत्पित्ति के संदर्भ में विभिन्न मतों का वर्णन कर रहे हैं।

स्वाति ऋषि

तबला की उत्पित्ति के संदर्भ में विचार करते समय भरत नाट्य शास्त्र में वर्णित एक घटना का प्रायः कई विद्वानों ने वर्णन किया है।

''एक दिन स्वाति ऋषि पुष्कर तट पर जल लेने गए। संयोग से उसी समय वर्षा होने लगी। पुष्कर सरोवर और उसमें फैले भिन्न-भिन्न आकार-प्रकार के कमल पत्रों और पुष्पों पर आकाश से गिरती जल की बूँदों ने जिन भिन्न-भिन्न ध्वनियों को जन्म दिया, उससे ऋषि को एक सर्वथा नवीन वाद्य के आविष्कार की प्रेरणा मिली।

उन्हीं के निर्देष पर विश्वकर्मा ने एक ऐसे अवनद्ध वाद्य का निर्माण किया जो तीन भागों में विभक्त था। एक भाग उर्ध्वमुखी होने के कारण उर्ध्वक कहलाया। जबकि दूसरा भाग उर्ध्वक से आलिंगित होने के कारण आलिंग्य, तीसरा भाग बेलनाकार था, जिसे गोद अर्थात अंक में रखकर बजाये जाने के कारण आंकिक नाम मिला। पुष्कर तट पर मिली प्रेरणा से सृजित तीन वाद्यों के इस समूह को पुष्करत्रयी या त्रिपुष्कर भी कहा गया। उस युग में ऐसे अवनद्ध वाद्य मिट्टी के बनते थे अतः इन्हें मृदंग कहने की भी प्रथा थी। पहले मिट्टी के ढ़ांचे वाले सभी अवनद्ध वाद्यों को मृदंग कहने का प्रचलन था।''

कई विद्वानों के अनुसार भरत नाट्य शास्त्र में वर्णित त्रिपुष्कर ही तबला वाद्य का प्राचीन रूप है। मनोहर भालचंन्द्र राव मराठे ने अपनी पुस्तक ''ताल वाद्य शास्त्र'' के पृष्ठ सं. 07 पर लिखे हैं कि ''तबले की बनावट तथा विकास में मृदंग (पुष्कर) का आधार होने से हम इन्कार नहीं कर सकते, 12वीं सदी में शारंगदेव के समय तक पुष्कर वाद्य के आलिंग्य और उर्ध्वक भागों का वादन लुप्त हो चुका था। शायद इन्हीं दो भागों के आधार पर जबले की उत्पत्ति हुई हो''।

मेरे गुरूजी एवं मामा जी स्व. प्रो. रंग नाथ मिश्र (बनारस घराना) का कथन था कि स्वाति ऋषि की पेरणा से विश्वकर्मा जी ने जो वाद्य यंत्र बनाया था उसी के दोनों हिस्से उर्ध्वक और आलिंग्य ही आज का तबला वाद्य है। समय बीतने के साथ-साथ कलान्तर में इस वाद्य यंत्र में इसके नामों में परिवर्त्तन होता चला आया है।

मेरे मामा जी पं. विजय शंकर मिश्र अपनी पुस्तक तबला पुराण के पृष्ठ 11-12 में लिखते हैं कि ''जिस समय उर्ध्वक और आलिंग्य वादन का चित्र मिलना बंद होता है। लगभग उसी समय से तत्कालीन

संगीत समाज में तबला नामक वाद्यों का उल्लेख मिलने लगता है। वस्तुतः पुष्कर का उर्ध्वक और आर्लिंय भाग तब तक शास्त्रीय संगीत की दुनिया में कटकर कुछ परिवर्त्तनों के साथ लोक संगीत की दुनिया से जुड़ गया था। इसलिए शास्त्रीय संगीत के तत्कालीन अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों में तबले की चर्चा नहीं मिलती।

सुप्रसिद्ध संगीत शास्त्री ठाकुर जयदेव सिंह के अनुसार '' तबला प्राचीन भारतीय लोक वाद्य का अपरिष्कृत रूप में प्राचीन काल से ही भारत में था।''

त्रिपुष्कर पहले बड़े आकार में था तथा यह मिट्टी का बना हुआ होता था। लोगों को इसे कहीं लाने-ले-जाने में कठिनाई महसूस होती थी, इसलिए तत्कालिक कलाकारों ने त्रिपुष्कर को अपनी सुविधानुसार दो भागों में विभक्त कर दिया। उर्ध्वक और आलिंग्य अर्थात सव्यक (दायाँ) और वामक (बायाँ) को एक वाद्य का रूप दे दिया गया और आंकिक को दूसरे का। आंकिक उस काल में ध्रुपद संगीत के साथ जुड़कर मृदंग और फिर पखावज के नाम से प्रतिष्ठित हुआ तथा सव्यक और वामक दूसरे वर्ग के संगीत के साथ जुड़कर प्रचार में रहा। समय बदलने के साथ इसके आकार को थोड़ा छोटा किया गया और यह निम्नवर्गीय संगीत के साथ जुड़ गया। तब इसे खड़े होकर और कमर में बाँधकर बजाने की प्रथा चल पड़ी। जो लगभग बीसवीं शताब्दी तक प्रचार में रहा। और यह सव्यक और वामक से तबल और तबला-बाया नाम से पुकारा जााने लगा। दादरा, कहरवा, पष्तो, खेमटा, दीपचंदी, धुमाली आदि ताल जो लोक संगीत के हैं, तबला पर बड़ी आसानी से बजते हैं। जिससे स्पष्ट होता है कि तबला लोक संगीत से जुड़ा हुआ था।

''जिस प्रकार ठुमरी, टप्पा और मांड़ जैसी गायकी, कथकली, कथक, ओडिषी, मणिपुरी और कुचीपुड़ी जैसी नृत्य शैलियां और बांसुरी तथा शहनाई जैसे वाद्य लोक संगीत से शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में स्थापित हो गए। ठीक उसी प्रकार तबला भी जो उर्ध्वक और आलिंग्य नाम से कभी मार्ग संगीत की शोभा था। कलान्तर में तबला आदि नाम से देशी संगीत के साथ जुड़ा और फिर शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में प्रतिष्ठित हो गया।''

काशी से तबले की उत्पत्ति

कुछ विद्वानों का मत है कि काशी (वाराणसी) में भगवान शंकर तबला समान वाद्य की उत्पत्ति लाखों वर्ष पूर्व हुई है।

बनारस में संगीत परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। यहाँ की संगीत परम्परा दुनियाँ के सभी संगीत परम्पराओं से प्रचीन है। काशी की सभ्यता और संस्कृति (संगीत) इतना प्राचीन है कि प्राचीनता में विश्व का कोई भी नगर इसके समकक्ष नहीं है।

आज की खोज और अवशेषों के आधार पर पुरातत्वविदों ने यह सिद्ध कर दिया है कि आज से एक करोड़ वर्ष से भी पुर्व मानव पृथ्वी पर थे। भारत में तथा अन्य देषों में भी जब विज्ञान और संस्कृति अपनी चरम सीमा पर पहुँची है तो वहाँ किसी न किसी प्रकार विनाश अवश्य हुआ है। यह विनाश चाहे युद्ध के कारण हुआ या दैवी प्रकोप अर्थात प्रकृति द्वारा तूफान, वर्षा, भूकंप इत्यादि कारणों से।

भारतीय संस्कृति का समूलनाष कभी नहीं हुआ है। क्योंकि यहाँ वही संस्कृति आज भी चली आ रही है, पर विश्व की अन्य संस्कृतियों का जो एक बार विनाश हुआ तो पुनः कभी नहीं पनपी। भारतीय संस्कृति का गढ़ काशी है। चूँकि धर्मशास्त्रों में महर्षियों ने लिखा है कि काशी अनादि और अविनाशी नगरी है। यह शंकर के त्रिशूल पर है। इसका अन्त कभी नहीं हुआ है।

बौध ग्रन्थों के अनुसार वाराणसी में एक विद्यालय था जिसके अंतर्गत एक संगीत विद्यालय भी था जिसमें देश के श्रेष्ठ गुणीजन शिक्षक के रूप में नियुक्त थे। इस विद्यालय में छात्रों की न्यूनतम संख्या पाँच सौ थी। इससे स्पष्ट होता है कि वाराणसी सदा से संगीत का गढ़ रहा है। जब अजन्ता, अरहुत और सांची जैसे स्थानों में तबला वाद्य के भित्ति-चित्र मिलते हैं तो संगीत के गढ़ रूप काशी नगर में तबला का प्रचार न रहा हो यह संभव नहीं है। अतः कुछ

विद्वानों का मत है कि तबला की उत्पत्ति काशी में हुई है।''

ईसा पूर्व द्वितीय सदी से पूर्व तबला की उत्पत्ति

''ईसा पूर्व 200 वर्ष की एक बौद्ध गुफा में हमें एक इन्द्र शिल्प मिलता है जिसमें तबले जैसे वाद्य का तथा उसकी वादिका का स्पष्ट चित्रांकन किया गया है। महाराष्ट्र के पुणे नगर के निकट भाजा नाम की एक गुफा बौद्ध धर्म के हीनयान पंथ के उन्निति काल में श्रृंग राजाओं के समय की है। ऐसा पुरातत्व विभाग की पत्रिका में निर्देश मिलता है। भाजा की इन गुफाओं पर श्रृंग कला की छाप स्पष्ट दिखायी देती है। गुफा नं. 14 सूर्य शिल्प और इन्द्र शिल्प के नाम से प्रसिद्ध है। गुफा के प्रमुख द्वार की बाँयी ओर एक छोटा सा गर्भ द्वार है जिसकी दीवार पर बाँयी ओर सूर्य शिल्प एवं दाहिनी ओर इन्द्र शिल्प अंकित है। इसमें नृत्यगोष्ठी का चित्रांकन है। शिल्प में आसान पर बैठे राजा का एक चामरधारिणी स्त्री चामर हिला रही है। सामने एक नर्तकी नृत्य कर रही है, एवं एक वीणा वादक वादन में निमग्न है। पास ही एक स्त्री वादिका खड़ी है जो सामने रखे दो चर्मबद्ध ताल वाद्य को दानों हाथों से बजा रही है। उस तालवादिका के सामने जो वाद्य की जोड़ी देखी जाती है वह निश्चित रूप से तबला जैसा कोई वाद्य है जो आधुनिक तबले-डग्गे का पूर्वज लगता है। मूर्ति के उस भाग की ऊँचाई केवल नौ इंच है। उसमें गट्टे बद्धी, स्याही आदि स्पष्ट रूप से नहीं दिखते। वादिका के दोनो हाथ वादन मुद्रा में रखे दिखलाये गये हैं। स्याही का भाग अस्पष्ट है। लगभग दो हजार दो सौ वर्ष पूर्व प्राचीन मूर्ति में इस प्रकार की कुछ कमियाँ स्वाभाविक ही हैं। किन्तु यह प्रचीन भाषा शिल्प तबले के पूर्व रूप का स्पष्ट एवं प्रमाणित अंकन करता है। आधूनिक तबला जोड़ी के साथ उसका सामंजस्य स्पष्ट दिखता है, तथा इससे सिद्ध होता है कि ईसा पूर्व द्वितीय सदी में तबले जैसे वाद्य का प्रचलन भारत में था। उन दिनों उसका उपयोग कदाचित लोक वाद्य के रूप में होता होगा।''

छठी सदी से पूर्व तबला की उत्पत्ति

''डॉ. बी.सी. देव के अनुसार ताल वाद्य की जोड़ी की एक शिल्पाकृति प्राप्त हुई है जो छठी सदी की है। ईसा की छठी सदी के बदामी के एक शिल्प में तबला डग्गा जैसे वाद्य को बजाते हुए एक व्यक्ति की मूर्ति मिली है। उस शिल्प में दाँया वाद्य ऊँचा है, जबकि बायाँ उससे बिल्कुल आधा है। यह शिल्पकृति ही आधुनिक तबले डग्गा का प्रारंभिक रूप क्यों न हो ऐसी संभावना है जिसे प्रो. जी.एच. तारलेकर तथा श्रीमती नलिनी तारलेकर ने अपनी पुस्तक डनेपबंस प्देजतनउमदज वि प्दकपंद बनसचजनतम में व्यक्त की है। उनके अनुसार बजाने में असुविधा होने के कारण आगे चलकर दोनो वाद्यों की ऊँचाई एक-सी कर दी गयी होगी'' इस प्रकार कुछ विद्वानों का मत है कि भारत में छठी सदी से पहले तबला की उत्पत्ति हुई है।

विदेशी वाद्य के आधार पर तबला की उत्पत्ति

बहुत सारे विद्वान तबला की उत्पत्ति विदेशी वाद्यों से मानते हैं। डॉ. केदारनाथ भौमिक के अनुसार तबला विदेशी वाद्य है। अरब के किसी जुबल नाम के संगीतकार के पुत्र तुबल ने अति प्राचीन काल में तबले का आविष्कार किया। कुछ अन्य इतिहासकारों ने भी तबला को विदेशी वाद्य माना है। उनके अनुसार यह अरेबियन, सुमेरियन, मेसोपोटामियम अथवा फारसी संस्कृति से संबंधित वाद्य यंत्र है। उन्होंने कहा है कि प्राचीन काल में अरेबिया में प्रचलित युद्ध क्षेत्र में लकड़ी के आघात से बजाये जाने वाले तब्ल जग नामक वाद्य के आधार पर तबला का उत्पत्ति हुई है। पाश्चात्य लेखक स्ट्रेबा के अनुसार आधुनिक तबला-नबला जो प्राचीनकाल में एशिया खंड के जंगली लोगों में प्रचलित वाद्य था। उसका अपभ्रंष हो सकता था।

कई लोगों ने नगारा और महाराष्ट्र के लोक तालवाद्य संबल को तबला का जनक माना है।

संगीत मासिक पत्रिका के प्रधान सम्पादक डॉ. लक्ष्मी नारायण गर्ग ने तबला विशेषांक के सम्पादकीय

में लिखा है ''तबला 1800 ई. में अरब से हिन्दुस्तान आया जिसका पाश्चात्यवादी नाम अतबल है। फारसी में इसे तब्ल, मिस्त्र में तब्ल और हिन्दुस्तान में तबला, तब्ले या तब्ली कहा गया।''

द न्यू ऑक्सफॉर्ड हिन्दी ऑफ म्यूजियम एसियेट एण्ड ओरियेन्टल के अनुसार ''ईसा से दो हजार वर्ष पूर्व की मेसोपोटामियन संस्कृति में तबालू नामक प्राचीन ताल वाद्य का उल्लेख मिलता है। बाद में यही तबालू संगीत में स्पष्ट रूप से तबला कहलाया जो रोम में मशहूर हुआ।''

अमीर खुसरो द्वारा तबला की उत्पत्ति

बहुत से लोग हजरत निजामुद्दीन औलिया के शिष्य और अलाउद्दीन खिजली के दरबारी कवि हजरत अमरी खुसरो (1253-1325 ई.) को तबला का जन्मदाता मानते हैं। कई पुस्तकों में तथा आकाशवाणी आदि में भी अमीर खुसरो द्वारा तबला की उत्पत्ति की चर्चा की गई है। कहा जाता है कि अमीरखुसरो ने मृदंग को बीच से काटकर उसके दो भाग कर दिये थे जिसे तबला नाम से सम्बोधित किया गया।

खुसरो खाँ द्वारा तबला की उत्पत्ति

कुछ लोगों के अनुसार तबला के आविष्कारक सूफी कवि अमीर खुसरो नहीं बल्कि खुसरो खाँ नामक एक अन्य व्यक्ति थे। स्व. बृहस्पति ने खुसरो, तानसेन तथा अन्य कलाकार में एक खुसरो खाँ का वर्णन किया है जो गुजरात के निम्न श्रेणी की संगीतजीवी जाति के थे। इन्हें सन 1297 में गुजरात से कैद करके दिल्ली लाया गया। बाद में इन्होंने मुस्लिम धर्म स्वीकार करके अपना नाम खुसरो खाँ रखा। लोगों का मत है कि इन्हीं खुसरो खाँ ने तबला का आविष्कार किया था।

खब्बे हुसैन ढ़ोलकिया द्वारा उत्पत्ति

कई लोगों का मत है कि खब्बे हुसैन ढ़ोलकिया ने तबला वाद्य का आविष्कार किया। इस संदर्भ में लोगों को कहना है कि भवानी सिंह पखावजी और बढ़ई ढ़ोलक वादक में हमेशा स्पर्धा रहती थी। भवानी सिंह सदैव परास्त हो जाते थे। ये काली जी के भक्त थे। इन्होंने सच्चे मन से माँ कि अराधना की तब इन्होंने देखा कि एक बच्ची मृदंग पर परने बजा रही है। भवानी सिंह के वहाँ तक पहुँचने से पूर्व बच्ची पाँच परन बजा कर आलोप हो गयी। उसी समय आकाशवाणी हुई कि इन पाँच परनों की सिद्धि से विजय प्राप्त करने के लिए पाँच नारियल को सामने रखकर तब तक साधना करना जब तक नारियल स्वंय नहीं फूट जाये। यह सुनकर भवानी सिंह ने उस परण का अभ्यास किया एवं उसमें प्रसिद्धि प्राप्त किया। कुछ समय बाद जब एक-दूसर को परास्त करने हेतु दोनों लोगों का आमना-सामना हुआ तब भवानी सिंह ने कहा आज जो हार जाऐगा वह अपने वाद्य का वादन कभी नहीं करेगा। दोनों ने इसे स्वीकार किया। प्रथम भवानी सिंह ने मृदंग पर एक थाप मारकर उसे सामने छोड़ दिया।

देवी कृपा के कारण पाँचों परन अपने आप उसमें से बनजे लगे। इस चमत्कार को देखकर बढ़ई वादक ने अपनी पराजय स्वीकार कर ली और वचन दिया कि भविष्य में कभी ढ़ोलक का वादन नहीं करेगा। बढ़ई होने के कारण उन्होंने ढ़ोलक को बीच से काटकर दो वाद्य बनाया जिसका नाम तबला बायां रखा गया। कुछ लोगों का मत है कि बढ़ईया की परन नाम से जो बन्दिष है वह उसी बढ़ई वादक ने तबला पर बजाया एवं तबला का अविष्कार किया।

सुधार खाँ ढ़ाढ़ी द्वारा उत्पित्ति

''सादिक अली सिताब खाँ रचित सरमा, इसरत, मौलवी मुहम्मद इसहाक कृत रिसाल-ए-तबला नवाजी और श्री चिरंजीत के अनुसार एक बार पखावजी भगवान दास उर्फ भवानी दास और सुधार खाँ ढ़ाढ़ी के बीच हुई प्रतियोगिता में पराजित पखावजी सुधार खाँ ने पखावज को बीच से दो टुकड़े में काट दिया और उर्ध्वमुखी करके उस पर वादन किया। बीच से दो भागों में काट दिये जाने के बावजूद जब वह पखावज बोला, तब लोगों की प्रतिक्रिया हुई 'तब भी बोला' इस नवनिर्मित वाद्य के लिए यही शब्द कलाकार

में तबबोला, तव्बोला और तबला नाम से प्रचलित हुआ।''

आधुनिक युग के तबला की अनेक पुस्तकों में सिद्धार खाँ या सुधार खाँ द्वारा तबला की उत्पित्ति बतायी गयी। तथा, यह भी लिखा है कि सिद्धार खाँ ने तबला में कुछ सुधार किया एवं उसे ख्याल अंग की गायकी के साथ बजाने लायक बनाया। जिस कारण उन्हें प्रथम तबला वादक का भी श्रेय दिया जाता है। एवं लोगों का कथन है कि तबला के दिल्ली घराना की स्थापना इनके द्वारा किया गया है। तथा तबला की उत्पित्ति या तबले में सुधार इन्हीं के द्वारा किया गया है।

अन्य कारणों से तबले की उत्पित्ति

इस प्रकार हम देखते हैं कि तबला कि उत्पित्ति के संदर्भ में विद्वानों के अलग-अलग विचार हैं। इनके अलावा भी छोटे-मोटे विचार आते हैं तबला कि उत्पित्ति के संदर्भ में। कुछ लोगों का मत है कि महाराष्ट्र में प्रचलित सम्बल का परिष्कृत रूप ही तबला है। कुछ लोगों का मत है कि तबला की उत्पित्ति पंजाब प्रान्त के दुक्कड़ नामक वाद्य से हुई है। दुक्कड़ भी तबले के समान बजाये जाने वाला वाद्य है।

कुछ लोग प्राचीन अवनद्ध वाद्य दुर्दर एवं नक्कारे से तबला की उत्पित्ति मानते हैं। कुछ लोग कुदऊ सिंह के समकालीन लवूजे हुसैन नामक व्यक्ति को तबले का निर्माता मानते हैं। एक अन्य मतानुसार तबला निर्माण का श्रेय देवगिरि के संगीत विद्वान गोपाल नायक एक मृदंग वादक सहयोगी को दिया गया है। कुछ लोगों का मत है कि सिकन्दर ने तबला वाद्य का निर्माण किया था।

मूल्यांकन

तबला की उत्पित्ति के संदर्भ में हमने कई मतों का वर्णन किया है जो आज के कुछ आधुनिक पुस्तकों, आलेखों आदि में वर्णित है। समस्त विचारों के संकलन से ऐसा प्रतीत होता है कि आज का आधुनिक तबला प्राचीन काल से भारत में प्रचलित है, क्योंकि अनेक शिल्पकारों ने तबला जैसे वाद्यों का उल्लेख अपनी कला के माध्यम से किया है। यह सत्य है कि पूर्व में इसका नाम और आकार आज के तबला-बायाँ के समान नहीं था। समय परिवर्त्तन के साथ-साथ इस वाद्य के आकार और नाम में परिवर्त्तन हुआ है। संभव है कि आने वाले समय में भी इसमें कुछ परिवर्त्तन एवं प्रयोग किये जाए तो कोई आश्चर्य नहीं है।

पखावज के उत्पित्ति के संदर्भ में विभिन्न मत

मृदंग एवं पखावज लगभग एक ही वाद्य के दो नाम हैं। व्यक्ति सुविधानुसार पहले मृदंग कहते थे बाद में मुस्लिम काल के बाद यह वाद्य पखावज नाम से पुकारा जाने लगा। यहाँ हम मृदंग की उत्पित्ति के संदर्भ में विभिन्न मतों का वर्णन कर रहे हैं।

1. ब्रह्मा जी द्वारा उत्पित्तिः- मृदंग की उत्पित्ति कई विद्वानों के अनुसार ब्रह्मा जी द्वारा की गयी है। ऐसी कहाना है कि ''भगवान शंकर ने त्रिपुरा नामक राक्षस का वध किया तो आनन्द के अतिरेक में वे नृत्य करने लगे। किन्तु वह नृत्य लय में नहीं था। अतः इससे पृथ्वी डावांडोल होने लगी। जब ब्रह्मा जी ने देखा कि पृथ्वी रसातल में जा रही है तो वे भयभीत हुए और प्रलय निवारण हेतु उन्होंने तुरंत त्रिपुरासुर के शरीरावशेष से मृदंग की रचना करके विजयी शंकर के साथ ताल देने के लिए उनके पुत्र श्री गणेश को प्रेरण दी। गणपति जी के मृदंगवादन से प्रभावित होकर शंकर जी ताल में नृत्य करने लगे और इस तरह मृदंग का उद्भव एवं ताल का प्रादुर्भाव होने के कारण पृथ्वी रसातल में जाने से बच गयी।'' इस प्रकार कई पुस्तकों में ब्रह्मा जी को मृदंग का निर्माता बताया गया है।

स्वाति ऋषि द्वारा उत्पित्ति

एक दिन स्वाति ऋषि पुष्कर तट पर जल लेने गए। संयोग से उसी समय वर्षा होने लगी। पुष्कर सरोवर और उसमें फैले भिन्न-भिन्न आकार-प्रकार के कमल पत्रों और पुष्पों पर आकाश से गिरती जल की बूँदों ने जिन भिन्न-भिन्न ध्वनियों को जन्म दिया, उससे

ऋषि को एक सर्वथा नवीन वाद्य के आविष्कार की प्रेरणा मिली। उन्हीं के निर्देश पर विश्वकर्मा ने एक ऐसे अवनद्ध वाद्य का निर्माण किया जो तीन अंगों में विभक्त था। एक भाग उर्ध्वमुखी होने के कारण उर्ध्वक कहलाया जबकि दूसरा भाग विभक्त था। एक भाग उर्ध्वमुखी होने के कारण उर्ध्वक कहलाया जबकि दूसरा भाग उर्ध्वक से आलिंगित होने के कारण आलिंग्य, तीसरा भाग बेलनाकार था, जिसे गोद में रखकर बजाए जाने के कारण आंकिक नाम मिला। पुष्कर तट पर मिली प्रेरणा से संर्जित तीन वाद्यों के इस समूह को पुष्करत्रयी या त्रिपुष्कर भी कहा गया। उस युग में चूँकि ऐसे अवनद्ध वाद्य मिट्टी के बनते थे अतः उन्हें मृदंग कहने की भी प्रथा थी।''

कई लोगों का कथन है कि पुष्कर से ही पखावज या मृदंग की उत्पित्ति हुई है। पुष्कर का बेलनाकार भाग जिसे आंकिक कहा जाता था। वही आज का पखावज या मृदंग है। प्राचीन पुष्कर आज व्यवहार में नहीं है, पर मृदंग आदिकाल से अब तक अवनद्ध वाद्यों में मुख्य स्थान पाता रहा है।

मोहनजोदड़ों की खुदाई में सिन्धु घाटी की हजारों वर्ष पुरानी संस्कृति का जो पता चलता है। उसमें कुछ मुर्तियां ऐसी प्रतीत होती है, जिनके हाथ में वाद्य दिखाई देते हैं। एक मूर्ति के गले से लटकता हुआ ढ़ोल जैसा वाद्य है और एक वाद्य आधुनिक मृदंग था पखावज के पूर्वज जैसा भी प्राप्त होता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आज के युग का पखावज या मृदंग प्राचीन काल के त्रिपुष्कर का ही एक अंग है जिसमें लोगों ने सुविधानुसार परिवर्त्तन किया है, और समय के बदलाव के कारण इसके नाम में भी परिवर्त्तन हो गया है।

तबला/पखावज की उपयोगिता

संगीत में अवनद्ध वाद्य की उपयोगिता आज से हजारों वर्ष पूर्व से चली आ रही हैं। जहाँ कही भी संगीत गायन गायन या नृत्य का प्रदर्षन होता है उसके साथ कोई न कोई ताल वाद्य का प्रयोग अवश्य होता है। भारतीय संगीत में पखावज एवं तबला की बहुत उपयोगिता है। धुपद-धमार गायन के समय पखावज या मृदंग की संगति होना अति आवश्यक है। जिस प्रकार कोई सब्जी बने उसमें नमक नहीं दिया जाय तो वह स्वादविहीन हो जाता है। उसी प्रकार गीत या नृत्य की प्रस्तुति हो और उसमें ताल वाद्य तबला या पखावज आदि वाद्यों का उपयोग न हो तो वह संगीत भी फीका हो जाता है।

आज के युग में तबला की उपयोगिता सभी अवनद्ध वाद्यों में सबसे अधिक मानी जा सकती है। क्योंकि इसका उपयोग शास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत, लोक संगीत, फिल्मी संगीत के साथ-साथ पाश्चात्य संगीत रिमीक्स के साथ भी तबला का प्रयोग हो रहा है। ताल को संगीत का प्राण माना जाता है एवं तालों का बजाने हेतु तबला एवं पखावज का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि व्यक्ति के जीवन में प्राण (श्वास) की जितनी उपयोगिता है उसी प्रकार संगीत में तबला एवं पखावज की उपयोगिता है।

संदर्भ सूची

- तबला पुराण, लेखक-पं. विजय शंकर मिश्र पृष्ठ-6, 7, 8, 11, 12, 13
- ताल वाद्य शास्त्र लेखक-मनोहर भालचंद्र राव मराठे - पृष्ठ - 07
- ताल तरंगनी-लेखक-पं. रंगनाथ मिश्र-अप्रकाशित
- पखावज और तबला के घराने एवं परम्पराएँ लेखिका-डॉ आबान ए. मिस्त्री पृष्ठ-109-110-111
- ताल प्रकाश लेखक भगवत शरण शर्मा पृष्ठ-18
- तबला अंक- फरवरी 1993
- ताल अंक-पृष्ठ 48,
- पखावज और तबला के घराने एवं परम्पराये लेखिका-डॉ. आबान ए. मिस्त्री पृष्ठ-20
- संगीत (मासिक पत्रिका), सम्पादक-डॉ नारायण गर्ग

शास्त्र

भरतनाट्यशास्त्र पश्यन्ति की उत्तरआधुनिक व्युत्पत्तियां

गौतम चटर्जी

N-11/38, B, Ranipur, Mahmurganj, Varanasi-221010,

पूर्वपीठिका- एक

कलाकारों के सर्वोच्च शुभ का वेद है नाट्यवेद। आचार्य भरत ने इस पंचमवेद को नाट्यवेद नाम दिया है। बाद में इसे गान्धर्ववेद, नाट्योपनिशत्, नाट्यागम, भरतागम और फिर नाट्यशास्त्र कहा गया है। वेद के प्रति अर्थात् वैदिक सत्य के प्रति लोक में आस्था बनी रहे इसके लिए वैदिक और उत्तरवैदिक काल में ज्ञान के अन्य वांग्मय आये जिनमें नाट्यवेद, निरुक्त, न्याय, व्याकरण, मीमांसा आदि प्रमुख हैं। इसे बुद्ध के बाद और भास से पहले रचा गया अर्थात् आचार्य भरत और इस वेद का कालखण्ड है ईसा पूर्व पाँचवीं शती। इसे सामान्य मानस ग्रहण नहीं कर सकते। इसे समझने के लिए ऋशिसंस्कार या मुनिमानस प्रथम शर्त है। ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में वर्णन है कि इसे देवता भी ग्रहण नहीं कर सकते। इसे सिर्फ ऋषि, मुनि ही ग्रहण और धारण कर सकते हैं। देवता स्वयं ब्रह्मा के प्रस्ताव को अस्वीकार कर देते हैं। ब्रह्मा यह पवित्र वेद देवताओं को सौंपना चाहते हैं। किन्तु देवता कहते हैं कि वे इस ज्ञान के योग्य नहीं। कोई भी नहीं, सिवाय उनके जिनका मानस ऋषि-सा हो, मुनि-सा हो। देवतागण इस ज्ञान के लिए भरत मुनि का नाम प्रस्तावित करते हैं। इसी अध्याय में बता दिया गया है कि ऐसा मानस कैसा हो और क्यों हो। ऐसा मानस कैसा हो का उत्तर है, जो वेद के गुप्त रहस्य को जानता हो, जो उत्तम व्रतों का पालन करता हो, और जिस मानस में तीन गुण हों- श्रुति, स्मृति और धृति। ऐसा मानस क्यों हो, का उत्तर है, तभी हम इन छह हजार कारिकाओं के अभिप्राय को सीख पायेंगे। अगर हमारा मानस ऐसा नहीं है तो हम नाट्यशास्त्र को उसके अभिप्राय में नहीं समझ सकते। हमें पहले ऋषि या मुनि मानस का संस्कार लाना पड़ेगा। ऋषिग्रन्थ या मुनिग्रन्थ की गरिमा इसी में है। यह साहित्य तो है किन्तु यह उस प्रकार का साहित्य नहीं है जिस प्रकार के साहित्य को हम भास, कालिदास, भारतेन्दु, रवीन्द्रनाथ या निर्मल वर्मा का साहित्य कहते हैं! भारतीय मनीषा और विद्यावांग्मय में इसी कारण साहित्य को चार प्रकारों में पहले ही बाँट दिया गया है। चूंकि हम हिन्दी साहित्य या संस्कृत साहित्य के इतिहास तक ही सीमित रह जाते हैं इसलिए हमें दिखाई नहीं देता। पाणिनी ने अपने आकरग्रन्थ अष्टाध्यायी में साहित्य की चार प्रकार की कोटियाँ निर्धारित की हैं। ये हैं, द्रष्टा, प्रोक्ता, उपज्ञात और कृत। ऋषि के लिए उस समय शब्द दृषी था। इससे द्रष्टा बना है। दृषी बिगड़ कर आज ऋषि बन गया है। और अब यह प्रयोग या प्रचलन में है। दृषियों या ऋषियों ने जो देखा, जो उनके आगे उद्घाटित हुआ वह है द्रष्टा साहित्य। इसे उन ऋषियों ने लिखा, संजोया या संकलित नहीं किया। उनके देखे सत्य को यानी अज्ञात दृषियों द्वारा परा या अपौरुषेय स्तर पर देखें सत्य को जिन्होंने लिखा वे हुए प्रोक्ता। प्रारम्भिक वैदिक ऋषि जैसे दीर्घतमस या बुद्ध या सुकरात प्रथम कोटि के उदाहरण हैं और अष्वघोष या प्लेटो दूसरे प्रकार के साहित्य के। उपज्ञात उन्हें कहा गया जिन्होंने ज्ञान के किसी नये अनुषासन या विधा की

खोज की है जैसे व्याकरण। महर्षि पाणिनी ने स्वयं को इस श्रेणी में रखा है। और फिर शेष सारे प्रकार के साहित्य जैसे कहानियों, कविताओं को कृत के अन्तर्गत रखा गया। तब इसे सिर्फ काव्य कहा जाता था। गद्य भी। बाद में यह अलंकार शास्त्र और फिर साहित्य के रूप में प्रचलित हुआ। जैसे वैदिक समय में चित्रकला को आलेख्य कहा जाता था। दिलचस्प यहाँ यह भी है कि साहित्य और कला के प्राथमिक तत्वों की प्रतिष्ठा भी व्याकरण के उत्तरवैदिक ऋषियों ने की है, अर्थात् वैयाकरणों ने। संस्कृत साहित्य के उत्तरवैदिक रचनाकारों ने नहीं। इसलिए संस्कृत साहित्य का वांग्मय सिर्फ कहानी, कविता या नाटकों तक ही सीमित न होकर व्याकरण, निरुक्ति और मीमांसा होते हुए पूरे भारतीय दर्शन तक विस्तृत है। इन्हें जाने बिना किसी भी ग्रन्थ या साहित्य का पारायण असम्पूर्ण है। जैसे कला का एक प्राथमिक तत्व है प्रतिभा। अभिनवगुप्त, आनन्दवर्धन, राजशेखर या मम्मट से पहले इस शब्द की प्रतिष्ठा भर्तृहरि ने की है वाक्यपदीय में तभी हम इसके 'अपौरुषेय तक विस्तृत' अर्थ के बारे में जान सके हैं। ऋषि भर्तृहरि कहते हैं कि प्रतिभा तो सभी जीवों में होती है लेकिन कलाकारों में प्रतिभा के कारण छह हैं, स्वभाव, चरण, अभ्यास, योग, अदृष्ट और विशिष्टोपहित। उनका सन्देश यह है कि प्रतिभा तभी खुश्बू बिखेरती है जब कलाकार शिष्ट हो। वे बार बार प्रतिभा के साथ शिष्ट शब्द को लाते हैं। तो ऋषि मानस का अर्थ यह है कि जो उसे देख सकता हो जो दिख रहे के पार हो, यानी, जिसकी आँखों में तात्कालिक दृष्टि के साथ अप्रत्यक्ष को देख सकने की क्षमता हो, वह उस इन्द्रिय को विकसित कर चुका हो जो इन्द्रिय के अतीत हो और फिर उसने ऐसे मानस की रचना कर दी है जो सत्य को सीधे और बिना किसी आवरण के देख सकता है। ऐसे विद्वान की चेतना या सोच सिर्फ दृश्य तक सीमित नहीं रह जायेगी। जो दृश्य है वह सीमित है। रूप में सीमित। वह अरूप या सूक्ष्म का स्थूल दृश्य है। अरूप सत्व है और दृश्य झूठ, इसलिए कि वह अस्थाई और अनित्य और आनुपूर्वी है। इसी दृष्टि से आचार्य भरत ने अपने समकालीन और पूर्ववर्ती सभी ज्ञान-अनुशासनों से विचार नाट्यवेद में समाहित किया है सिर्फ चारों वेदों से नहीं। चारों वेदों से लेने का अर्थ है उन अन्य सभी प्राथमिक ग्रन्थों से जो वेद से ही निसृत हैं। पन्द्रहवें यानी छन्दोविधान अध्याय में उन्होंने भर्तृहरि के स्फोट सिद्धान्त को तीसरी कारिका में समझाना जरूरी समझा है। मुनि मानस का अर्थ यह कि जिसने मौन की साधना की हो, जिसने मौन से मन को शिष्ट किया हो। इस आधार पर ही आचार्य अभिनवगुप्त साधारणीकरण के पाँच स्तर निर्धारित करते हैं और पाँचवाँ है अतिन्द्रीय या ट्रान्सेन्डेन्टल। यह तभी सम्भव हो सकेगा जब रंगप्रस्तुति के पूर्ण होने पर एक सुदीर्घ मौन प्रभाव बने, भरत की भाषा में दैवी सिद्धि अर्थात् शान्त रस। दर्शक का अपनी वैखरी व्युत्पत्तियों से उपर उठ जाना, पष्यन्ति को सुन पाना यानी ट्रान्सेन्ड कर जाना तभी और सिर्फ तभी सम्भव है। इसकी प्रविधि या व्याकरण ही नाट्यवेद का सारांश है।

पूर्वपीठिका- दो

1986 की सर्द शाम थी वह। हालांकि उन दिनों कोलकाता में इतनी सर्दी पड़ती नहीं थी। तीन घण्टें तक पीटर ब्रूक का 'संक्षिप्त' महाभारत देखने के बाद हम नन्दन प्रेक्षागार में उनकी समीक्षा गोष्ठी में बैठे थे। अभिनेता के प्रत्यक्षीकरण और भारतीय दृष्टि पर बात होनी थी। अपनी बारी पर मैंने कहा कि भारतीय दृष्टि में अभिनेता प्रत्यक्ष नहीं रह जाता। पीटर के पास वाले सोफे पर बैठे उनके महाभारत के लेखक ज्यां क्लॉड केरियर पूछ बैठे, यह कैसे भला ! ऐसा इस धरती पर ही होता होगा न, कि स्वर्ग में, जहाँ भारत का पहला नाटक मंचस्थ हुआ था ? कुछ पल तो मैं भी कुछ बोल न सका, क्योंकि मैं क्लॉड का प्रशंसक हूँ। बुनुएल की सररियल छवियाँ याद आते ही मेरे जेहन में पहले क्लॉड की पटकथा उभरती है। लेकिन कुछ पलों के बाद मैंने कुछ ऐसे समझाया। मैंने कहा, मंच पर दो अभिनेता आते हैं। एक अभिनेता आकर विभिन्न मुद्राओं और आंगिक शैलियों का कुछ देर कुशल प्रदर्शन कर कहता है,

वह देखो हिमालय। दर्शक उस कलाकार की संवाद शैली और आंगिक कुशलता की प्रशंसा किये बिना नहीं रह पाते। वे मान लेते हैं कि रंगमंच का कलाकार बनने के लिए श्रमसाध्य परिश्रम और साधना की सचमुच जरूरत है। वहीं दूसरा अभिनेता मंच से सहज ही कहता है, वह देखो हिमालय, और दर्शक हिमालय देखने लगते हैं। यह दूसरा अभिनेता दो घण्टे तक दर्शकों को जो जो दिखाता है दर्शक वो वो देखते चले जाते हैं। पहला अभिनेता यूरोपीय है और दूसरा भारतीय। पहली प्रस्तुति में अभिनेता दिखता है, वह मुख्य है, और दूसरी प्रस्तुति में पाठ्य। भारतीय अभिनेता दर्शकों की आँखों के ऐन आगे होकर भी, प्रत्यक्ष होकर भी पूरी प्रस्तुति में अप्रत्यक्ष है। वह बिल्कुल सामने है लेकिन दर्शक उसे नहीं देखते, वे पाठ्य को, टेक्स्ट को देखते हैं। भारतीय दर्शन यही है कि 'वह प्रत्यक्ष है किन्तु वह नहीं दिखता'। उसकी शक्ति दिखती है। उसका वैभव दृष्य है। वह जो जो हमें दिखाता है हम उसमें स्वयं को खो देते हैं। यह उसी का सम्मोहन है। यहाँ आत्मा नर्तक या अभिनेता है। मन को वह रंगमंच बनाता है ताकि वह रंग कर सके, नृत्य कर सके, अभिनय कर सके, और प्रेक्षक हैं उसकी ही देह की इन्द्रियाँ। इस तरह प्रेक्षागार में बैठे सभी दर्शक उसकी ही इन्द्रियां हैं जो उसके उस आकाश या स्पेस को देख रहीं जो उनके भीतर भी है जो अब कलात्मक सौन्दर्य में सामने प्रकट हो रहा। अब दर्शक अभिनेता की रचनापूर्व और रचनासमय की अनुभूति का उसी समय एकसाथ अनुभव कर रहा। हमारे यहाँ दुनिया एक रंगमंच नहीं। दुनिया एक प्रेक्षागार है जहाँ प्रेक्षक या दर्शक उसे नहीं, उसके अभिनय को देखते है उस कथा में जिसे वह कहता है भावों में, जिसे भरत ने भावानुकीर्तन कहा है। तीनों लोकों का भावानुकीर्तन। यहाँ तीनों लोकों का अर्थ तीन लोक नहीं बल्कि एक ही लोक के तीन आयाम हैं जैसे जाग्रत, स्वप्न और सुशुप्ति, जैसे सत्, रज और तम, जैसे शब्द, अर्थ और भाव, जैसे नाद, बिन्दु और कला, जैसे भू, भुव और स्व, जैसे परा, अपरा और परापरा, जैसे कुछ नहीं, सब कुछ और इनका साक्षी। त्रिआयामी लोक का अलौकिक उत्सव। इसीलिए भारतीय साहित्य में रस या काव्य की मीमांसा पाठक की ओर से की गयी है। यूरोपीय दृष्टि में काव्यालोचना कवि की ओर से है। भारतीय प्रेक्षागार में सहृदय प्रेक्षक सर्वोपरि है। उसकी ओर से ही रंगमंच को नौ रसों के आधार पर नौ भागों में विभाजित करने का अभिनयधर्मी विधान है। उसकी इस 'ओर' पर नाट्यवेद के सत्ताइसवें अध्याय में चार कारिकाएं हैं जो प्रेक्षक या दर्शक को सहृदय प्रेक्षक में रूपान्तरित करने का अनुशीलन सौंपती हैं। ऐसा अभिनय सम्भव होने से ही सम्भव होता है पाठ्य और प्रेक्षक के बीच हृदय-संवाद, जिसका वर्णन अध्याय आठ में है।

वर्ण्य विषय

हृदय-संवाद के लिए आवश्यक है एक अनुशीलित एकाग्र मन और मन के बिना नाट्य में रस नहीं। मन नहीं तो रस नहीं। मन नहीं तो पाँचों इन्द्रियाँ अन्धी, बहरी हैं। इसीलिए पाँच मुनि भरत मुनि के पास जाते हैं। पूछते हैं कि हमें बताइए कि ये नाट्यवेद क्या है, क्यों है, कैसे है, इसे कहाँ और कब आपने पहले देखा और सीखा। पाँच ही जाते हैं और वे भी सामान्य लोग नहीं, पाँच मुनि। उनका नेतृत्व कर रहे हैं मुनि आत्रेय। छठे अध्याय में वे जानना चाहते हैं कि रस क्या है। सिर्फ इतना होता तो भी ठीक था लेकिन वे कहते हैं कि हमें रस के साथ निरुक्ति भी बताइए। और निरुक्ति के साथ हमें संग्रह और कारिका भी बताइए। अब आज पहले तो रंगकर्म का कोई विद्यार्थी रस पढ़ने नहीं जायेगा, यदि किसी स्कूल में पढ़ना भी चाहेगा तो निरुक्ति और कारिका के बारे में यह जानते ही कि ये संस्कृत व्याकरण से हैं, शायद उलटे पाँव वापस आ जायेगा। शायद ड्रामा करना ही छोड़ दे। रंगकर्मी ही नहीं, भरतनाट्यम, कथक, कुडियाट्टम या छउ सीख रहे नर्तक की सोच भी यही होगी। उनकी सोच में यह या वह चुनना रह गया है। सब में एक को देखना या एक में सब को जानना उनके लिए प्रतिगामी यथार्थ है। उसके मानस में ऐसे सीखना

अभी संस्कार ही नहीं बना है। उसका संस्कार अभिचार, अनुकार और प्रतिकार से सुसज्जित है। ऋषिमानस ऐसे नहीं सोचेगा। दूसरी ओर, संस्कृत नाटकों को मंचस्थ करने वाले, विशेषकर उत्तरप्रदेश के, रंगकर्मी तो नाट्यशास्त्र को और दुरूह, दुष्कर और दुःसाध्य बना चुके हैं। वहाँ तो सहज आधुनिक रंग रस ही अब अनुपस्थित है। भरत को पता था कि ऐसा हो सकता है। इसलिए उन्होंने संग्रह की बात कही। उन्होंने कहा कि यदि आप नाट्यशास्त्र के समस्त छह हजार श्लोकों को न भी पढ़ना चाहें, सीख कर न करना चाहें तो सिर्फ संग्रह को जानने से ही नाट्यशास्त्र को जानना हो जायेगा। संग्रह नाट्यशास्त्रसार है। इसके ग्यारह तत्व हैं। ये हैं, रस, भाव, अभिनय, धर्मी, वृत्ति, प्रवृत्ति, सिद्धि, आतोद्य, स्वर, गान और रंग। यदि आठों स्थाई भाव ही रस हैं तो संग्रह में भाव को अलग से शामिल करने की जरूरत क्यों पड़ी ! स्वर भी हो गया तो फिर अलग से गान क्यों !

उपनिषद् का अर्थ है कि सत्य के प्रतीक गुरु के करीब बैठकर ज्ञान प्राप्त करना। इसी से प्रस्थानत्रयी बना। उसी प्रकार इस नाटयोपनिषत् के ये ही ग्यारह प्रस्थान हैं। यहाँ हम किसी एक या दो प्रस्थान को संक्षेप में जानने-समझने की कोशिश कर रहे। जैसे संगीत। यानी स्वर और गान। और लय।

स्वर के बावजूद गान के बारे में भरत को अलग से बताने की जरूरत इसलिए पड़ी कि आज कोई भी गायक थाट नहीं गाता। वह राग गाता है। राग और थाट के स्वर एक ही होते हैं। भैरव राग और भैरव थाट में स्वर एक ही हैं। एक ही प्रकार के राग-स्वरूप के आधार पर रागों की श्रेणियां बनायी गयी हैं। ये थाट हैं। मारवा के साथ भी ऐसा है। भैरवी, खमाज, पूर्वी और काफी के साथ भी ऐसा ही है। दरअसल राग के स्वर से ही तो वह थाट बना तो फिर फर्क क्यों होगा ! फिर कलाकार कभी यह क्यों नहीं कहते कि आइए सुनाते हैं थाट भैरव। थाट को इसलिए नहीं गाया जा सकता क्योंकि थाट में आरोह तो होता है यानी स्वर तो होते हैं किन्तु अवरोह नही होता, और गान के लिए आरोह, अवरोह दोनों की जरूरत है। इसलिए स्वर के अलावा संग्रह में गान को शामिल किया गया। यद्यपि आचार्य भरत के महाजनपद समय में राग के लिए राग शब्द की जगह जाति शब्द प्रचलन में था, और जातियों की श्रेणियां रागांग, मेल या थाट नहीं, बल्कि ग्राम कही जाती थी। वे स्वर पर आधारित थे जैसे षड्ज या मध्यम ग्राम।

ताल का इतिहास हमारे यहाँ विद्वान अधिक से अधिक सात-आठ सौ वर्ष पुराना बताते हैं। नाट्यशास्त्र का ताल विवरण और आज के तालविमर्श में कोई सम्बन्ध विद्वतमानस देख नहीं पाते। मुनिमानस की फिर आवश्यकता है। आज जिसे हम ठाह कहते हैं वह उस समय था यथाक्षर। आज जो दुगुन और चौगुन हैं ये उस समय कहे जाते थे द्विकल और चतुष्कल। आज जिसे हम कहते हैं ताली और खाली, वे थे क्रमशः सषब्द क्रिया और निष्षब्द क्रिया। तो सिर्फ देखने की जरूरत है। और दिखाई देगा जब होगा वैसा मानस। दृष्टि नाट्यशास्त्र में प्रस्थान है। यदि दृष्टि नहीं तो चलना या जाना या गम नहीं, दृष्टि है तभी यह है आगम। दृष्टि ही मार्ग है। मार्ग संगीत का आविर्भाव इस प्रकार हुआ। स्वर इस तरह लगने हैं कि स्वर सामने हों लेकिन वे अप्रत्यक्ष हो जायें और उनका आत्यन्तिक स्वरूप दिखे। ताल सामने हो लेकिन वे दिखे नहीं। दिखे उनसे बना एक पूरा लोक। गान हमारे अन्तस में प्रत्यक्ष होता चला जाये, गायक भले ही सामने हो, सजा धजा बना सँवरा याद्दाष्त से भरा किन्तु वह गान न होकर गान का बिम्ब या रेप्लिका भर हो जिसके सहारे हम वास्तविक गान को अपने अन्तस में प्रत्यक्ष कर सकें, इन्द्रिय के पार जाकर शान्त शाष्वत भरत तट पर। इन्द्रियां बस पीछा करती रहें मृगया की तरह और मृग की तरह मार्ग गान की कस्तूरी का।

इसी दृष्टि से कलाकार को तीनों लोकों के भावों का अनुकीर्तन करना है, यानी, भौतिक, मानसिक और इन दोनों के सहसम्बन्ध से उपजे अदृश्य अधिभौतिक स्थिति में मौजूद भाव का पुनर्नवा। यह कभी अनुकार नहीं हो सकता। अनुकरण सिर्फ अवस्था का हो सकता है, भाव का कभी नहीं।

इसी प्रकार संग्रह का एक और महत्वपूर्ण तत्व है वृत्ति। अंग्रेजी में आज जिसे कहते हैं सीनिक ऐक्शन या दृश्यपरिकल्पना, उसे ही तत्कालीन शास्त्रीय संस्कृत में वृत्ति कहा गया। दृष्टि के बाद सृष्टि यानी दृश्य। यहां दो बातें आचार्य भरत आरम्भ में ही स्थिर और स्पष्ट और सुनिश्चित कर देते हैं। एक तो यह कि कलाकार या कवि का प्रथम लक्ष्य है दृष्टि। उस दृष्टि को अपने में खोज निकालना जिससे अप्रतिम, अलौकिक और असीमित सौन्दर्य का दर्शन किया जा सके, ही कवि होना है। यह विचारजनित नहीं। विचार स्मृतिनिर्भर या स्मृतिसापेक्ष होते हैं। स्मृति में पूर्वअनुभव और संस्कार हैं। विचार नया नहीं रच सकता। रचना या सृजन का अर्थ है नया और मौलिक। प्रथम। नया, मौलिक या प्रथम के दो लक्षण हैं तात्क्षणिकता और ताजगी। यह विचार के सामर्थ्य में नहीं है। इसके लिए सुशुम्ना की तरह एक अदृश्य नाड़ी उपहारस्वरूप प्रकृति ने कवि या कलाकार को दे रखी है, और यही है प्रतिभा जो कलाकार की शक्ति है जिसके जरिये आरम्भ में वह अपने व्यक्तिगत दोशों को हटा सकता है। जैसे आलस्य और प्रमाद।

प्रतिभा के जरिये ही वह कल्पना कर सकता है। ऋषि वह है जो उसे जो विचारदृश्य के पार है, को देख सकता है। देखा हुआ ऐसा दृश्य उसकी दृष्टि है। विजन। यानी सीयर या ऋषि या कवि या कलाकार वह है जिसके पास विजन या दृष्टि है। इसे ही आज हम साहित्य या सिनेमा में इमेज, इमेजरी या मेटाफर जैसे शब्द देते हैं। दृष्टि भौतिक बिम्बों के आलम्बन में जब व्यक्त की जाती है तो प्रतीक या इमेज कही जाती है। इसे ही तब मन्त्र कहते थे। अदृश्य जो दृश्य के पार है को प्रतीक से देखा जा सकता है। हमारे अवचेतन को छवि या प्रतीक चाहिए। फिर वह चेतन के विरोध में प्रखर नहीं हो सकता। वह प्रतीक की भाषा को समझता है। सन्ध्या भाषा योगियों की यही है। कलाकार की सन्ध्याभाषा ऐसी ही बिम्बभाषा है। तो यदि ऋषिचेतना के कलाकार के पास इमेज है, विजन है दृष्टि है तो फिर वह ऋषि है, कवि या कलाकार है। लेकिन यदि उसे यह लोक में बताना है, यदि उसे कहना है इस दृष्टि के बारे में तो फिर उसे सृष्टि करनी पड़ेगी। वाल्मीकि के पास दृष्टि थी। इतने से ही वे कवि हो गये। लेकिन उन्हें इसे बताने के लिए रामायण की सृष्टि करनी पड़ी। यानी दर्शन का वर्णन या सर्जन करना पड़ा। दूसरी बात मुनि भरत साफ कर देते हैं कि सौन्दर्य प्रथम महत्व पर है, कला दूसरे महत्व पर। जिस माध्यम से सौन्दर्य की रचना करते हैं वह कला है। सौन्दर्य अभिष्ट है। यदि कला से सौन्दर्य की रचना हो गयी तो दर्शन का वर्णन अलग से नहीं करना होगा। पाठ्य की अन्तर्वस्तु दर्शक के पास स्वतः पहुंच जायेगी, रसनिश्पत्ति अपनेआप हो जायेगी। जैसे संसार में सब कुछ अपने आप हो रहा। क्योंकि हर वस्तु अपना कारण स्वयं है। कलाकार या अभिनेता को सिर्फ अपनी अभिनयकला से सौन्दर्य या प्रभाव या रस की सृष्टि करनी होती है। और फिर दॉस्तोव्स्की के शब्दों में, यदि कलामिति या आर्टिस्ट्री अच्छी है तो बात अपने आप पाठक तक पहुंच जायेगी।

इसी दृष्टि से उन्होंने दृश्यविधान का स्वरूप तय किया और उसे उन्होंने वृत्ति कहा, जो आज सीनिक ऐक्शन है, दृश्यपरिकल्पना। प्रतिभा है तो कल्पना है। मौलिक और नयी। इमेजरी या मेटाफर। बिम्ब या रूपक। इसी आधार पर दस प्रकार के रूपकों की कल्पना की गयी। बिम्ब या रूपक यदि लिखे नाटक या पाठ्य के आधार पर रंगमंच पर नहीं बनाया गया तो उस पाठ्य का रंगपाठ यानी प्रयोग और प्रस्तुति पहले ही विफल है। प्रयोग है कि अभिनेता, और आज के निर्देशक, ने कोई बिम्ब रचा है या नहीं मंच पर। और फिर वह बिम्ब ही पूरी कहानी को अपने आप कहना शुरु कर देगा। यह प्रयोग है, चतुष्पदीय वृत्ति का, जैसे भारती या सात्वती या आरभटी या कैशिकी वृत्ति में बने दृश्यविधान या रंगबिम्ब का। अब अभिनेता द्वारा सौन्दर्य की रचना प्रस्तुति है। उसे मंच पर लगातार सौन्दर्य या रस की सृष्टि करनी है। सिर्फ प्रयोग है तो यह सम्प्रेषणीय नहीं होगा। सिर्फ प्रस्तुति है तो फिर इसका साधारणीकरण सम्भव नहीं।

सारांश

रचनाकार का परिचय उसकी दृष्टि है। यह विचारगर्भ नहीं, बल्कि अतीन्द्रियधर्मी है। इसे ही आज हम अन्तर्दृष्टि कहते हैं। रंगमंच पर इसका वर्णन उसका दृश्य है। यह दृष्टि पारलौकिक या पश्यन्ति के तल से उद्घाटित होने पर ही वह लौकिक पाठ्य या रंगकर्म के जरिये दर्शक को दृश्य के पार ले जा सकता है और स्वयं भी उपर उठ सकता है। यह अतिन्द्रिय क्षमता रचनाकार में सुप्तसंस्कार की तरह होती है जिसे प्रतिभा कहते हैं। जागृत होने पर यही रचनाकार को अमरता प्रदान करती है। रंगमंच पर सौन्दर्य की निरन्तर रचना और इस प्रक्रिया में दर्शक के साथ दृश्य के रूप से परे होना ही प्रेक्षागार में उसकी दृष्टि की रससृष्टि है। शान्त रस ही प्रतिभा या पश्यन्ति की प्रत्यभिज्ञा है। इस प्रकार शान्त रस के अरूप प्रकार ही पश्यन्ति की व्युत्पत्तियां हैं।

अध्वदर्शक स्वर

प्रो. निशा झा

सचिव, सांकृतिक्-परिषद्
तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

नाद और स्वर और महिमा अपार है। विद्वानों का कहना है कि प्रकृति में संगीत है। पशु-पक्षी, नदियां, झरने आदि इन सभी में स्वर विराजमान हैं। मतंग शारंगदेव सदृश शास्त्रकारों ने स्वर की पूर्ण व्याख्या की है। सप्तक में सात शुद्ध स्वर को सभी ने स्वीकार किया है—सा रे ग म प थ नी। इन सातों स्वरों की अपनी-अपनी विशेषता है। सप्तक में मध्यम स्वर का अपना विशिष्ट स्थान है। मध्यम स्वर के संबंध में उल्लिखित है कि

मध्यम स्वर...
वंश...देव
देवता...विष्णु
वर्ण...ब्राह्मण
रंग...कुंद
द्वीप...क्रोंच
रस...हास्य और शृंगार

मध्यम स्वर सप्तक के बिल्कुल मध्य में स्थित है। इसलिए यह मध्यम स्वर कहलाता है। सप्तक में मध्यम से पहले तीन स्वर—''सा रे ग'' और मध्यम के बाद तीन स्वर ''प,ध,नी'' है। यहीं चार, तीन और दो श्रुति का अंतराल है। ये श्रुति अंतराल सप्तक में मध्यम के दोनों ओर है। रागों के समय निर्धारण में मध्यम स्वर की भी भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। यह सप्तक का मध्य स्वर है, मध्य का एक यह भी अर्थ है कि, जिसका दो छोर हो। इसलिए यह राग निर्धारण के लिए दो दिशा को इंगित करता है। और रस सृष्टि में भी उसका प्रभाव विभिन्न होता है। राग के निर्माण में महत्त्वपूर्ण पहलू होता है। प्रातः कालीन रागों में शुद्ध मध्यम लगता है, जैसे— राग भैरव, कलिंगड़ा और बिलावल आदि।

रामकली जैसी रागों में भी अधिकतर शुद्ध मध्यम रहता है। जिस क्रम से दिन ढलने लगता है, तीव्र मध्यम प्रबल होने लगता है। और शुद्ध मध्यम का प्रयोग कम होता जाता है। इसका उदाहरण है. ..राग पूर्वी उसके बाद कल्याण फिर केदार आदि रागों का समय आता है। ये सभी राग तीव्र मध्यम प्रबल हैं।

हिंदुस्तानी संगीत के रागों का समय निर्धारित करने के लिए मुख्य रूप से तीन नियम मान्य हैं—

''1— पूर्व राग तथा उत्तर राग का नियम
2— संधि-प्रकाश तथा उसके बाद गाए जाने वाले राग का नियम
3— अध्वदर्शक स्वर का नियम।''(1)

हिंदुस्तानी रागों में समय निर्धारण में अध्वदर्शक स्वर महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। मध्यम स्वर को अध्वदर्शक स्वर कहते हैं। यह स्वर अपने शुद्ध तथा विकृत दो रूपों के कारण समस्त रागों को विभागों में बाँट देता है।

उदाहरणार्थ—''राग भैरव में रे-ध स्वर कोमल लगते हैं, तथा मध्यम शुद्ध लगता है। इसको सुबह का संधि प्रकाश राग कहते हैं। अब यदि शुद्ध मध्यम के स्थान पर तीव्र मध्यम को इस राग में लगाया जाए तो राग पूर्वी बन जाएगा। पूर्वी राग शाम का संधि प्रकाश राग है।'' (2)

इस प्रकार हमने देखा कि केवल मध्यम स्वर

समय-निर्धारण में कितने महत्व का है। मोटे रूप में हम कह सकते हैं कि शुद्ध मध्यम दिन की सूचना देता है तथा तीव्र मध्यम रात्रि की।

यहाँ पर यदि शुद्ध तथा तीव्र मध्यम का रूप परिवर्तन ध्यान में रखा जाए तो हम देखेंगे कि शुद्ध मध्यम लगने वाले संधि प्रकाश राग सुबह गाये जाते हैं तथा तीव्र मध्यम लगने वाले संधि प्रकाश शाम को।

''इसी प्रकार शुद्ध मध्यम लगने वाले रे-ध तथा शुद्ध तथा ग-नी कोमल स्वर वाले राग दिन में गाये जाते हैं। तथा तीव्र मध्यम लगने वाले इन्हीं वर्गों के राग रात में भी गाये जाते हैं।''(3)

''यदि यह देखा जाए कि शुद्ध मध्यम के साथ किस प्रकार दिन का संकेत मिलता है तथा तीव्र मध्यम के साथ प्रकार रात्रि के आगमन का संकेत मिलता है तो एक बहुत रुचिपूर्ण विषय बन सकता है। सबसे पहले राग बसंत, परज, को देखा जाए... इन रागों का समय सुबह दिन निकलने के पहले का, माना जाता है। इन रागों की विशेषता है कि इनमें दोनों मध्यम लगते हैं। परंतु मध्यम तीव्र की अपेक्षा शुद्ध मध्यम का महत्व कम है। इधर मध्यम तीव्र इस बात का संकेत करता है कि अभी रात्रि है और शुद्ध मध्यम का थोड़ा प्रयोग किस बात की ओर संकेत करता है कि अब दिन निकलने वाला है। बसंत-परज आदि रागों के बाद ललित राग का समय आता है। इस राग में तीव्र मध्यम की अपेक्षा शुद्ध मध्यम प्रबल होता है। यहाँ शुद्ध मध्यम इस बात को बतलाता है कि अब दिन निकल गया है। और मध्यम तीव्र का किंचित प्रयोग इस ओर संकेत करता है कि अभी थोड़ी देर पहले रात्रि समाप्त हुई है। अब जैसे ही दिन चढ़ता जाता है वैसे ही तीव्र मध्यम के स्थान पर शुद्ध मध्यम का महत्व बढ़ता जाता है। सायंकाल तक शुद्ध मध्यम की प्रधानता रहती है, परंतु शाम की संधि बेला में फिर तीव्र मध्यम का आभास होने लगता है। मध्यम का आभास इस बात की सूचना देता है कि अब रात्रि के बढ़ते ही तीव्र मध्यम की प्रधानता बढ़ती है, जैसे...राग पूरिया धनाश्री, श्री, मुल्तानी, यमन इत्यादि।''(4)

''यह नियम देखने पर पूर्ण नहीं कहा जा सकता क्योंकि इसमें भी अनेक राग अपवाद स्वरूप आते हैं। संधि-प्रकाश रागों में तो इस नियम का रूप कुछ स्पष्ट दिखाई पड़ता है। परंतु आगे जाकर इसकी स्पष्टता नष्ट होती जाती है। रे-ध शुद्ध स्वर वाले रात्रि गेय रागों में तीव्र मध्यम का लगभग लोप सा हो जाता है। रे ध शुद्ध के बाद ग-नी कोमल स्वर वाले वर्ग के रागों में भी इस नियम का पालन नहीं होता।''(5)

उदाहरण के लिए—''रात्रि के राग खमाज, बागेश्री मालकोंस आदि रागों में तीव्र मध्यम का प्रयोग नहीं किया जाता। इस प्रकार देखने से इस नियम को रागों के समय-निर्धारण करने के लिए ध्रुव नहीं कहा जा सकता।''(6)

मध्यम स्वर के संबंध में डॉक्टर समर बहादुर सिंह ने निबंध संगीत में लिखा है, कि ''रागों के समय निर्धारण में मध्यम स्वर की भूमिका भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं। मध्यम सप्तक का मध्य स्वर है और उसका प्रभाव राग के व्यक्तित्व निर्माण में बड़ी अहमियत रखता है।''(7)

भरत ने मध्यम को आवश्यक स्वर माना है और उसे अविलोपी स्वर कहा है। सप्तक का कोई भी स्वर ''जाति'' में वर्जित हो सकता था किंतु मध्यम कभी नहीं।(8)

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि मध्यम स्वर चल स्वर में, एक ऐसा स्वर है जो ''राग-गायन-समय'' को दर्शाता है। और राग को तीन प्रकार से प्रयुक्त होकर सजाता है, संवारता है,

जैसे...1— शुद्ध मध्यम

2— तीव्र मध्यम

3— दोनों मध्यम

इतना ही नहीं, यदि राग में दोनों मध्यम का प्रयोग हो तो बहुत से रागों का निर्माण होता है। ऐसे रागों में अत्यंत ही मधुर जोड़ी है...बिहाग और मारू बिहाग। बिहाग में शुद्ध मध्यम प्रबल और मारू बिहाग में तीव्र मध्यम प्रबल। इन दोनो रागों का बिल्कुल स्वतंत्र अस्तित्व है। यह मध्यम स्वर की अपूर्व महिमा है, जो सिर्फ अध्वदर्शक ही नहीं, अपने

आप में अविनाशी शब्द को भी सार्थक करता है। इसलिए मध्यम स्वर को अविनाशी भी कहा गया है।

संदर्भ ग्रंथ–

1-पृ.84, संगीत शास्त्र दर्पण (द्वितीय भाग)
लेखिका–श्रीमती शांति गोवर्धन

प्रकाशन– पाठक, पब्लिकेशन, इलाहाबाद।

2– पृ.87, वही
3– पृ.88, वही
4– पृ.88-89, वही
5– पृ.89,वही
6– पृ.89, वही
7– पृ.412, निबंध संगीत, प्रकाशन-संगीत कार्यलय, हाथरस।
8– पृ.81, प्रवीण-प्रवाह, लेखक-प्रो.एच श्रीवास्तव प्रकाशन-संगीतसदन इलाहाबाद।

RâgaVarâ7 i in the Early Telugu Publications – An Overview

Dr Rajshri Ramakrishna
Associate Professor
Department of Indian Music
University of Madras
Chepauk, Chennai

Pranathi G
M.Phil Scholar
Department of Indian Music
University of Madras
Chepauk, Chennai

Introduction

Rāga is an integral concept of Karṇāṭaka saṅgīta. Rāga-s are first introduced to a student of Karṇāṭaka saṅgīta through musical phrases in a composition, beginning from the musical form gīta. Rāga-s are classified into various types like janaka - janya classification, ghana - naya – dēśi classification and others. Ghana rāga-s includes the rāga-s Nāṭa, Gauḷa, Ārabhi, Varāḷ i and Śrī. Varāḷi is one of the ghana rāga-s which is the janya of the 39thmeḷakarta Jhālavarāḷi or Dhālivarāḷi (asampūrṇamēlapaddhati). Varāḷi is one of the vivādi rāga-s as it has śuddha gāndhāra in its scale. Each rāga is characterized by an ārōha and avarōha which is the scale of the rāga. Though the rāga is not restricted to just the scale, it defines the svara-s occurring in the rāga. The scale of Varāḷi is designed in a manner that the vivādi dōṣa is rectified. Many composers have composed wide variety of compositions in this rāga and they have been documented in the early Telugu publications. The early Telugu music publications have documented various theoretical and practical aspects of Karṇāṭaka Saṅgīta. The theoretical aspects include the characteristics of various rāga-s, tāḷa-s, gānakrama of different musical forms, etc. The practical concepts range from the basic exercises like svarāvaḷi, jaṇṭa, dāṭu, alaṅkāra-s, gīta-s, svarajati-s and varṇa-s to advanced concepts like kṛti-s andmanōdharmam aspects including rāgamtānampallavi, etc. The purpose of this paper is to study the rāga Varāḷi from the different musical forms documented in the early Telugu music publications.

The following works have documented different musical forms composed in rāga Varāḷi like gīta-s, varṇa-s, kṛti-s, tāna-s, sañcāri, rāgamālika-s, etc. and thus have been take up for study.

Sl. No	Publication (Abbreviation)	Author	Year	Type of musical forms documented
1.	Saṅgīta Sarvārtha Sāra Saṅgrahamu (SSSS)	Vīṇa Rāmānuja	1873	Gīta Varṇa Kṛti Rāgamāla gīta Tāna
2.	Gāyana Gāyanī Jana Pārijātamu (GGJP)	Various Scholars (Ed.)	1878, 1898, 1904	Kṛti
3.	Pallavi Svarakalpavalli (PS)	Tiruvottūru Tyāgayya	1900	Kṛti Svarasāhitya Rāgamālika
4.	Gāyakalōcanamu (GL)	Taccūr brothers	1902	Kṛti
5.	Saṅgīta Sampradāya Pradarśini (SSP)	Subbarāma Dīkṣita	1904	Gīta Kṛti, Sañcāri
6.	Saṅkīrtanaratnāvali (SR)	Tiruvottiyur Tyāgayya	1907	Varṇa, Kṛti
7.	Saṅgīta Sudhā Saṅgrahamu (SSS)	N.Munusāmi Nāiḍu	1909	Kṛti Rāgamālikavarṇa
8.	Gānēnduśēkharamu (GS)	Taccūr brothers	1912	Gīta
9.	Saṅgīta kaḷānidhi (SK)		1912	Kṛti
10.	Saṅgīta Svara Prastāra Sāgaramu (SSPS)	Nādamuni Paṇḍitu	1914	Gīta
11.	Saṅgītānanda Ratnākaramu (SAR)	Tenmaṭham Brothers	1917	Gīta
12.	Saṅgīta Sudhāmbudhi (SS)	K.V. Śrīnivāsa Ayyaṅgār	1917	Kṛti

The list of compositions in rāga Varāḷi documented in the early Telugu publications have been tabulated below according to the type of musical form.

Gīta

Sl. No.	Composition	Terminology given	Tāla	Composer	Publication	Year
1	Atulitavibhava	Yatirājagītāṣṭakamu	Jhampe	Not mentioned	SSSS	1873
2	Saṅgramabhūma	Gīta	Jhampe	Veṅkaṭamakhi	SSP	1904
3	Arērēnīlamēgha Śyāma	Lakṣaṇa gīta	Tripuṭa	Gōvinda	GS	1912
4	Sārasasambhavavinuta	Ghana rāga gīta	Rūpaka	Not mentioned	SSPS	1914
5	Rāmarākṣasabhīma	Ghana rāga gīta	Ādi	Tenmaṭham brothers	SAR	1917

Varṇa

Sl. No	Composition	Tāla	Composer	Publication	Year
1	Tōyajākṣirō	Ādi	Not mentioned	SSSS	1873
2	Tāmarasākṣi		Tiruvottiyur Tyāgayya	SR	1907

Kṛti

Sl. No	Composition	Tāla	Composer	Publication	Year
1	Kanakanarucira	Ādi	Tyāgayya	SSSS	1873
				GGJP	1878
				SK	1912
				SS	1917
2	Vara nāradanārāyaṇa	Ādi		GGJP	1878
3	Prakṛtajanulatō	Cāpu	Tiruvottiyur Tyāgayya	PS	1900
4	Śēṣācalanāyakam	Rūpakam	Muttusvāmi Dīkṣita	GL	1902
				SSP	1904
5	Māmavamīnākṣi	Miśraēkam		SSP	1904
6	Ninnu vina evarunnāru	Ādi	Tiruvottiyur Tyāgayya	SR	1907
7	Nīkṛpacēnākiṭula	Ādi	C.Munusvami Naidu	SSS	1909

Rāgamālika

Sl. No	Composition	Type of composition	Tāla	Composer	Publication	Year
1	Ō varada	Svarasāhityarāgamālika	Ādi	Tiruvaṭṭiyūr Tyāgayya	PS	1900
2	Intakōpa	Varṇarāgamālika	Ādi	Vīṇa Veṅkaṭasāmi	SSS	1909
3	Nīdarabāru	Navaratnamālika	Rūpaka	Tirupati Vidyala Nārāyaṇasvāmi		
3	Karnāṭakoṅkaṇa	Rāgamāla gīta	Not mentioned	Vīṇa Vijaya Varadayya	SSSS	1873
4	Śrīramaṇīkuca	Rāgamāla gīta	Dhruva			

Tāna-s/ sañcari

Sl. No	Type of Musical form	Tāla	Composer	Publication	Year
1	Tāna	Not mentioned		SSSS	1873
2		-do-	Veṅkaṭamakhi	SSP	1904
3	Sañcāri	Miśraēka	Subbarāma Dīkṣita		

Rāga Lakṣaṇa

The ārōha and avarōha of Varāḷi is mentioned as "s g_1 r_1 g_1 m_2 p d_1 n_3ś - ś n_3 d_1 p m_2 g_1 r_1 s" in PS of Tiruvottūru Tyāgayya while it is mentioned as "s r_1 g_1 m_2 p d_1 n_3ś - ś n_3 d_1 p m_2 g_1 r_1 s" in SR of Tiruvottūru Tyāgayya and SAR of Tenmam ham brothers. SSP of Subbarāma Dīkṣita mentions it to be "s g_1 r_1 g_1 m_2 p d_1 n_3ś - ś n_3 d_1 p m_2 g_1g_1 r_1 s". Rāga Varāḷi is mentioned as a sampūrṇa rāga as it has all the saptasvara-s in its scale. PS mentions Varāḷi as a

gamaka oriented rāga and a ghana rāga[1]. SSP mentions the phrases "s g r g m" and "p m g g r s" to be the rañjakaprayōga-s of this rāga. It also mentions that the śuddha gāndhāra is the jīvasvara of this rāga and that the gīta uses the prayōga "s g r g m" and the phrase "s r g m" is seen in the kṛti[2].

Rāga prayōga-s

The frequent use of jaṇṭaprayōga-sin the Varāḷirāgagīta-s resemble the tāna pattern played on the vīṇa. This could probably be because Varāḷi is a ghana rāga which is extensively used for tāna playing on the vīṇa. In the gīta Rāmarākṣasabhīma[3], both the āvarta-s end with a dīrghasvara of gāndhāra, which is unusual in varāḷi. Rare phrases like "p d s", "g p p" and "p g r" are seen in the gīta Atulitavibhava; "g p p" is also seen in the tāna in SSSS; "s ś ś" is seen in the gīta-s Saṅgrāmabhūma and Ārērēnīlamēgha. The entire ārōha and avarōha of varāḷi is seen in the phrase "s r g m p d n s n d p m g r" in the gīta Ārērēnīlamēgha. The gīta Saṅgrāmabhūmaranges up till tāra sthāyi niṣādha. The phrase "s g r g" is not seen in the gīta-s Sārasasambhava and Rāmarākṣasabhīma. In the gīta Sārasasambhava[4], the ascent in the melody is done using the dāṭuprayōga from sa to da. For example, "s d p", "s d d m", "s, d d p m", "s d d p". Rare phrases "ś ṙ ṁ" is seen in the kṛtimāmavamīnākṣi and "m p g r" is seen in the kṛtiśēṣācalanāyakam documented in SSP.

Pañcamavarja phrases are seen frequently in this rāga. For example, the phrase "d m g r" is frequently seen in the gīta-s, varṇa Tōyajākṣirō and is frequently seen in the sañcāri in SSP.

Each section of the tāna documented in SSSS ends on the ṣaḍja and the next section begins on the new range where the tāna is explored. The tāna documented in SSP ranges mostly in the mandra sthāyi. Few phrases of madhyasthāyi are seen. The tāna ranges between mandra ṣaḍja and tāra ṣaḍja.

The kṛtininnuvinā of Tiruvottūru Tyāgayya in SR has 8 saṅgati-s in the Pallavi showing the gradual development in the movement of the rāga by implementing small changes to the phrases.

Tāla-s

Thegīta-s in rāga Varāḷi are composed in sūlādisaptatāḷa-s like jhampe, tripuṭa, rūpaka and ādi. Tāḷa for the Rāgamālagītakarṇāṭakoṅkaṇa is not mentioned while the Rāgamālagītaśrīramaṇikuca is composed in Dhruva tāḷa. Both the varṇa-s Tōyajākṣi and tāmarasākṣi are composed in ādi tāḷa. The kṛti-s documented in Varāḷi are composed in ādi, cāpu, rūpaka and miśraēkam. Sañcāri documented in SSP is also composed in miśraēkam.

Structure

The kṛtininnuvinā of Tiruvottūru Tyāgayya in SR hasa cimm asvara after the Anupallavi which is not repeated after the caraṇa. This is rare as the ciṭṭasvara is usually repeated after the caraṇa also. The tāna documented in SSSS is mentioned as aittamu. The structure of this tāna has an eḍpu, muktāyi, udgrāha and another muktāyi. This is rare as tāna usually isn't divided into named sections.

Presentation of notations in the publications

Only the sāhitya of the kṛti-s is mentioned without notation in SSSS, GGJP[5], GL, SSS and SK. Thekṛti Kanakanarucira is documented with a Pallavi, Anupallavi and 2 caraṇa-s in most of the works while only SS documents it with a Pallavi, Anupallavi and 8 caraṇa-s, documenting the notation only for the Pallavi, Anupallavi and the last caraṇa. It is also mentioned in this work that the notation for the other 7 svara sāhitya-s is unavailable[6]. The kṛtivaranārada is mentioned to be in rāgavarāḷi in GGJP[7] whereas it is sung in the rāgavijayaśrī currently. The notations in PS and SR have a dot above the svara at the beginning of each āvarta. There is a double bar at the end of each section of the composition. Sthāyi symbols are missing in the works SP, SSSS, SR, SSS and GS. Sthāyi is mentioned using an inverted comma in SAR.Gamaka symbols are seen only in SSP.

Conclusion

Rāga Varāḷi is a traditional rāga which hasn't undergone many changes through time. Varāḷi, being a popular rāga in Karṇāṭaka saṅgīta, resulted in many composers composing different musical forms in this rāga ranging from the gīta, varṇa, kṛti to being a part of the rāgamālika-s. As it is a ghana rāga, tāna-s are also sung or played in this rāga. Though the approach to explore this rāga may vary according to the composer, the overall lakṣaṇa of the rāga is maintained constant by all the composers. Introducing the rāga Varāḷi at an early stage like gīta-s will be an enriching experience to the student.

References

1. VīṇaRāmanuja, *Saṅgīta Sarvārtha Sāra Saṅgrahamu* (1859), pub. Śrīlakṣminṛsimhamudrākṣaraśāla Chennappaṭṭaṇamu, 1912.
2. Tiruvoṛṛiyūr Tyāgayya, *Pallavi Svara Kalpavalli*, Chennai, 1900.
3. Subbarāma Dīkṣita, *Saṅgīta Saṁpradāya Pradarśini*, T. Rāmacandra Ayyaṅgār, 1904
4. Tenmaṭham Brothers, *Saṅgītānanda Ratnākaramu*, pub. Śrīnikētanaṁudrayantra, Madras, 1917
5. K. V. Śrīnivāsa Ayyeṅgār, *Saṅgīta Sudhāmbudhi*, Pub. M. Adi & amp; co, Madras, 1917.
6. *Gayana Gayani Jana Pārijātamu*. 1878 ed. Tanjore A. Kannayya Śeṭṭi
7. Nādamuni Paṇḍita, M. *Saṅgīta Svara Prastāra Sāgaramu*. Cannapuri : Dowder Press, 1914.
8. Rāmanāthan N, *"Pre 1940 Music Publications, by N Ramanathan"* Available at http://musicresearchlibrary.net/omeka/items/show/2355
9. Taccūru Siṅgārācāryulu & Brothers , *Gānēnduśēkharamu*, 1912.
10. Taccūru brothers, *Gāyaka Lōcanamu*, Pusparatha Setty & Company, 1902
11. Tyāgayya Tiruvattūru, *Saṅkīrtana Ratnāvaḷi*, Uḷḷiyanellūru Aḷagam Kṛṣṇamācāryulu, 1907
12 Moonooswamy Naidu N, *Saṅgītasudhāsaṅgrahamu*, 1906
13. Taccūru brothers, *Saṅgīta Kalānidhi*, 1912
14. Vijayalakṣmi S, "*The Evolution, Structure And Musical Analysis Of Select Lakṣya And Lakṣaṇa Gīta-s"* Available at https://shodhganga.inflibnet.ac.in/handle/10603/193877

Appendix

1.1 Rāgalakṣaṇa of Varāḷi in PS

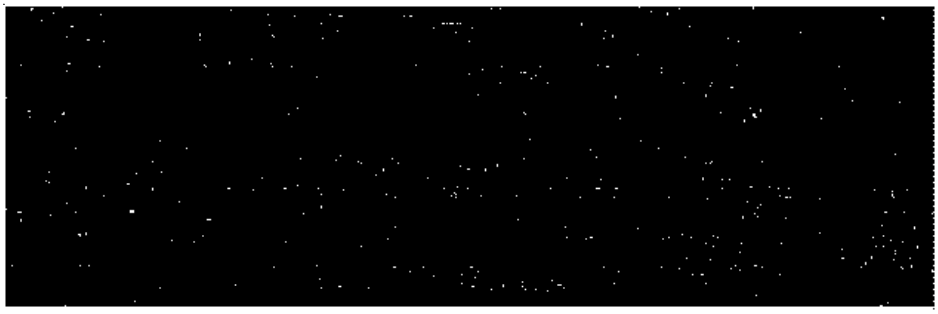

1.2 Rāgalakṣaṇa of Varāḷi in SSP

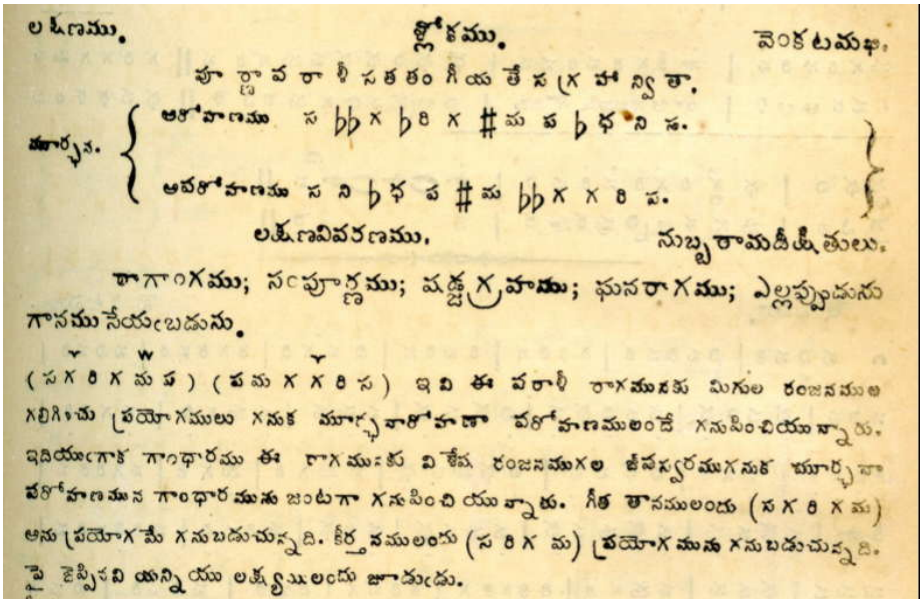
లక్షణము. శ్లోకము. వెంకటమఖి.

పూర్ణావరాళీ సతతం గీయతే సర్వహాన్వితా.

మూర్ఛన. { ఆరోహణము స bb గ bరి గ #మ ప bధ ని స.
అవరోహణము స ని bధ ప #మ bb గ గ రి స. }

లక్షణవివరణము. నుబ్బరామదీక్షితులు.

రాగాంగము; సంపూర్ణము; షడ్జగ్రహము; ఘనరాగము; ఎల్లప్పుడును గానము సేయఁబడును.

(స గ రి గ మ ప) (ప మ గ గ రి స) ఇవి ఈ వరాళీ రాగమునకు మిగుల రంజనము నలిగించు ప్రయోగములు గనుక మూర్ఛారోహణావరోహణములందే గనుపించియున్నారు. ఇదియుఁగాక గాంధారము ఈ రాగముఁకు విశేష రంజనముగల జీవస్వరముగనుక మూర్ఛావరోహణమున గాంధారమును జంటగా గనుపించియున్నాడు. గీత రాగములందు (స గ రి గ మ) అను ప్రయోగమే గనుబడుచున్నది. కీర్తనములందు (స రి గ మ) ప్రయోగమున గనుబడుచున్నది. పైఁ జెప్పినవి యన్నియు లక్ష్యములందు జూడుఁడు.

1.3 Gīta—Rāmarākṣasabhīma in SAR

1.4 Gīta—Sārasasambhava in SSPS

ṡ	,	d	d	m	,	g	g	r	r	s	,	s	,	s	d	p	,	d	n	ṡ	ṙ	ṡ	,	
sā		ra	sa	sam		bha	va	vi	nu	tā		sā		ma	ja	pā		la	na	ca	tu	rā		
ṡ	,	n	d	p	m	p	,	m	g	r	s	n	d	p	m	g	r	r	g	r	r	s	,	
sā		ra	va	ca	na	sad		gu	ṇa	ga	ṇa	sa	ra	si	ja	da	ḷa	sa	ma	na	ya	nā		
s	,	s	d	d	m	g	r		r	s	s	s	,	s	d	p	,	d	n	ṡ	ṙ	ṡ	,	
ā		di	cya	va	ti	pra	san		na	sa	hi	tō		ma	ja	sāt		vi	ka	yu	ta	mai		
ṡ	n	,	d	p	m	p	,	m	g	r	s	n	d	p	m	g	r	g	,	r	,	s	s	
sa	dā		hās		ya	sam		yu	ta	mī		sā		yāh		va	mu	tō		raṅ		ji	lu	
s	,	d	d	p	m	g	,	r	r	,	s	s	,	s	d	d	p	d	n	ṡ	ṙ	,	ṡ	
rū		pa	ka	ga	ti	tō		va	rā		ḷi	rū		ḍhi	gā		nu	vi		na	vin		tu	
ṡ	,	n	d	p	m	p	p	m	g	r	s	n	d	p	m	g	r	r	g	r	r	s	,	
ē		pu	mī		ra	nu		rā		gha	va	veṅ		ka			ṭa	dā		su	ḍa	nē		

1.5 Kṛti – Kanakanarucira in GGPJ

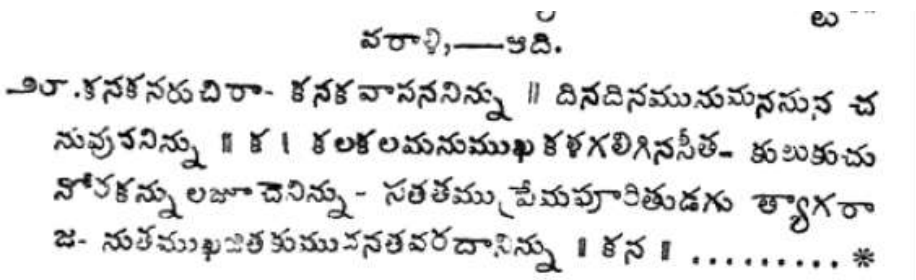

1.6 Kṛti - Kanakanarucira in SS

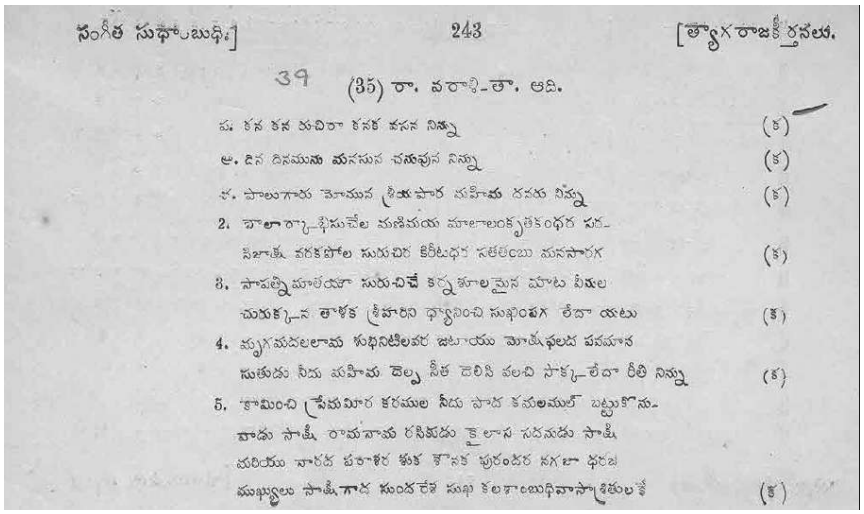

6. ముఖాస్వద విముఖాంబుధర పవనవిదెహ సూతసు విహారాస్థ
సురధూమామణి గుణాంగ చిదానంద ఖ్యాతనం ధృతరధాంగ
పరమ దయాకర కరుణారస వరుణాలయ భయాపహార శ్రీరఘుపతే (క)

7. కలకలమను ముఖ కళ కలిగిన పీత కులుకుచు ఓర కన్నులను జూచే నిన్ను (క)

8. సతతము శ్రేయు పూరితుడగు త్యాగరాజనుత ముఖజిత కుముదహిత వదన నిన్ను (క)

ప. ; * పమా - పమా - పమగా - రీ - సా;	; - నిధా - నిసా	గరిగా; - గమ	‖
; * కన - కన - రు. . - చి - రా;	; - కన - కప	ను. న; - ని.	‖
2. పమ * డిటా	జిటా	డిటా	‖
న్నా. * డిటా	జిటా	డిటా	‖
3. పధపమ * డిటా	డిటా	సరిగా - గామాపధపమ	‖
న్నా.. * డిటా	డిటా	స.న - ని	‖
8. మపాపు * పమా-పా,ధని-ధపమా;-పమగా రీసా;	ఢిటా	డిటా	‖
న్నా. . * కన - కా;.-న , ,-య , , చిర;	డిటా	ఢిటా	‖

5. డిటా * డిటా -గామాపధనిధపమగరి-రిగా	గరిసని-సనిధా-నిసనీ	డిటా	‖
డిటా * డిటా -య , , , , , , , , -చి .	ర .. -క . న -క, వ	డిటా	‖
6. డిటా * పమా - పసా-నిధపమా- డిటా	డిటా	డిటా	‖
డిటా * కన - క . . న. . - డిటా	డిటా	డిటా	‖
7. డిటా * పమా - పమా - పమగా రీసా;	సా ; ; ;	; ; - ; ;	‖
డిటా * కన - కన - రు . . చిరా,	. ; ; ;	; ; - ; ;	‖
అ. 1=2 ; * నిసని - ధపమ - పమపధ - నిసా	; - నిసనిధపమ	గమపా - ధనిసా	‖
; * దిన . - దిన . - ము.ను. - మున	; - దిన . ది. న	ము.ను - మ.న	‖
3=4 ; * సనిరీసని-ధపమ-గమపా-ధనిసా	; - సనిరీసని - ధపమ	గమపా-ధని-సా రీసనీ;	‖
; * ది. న . . -దిన . -ము .ను-మ. న	; - ది. న .. - దిన .	ము. ను -మ.-న , . .;	‖
5. ; * ని - సని - ధపమ - గమపధ - నిసా	; - రిగారిసా	సనిరీసి - నీనీ	‖
; * ది - న . - దిన . - ము . ను - మున	; - మునచను	వు. న. - నిన్ను	‖
6. ; * డిటా	; - సరి గారిసా	నిసరీసి - నిసరీసి-నీనీ	‖
; * డిటా	; - సు. నచను	వు. . . - న . .-నిన్ను	‖

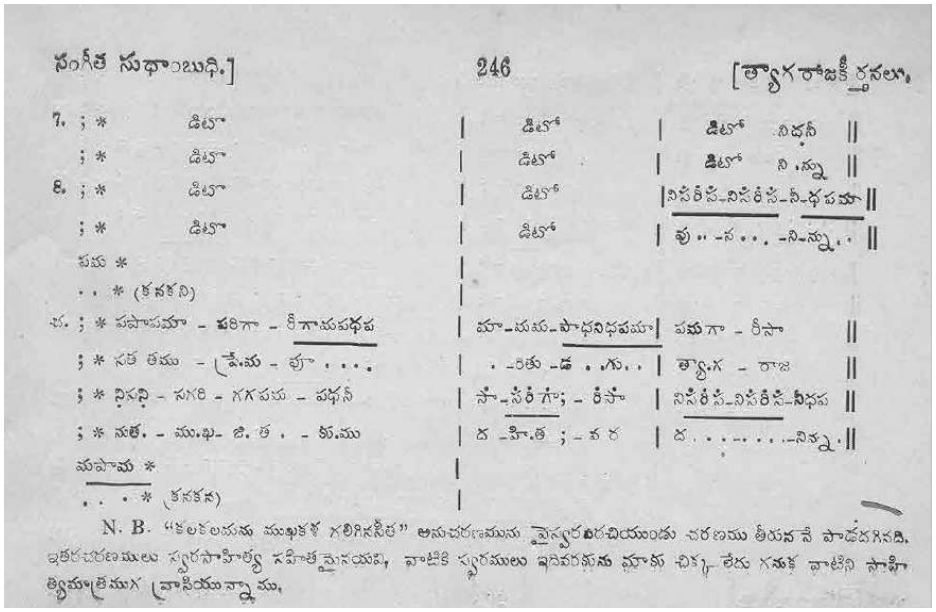

సంగీత సుధాంబుధి.] 246 [త్యాగరాజకీర్తనలు.

7. ; * డిటో | డిటో | డిటో నిధనీ ||
; * డిటో | డిటో | డిటో ని .న్ను ||
8. ; * డిటో | డిటో | నిసిరీసి-నిసిరీస-నీ-ధపమా ||
; * డిటో | డిటో | వు .. -న . . . -ని-న్ను . . ||
పమ *
. . * (కనకని)
ఋ. ; * పపాపమా - పరిగా - రీసాపపధప | మా-పపమ-పాధనిధపమా | పమగా - రీసా ||
; * సత తము - ప్రేమ - పూ . . . . | . -రితు -డ . .గు . . | త్యాగ - రాజ ||
; * నిసని - సగరి - గగపమ - పధనీ | సా-సరీగా; - రీసా | నిసిరీసి-నిసిరీసి-నీధప ||
; * నుత. - ముఖ- జి. త . - కుము | ద -హిత ; - వర | ద . . . . . -నిన్న . ||
మపామ *
. . * (కనకన)

N. B. "కలకలమను ముఖకళ గలిగినటిర" అనుచరణమును వైస్వరరచియుండు చరణము తీయనే పాడదగినది. ఇతరచరణములు స్వరసాహిత్య సహితమైనయవి, వాటికి స్వరములు ఇదివరకును మాకు చిక్క లేదు గనుక వాటిని పాటి త్యామాత్రముగ వ్రాసియున్నాము.

1.7 Kṛti—Vara nārada in GGJP

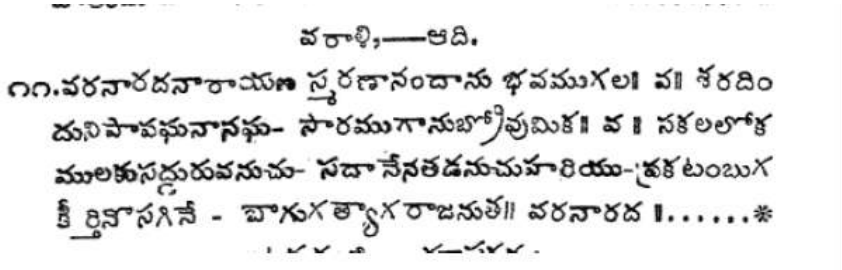

వరాళి,—ఆది.

౧౧.వరనారదనాశాయణ స్మరణానందాను భవముగల॥ వ॥ శరదిం
దునిపావఘనానఘు- సారముగానుబోవుమిక॥ వ॥ సకలలోక
ములకుసద్గురువనుచు- సదానేనతడనుచుహరియు-వ్రకటంబుగ
కీర్తినొసగినే - బాగుగత్యాగరాజనుత॥ వరనారద॥.....*

(Footnotes)

[1] Refer Appendix 1.1
[2] Refer Appendix 1.2
[3] Refer Appendix 1.3
[4] Refer Appendix 1.4
[5] Refer appendix 1.5
[6] Refer Appendix 1.6
[7] Refer Appendix 1.7

थाट, स्केल तथा रागः कुछ उत्तर - आधुनिक अवधारणाएँ

गिरीश प्रेमलाल चंद्रिकापुरे

सहायक प्राध्यापक

आर. एस. मुंडले धरमपेठ कला वाणिज्य महाविद्यालय, धरमपेठ, नागपूर (महाराष्ट्र)

प्रस्तावना

प्रस्तुत लेख में हिंदुस्थानी संगीत की थाट पद्धति की उपयोगिता प्रतिपादन करते हुए, नव आधुनिक काल की माँग के अनुसार थाट पद्धति मे कुछ भराव सुझाए हैं। करीब सौ - सवा सौ साल पूर्व स्थापित इस पद्धति को कालानुसार अद्यावत् करने में कुछ अल्पस्वल्प योगदान करने का लेखक का प्रयास है।

विषय प्रवेश

दक्षिण के पं. व्यंकटमखी इन्होने एक सप्तक में 72 मेलों की उत्पत्ति सिद्ध की। किन्तु कर्नाटकी संगीत के व्यवहार में 19 मेलों का ही चलन रहा। आधुनिक संगीत महर्षि पं. विष्णु नारायण भातखंडे जी इन्होंने इन्हीं 72 मेलों से उत्तर भारतीय संगीत में संभव 32 मेलों का उल्लेख किया, यद्यपि व्यवहार के लिए उनमें से 10 उपयोगी थाटों का आविष्कार किया। इन 10 थाटों में तात्कालीन प्रचलित लगभग सभी राग वर्गीकृत हो पाए।

आधुनिकोत्तर संगीत के व्यवहार में इन्ही 10 थाटों से व्यवहार किया जाता है। जहाँ थाट पद्धति अधूरी लगती है वहाँ रागांग पद्धति का भी सहारा लिया जाता है।

विषय वस्तु

परमाचार्य पं. भातखंडे जी ने थाट की जो अवधारणा प्रस्तुत की है, उसके कुछ नियम निम्न प्रकार से हैं। इन नियमों के सर्वपरिचित होने का तथ्य स्वीकारते हुए भी प्रस्तुत लेखक इन्हें उल्लेखित करना चाहता है, क्यों कि उनमें से कुछ पर नया विचार प्रस्तुत करना है :

1. थाट में 7 तथा 7 ही स्वर होने चाहिए।
2. वह 7 स्वर 'सा रे ग म प ध नि' इसी क्रम से आने चाहिए।
3. थाट में केवल आरोह होता है, अवरोह की आवष्यकता नही।
4. थाट में एक स्वर के दो रूप नहीं आने चाहिए।
5. थाट में रंजकता की आवश्यकता नही होती, क्योंकि थाट गाए नही जाते।

'सप्तक' यह थाट से भी मौलिक संकल्पना है। सप्तक में सात स्वर होते हैं। भारतीय संगीत के सप्तक में षड्ज तथा पंचम को अनन्यसाधारण महत्व प्राप्त है। यह 'अचल स्वर' कहलाते हैं, जो अपने नियत स्थान से नीचे या ऊपर नही खिसकते। इसीलिए यह कोमल या तीव्र नही होते। उर्वरित पाँच स्वरों के कौन से रूप लिए जाते हैं, इसी पर थाट का नाम अवलंबित होता है।

हिंदुस्थानी संगीत में संभव 32 थाटों की उत्पत्तिः

पूर्वार्ध	**उत्तरार्ध**
1 सा रे ग म	i प ध नि सां
2 सा रे ग म	ii प ध नि सां
3 सा रे ग म	iii प ध नि सां
4 सा रे ग म	iv प ध नि सां
5 सा रे ग मे	
6 सा रे ग मे	

7 सा रे ग मे

8 सा रे ग मे

¼kkO; %es¾ तीव्र म)

उपरोल्लेखित आंठ पूवार्ध तथा चार उत्तरार्धों के मेल से 8 × 4 = 32 थाट बनते हैं। इन पूर्वार्ध तथा उत्तरार्धों के निम्नांकित मेल से प्रसिद्ध 10 थाटों की उत्पत्ति बताई जा सकती हैः

1 + i = बिलावल

1 + iii = खमाज

2 + ii = भैरव

3 + iii = काफी

3 + iv = आसावरी

4 + iv = भैरवी

5 + i = कल्याण

6 + i = मारवा

6 + ii = पूर्वी

8 + ii = तोड़ी

इन 32 थाटों में प्रसिद्ध 10 थाटों को छोड़कर अन्य 22 थाटों को नाम प्राप्त नही है। उस समय शायद इसकी आवश्यकता भी न रही होगी। किन्तु आज अधिकाधिक राग प्रचार में आने के कारण नए थाट-नामों की जहाँ भी आवश्यकता प्रतीत होती है, तब 'किरवानी' (ग, ध कोमल), 'चारुकेशी' (ध, नि कोमल), 'मधुवंती' (ग कोमल, म तीव्र) आदि नाम उन थाटों को अनौपचारिक रूप से प्रदान कर दिए जाते हैं।

थाट उत्पत्ति का यह तरीका बड़ा ही वैज्ञानिक तथा तार्किक है। इस प्रकार अधिकतम थाट हमें प्राप्त होते हैं। इसी क्रम को जारी रखते हुए प्रस्तुत लेखक एक सुझाव देना चाहेगा। माना कि थाट में सातों स्वर होने ही चाहिए, किन्तु एक और तरीका है जिससे एक स्वर को कम कर के भी स्वर सात रह सकते हैं। यदि पंचम को हटा कर मध्यम दोनों ले लिए जाए, तो यह संभव हो सकता है, जैसा कि हम मारवा थाट के कुछ रागों में देखते हैं। यथाः

सा रे ग म मे ध नि सां

इस तरीके पर आपत्ति यह उठ सकती है कि पंचम जैसे महत्वपूर्ण स्वर को कैसे छोड़ दिया जाय? तो इसका उत्तर यह है कि, पंचम के ही समान मध्यम भी महत्वपूर्ण स्वर होता है।

सप्तक की अवधारणा प्राचीन समय में प्रो. ललित किशोर सिंह जी के अनुसार, मध्यम को मध्यवर्ती स्वर मानकर अवतरित हुई थी। मध्यम का स्थान अचल मानकर 'सा रे ग' तथा 'प ध नि' यह क्रमशः पूर्वांग तथा उत्तरांग के दो 'त्रिक' हुआ करते थे। यथाः

सा रे ग म प ध नि

पश्चिमी प्रभाव से जब हम इसमें तार सप्तक का षड्ज अंतर्भूत करने लगे, तब 'सा रे ग म' तथा 'प ध नि सां' इस प्रकार से सप्तक के दो भाग हो गए तथा बीच कुछ भी न रहा। इस प्रकार मध्यम के अविकारी रूप को प्राचीन आधार प्राप्त है।

पंचम को छोड़ कर तीव्र मध्यम को अंतर्भूत करने से थाट में सांत स्वरों का नियम तो बच गया, किन्तु स्वर के दो रूप एक साथ न आने का नियम टूट गया। इसका समाधान भी हम ठीक वैसे ही देंगे, जैसे पं. व्यंकटमखीजी ने 'सा रे रे म', 'प नि नि सां' के लिए दिया था। हम भी तीव्र मध्यम को तीव्र मध्यम न कहते हुए 'त्रिश्रुतिक पंचम' कहेंगे, तो विवाद ही न रहेगा।

हमें राग का यह नियम तो पता ही है कि राग में पंचम और मध्यम स्वर एक साथ वर्जित नही किये जाते (यद्यपि इस नियम का अपवाद भी देवरंजनी राग के रूप में उपस्थित है), तो हम मध्यम दोनों रख कर पंचम को छोड़ भी दे ंतो कुछ थाट - हानि न होगी।

पंचम को वर्जित करने का एक और कारण यह है कि पंचम अचल स्वर है। उसके न होने से यह भ्रान्ति नही हो सकती कि यदि पंचम होता तो कोमल होता या तीव्र? थाट में ही पंचम वर्जित रखने से रागों में उसके अविर्भाव का प्रश्न ही उपस्थित न होगा।

थाट उत्पत्ति के पारंपारिक तरीके को जारी रखते हुए हमारा यह नया उत्तरांग समाविष्ट करने पर

पूर्वार्ध	उत्तरार्ध
1 सा रे ग म	v मे ध नि सां
2 सा रे ग म	vi मे ध नि सां
3 सा रे ग म	vii मे ध नि सां
4 सा रे ग म	viii मे ध नि सां

चार पारंपारिक पूर्वांगों के साथ चार नये उत्तरांगों को जोडकर 16 नये थाटों की निर्मिती सम्भव हो पाएगी, जिन में शुद्ध मध्यम तो होगा ही, साथ ही सामान्य पंचम के स्थान पर 'त्रि-श्रुतिक पंचम' अर्थात तीव्र मध्यम भी होगा। इस प्रकार अब हमारे पास 16 थाट शुद्ध मध्यम के, 16 थाट तीव्र मध्यम के तथा 16 थाट दोनों मध्यम के - कुल 48 थाट हो जाएंगे।

इसका मतलब यह कदापि नही होगा कि जिन भी रागों में पंचम नही है उन सब रागों का समावेश इन नए थाटों में हो पाएगा। यह 'च्युत पंचम' युक्त 16 थाट हैं, जिनका उपोद्घात राग ललित की निर्मितिप्रक्रिया में ही हो गया था। कालांतर में जब प्रसिद्ध बांसुरीवादक माननीय श्री पन्नालाल घोष इन्होने 'राग दीपावली' की निर्मिती की, उस समय भी यही संकल्पना पुष्ट हुई होगी।

राग दीपावली का आरोहावरोहः

सा, नि॒ रे ग, म मे ध नि सां, सां नि ध मे म, ग, रे सा।

ऐसे राग जिनमें दोनों मध्यम के साथ पंचम भी होता है, उनका समावेश नए 16 थाटों में नही हो पाएगा, क्योंकि वे पारम्पारिक 32 थाटों के अंतर्गत ही आएंगे। यह 16 थाट उन आगामी अनंत संभावनाओं के लिए है, जिन रागों में दोनो मध्यम तो हों, किन्तु पंचम का सर्वथा अभाव हो।

कुछ सम्भव उदाहरणः

1. सा ग म मे ध नि सां, सां नि ध मे म ग सा
2. सा रे म मे ध नि सां, सां नि ध मे म रे सा
3. सा रे ग म मे ध नि सां, सां नि ध मे म ग रे सा

आदि।

पाश्चात्य स्केल की अवधारणाः

पाश्चात्य स्केल की परिभाषा निम्न प्रकार से की गयी है :

'A scale is a group of notes that are arranged by ascending or descending order of pitch.'

Jerald C. Graue: 'Scale, in music, any graduated sequence of notes, tones or intervals dividing what is called an octave.'

अर्थात, स्वरों का ऐसा समूह जो आरोही या अवरोही क्रम से रचित किया गया हो, उसे स्केल कहा जा सकता है। दूसरी परिभाषा से ऐसा दृष्टव्य होता है कि स्केल यह सप्तक की परिभाषा से अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ है। उल्लेखनीय है कि यहा स्वरों की संख्या की कोई मर्यादा नही है, इसीलिए पांच, छह, सात, आठ से लेकर बारह स्वरों तक के भी स्केल हो सकते हैं।

पाश्चात्य स्केल में एक प्रकार 'ब्ल्यूज़' नाम से होता है, जिसमें स्वर के दोनों रूपों को एक साथ प्रयोग किया जाता है। गाते या बजाते वक्त मीड द्वारा मुख्य स्वर से विकृत स्वर को लेकर फिर से मुख्य स्वर पर लौट आते हैं।

स्वरों की संख्या पर मर्यादा न होने की वजह से एक स्वर के दो रूप भी उसमें आ सकते है, उदा.

C D# E G Ab B C' (Augmented Hexatonic Scale)

सा ग ग प ध नि सां

पाश्चात्य संगीत में राग की अवधारणा न होने की वजह से वहाँ स्केल ही गाए बजाए जाते हैं। भारतीय संगीत में राग संकल्पना दृढमूल होने के कारण थाट गाए-बजाए नही जाते। अपने यहाँ थाट एक शास्त्रीय अवधारणा से अधिक कुछ नही, जो राग के स्वरूप को निश्चित करने में सहायक होता है। किन्तु अपने संगीत में कुछ ऐसे राग हैं जिनमें किसी एक या अनेक स्वरों के दो रूप पाए जाते हैं। आधुनिकोत्तर संगीत में ऐसे रागों की संभावनाएँ बढ़ गईं हैं जिन में स्वर के दो रूप आते हों। ऐसे

रागों की स्वरमाला लिखते वक्त 2 इस आंकड़े का उपयोग किया जा सकता है, कुछ इस तरहः

सा $ग_2$ म ध $नि_2$ सां

साथ ही, एक सुझाव यह भी है कि जो स्वर राग में बिल्कुल ही वर्जित कर दिए गए हों, उन्हें थाट में भी अंतर्भूत करना नही चाहिए। जैसे, राग भूप में मध्यम व निशाद पूणरूपेण वर्जित हैं, तो उसका थाट भी पांच स्वरों का ही हो, जिसे पाश्चात्य विद्वान् 'पेण्टाटोनिक स्केल' कहते हैं। यदि थाट और जाति की संकल्पना को एकसाथ मिला दिया जाए तो फायदेमंद साबित हो सकता है।

संदर्भ

[1] इन उत्तरांगों को सुविधा अनुसार 'प ध नि सां' इस प्रकार भी लिखा जा सकत है।

[2] ललित किशोर सिंह, 'ध्वनि और संगीत'

[3] https://hellomusictheory.com/learn/music-scales-beginners-guide/

[4] https://www.britannica.com/art/scale-music

[5] www.wikipedia.org

संस्कृति

संत कबीर एवं मीता का दार्शनिक परिदृष्य

डॉ. अनामिका द्विवेदी

असिस्टेंट प्रो. हिन्दी
ए. के. पी. पी. जी. कॉलेज

दार्शनिक चिन्तन -

मीता के अनुसार ये संसार दुःख सागर है और सुख बूंदक है। सुखों का अस्तित्व चुल्लू में समा जाने वाला है। दुःखों का अपार संसार दुस्तर है। मीता के अनुसार -

'चुरुवक सुख संसार में पाछे दुःख की खान।

दुःखों से छुटकारा दिलाना ही मीता के दर्शन का मुख्य विषय है। अज्ञान ही अविद्या है। मीता ने इसे 'कुमिता' कहा है। यही दुःख का कारण है। ज्ञान ही 'सुमिता' है। 'सुमिता' ही सज्जनों को जीवन मुक्त करती है। तत्त्व ज्ञान ही जीवन मुक्त करने, "आवागमन मिटाई" तथा "गरभु बासु" मिटाई का साधन है।

वैदिक भक्ति निर्गुण और सगुण की धाराओं में विभक्त न होकर अभेद साधना को लेकर चलने वाली थी। किन्तु कालान्तर में सगुण और निर्गुण की धाराएँ पृथक् पहचान लेकर लोक जीवन में प्रविष्ट हुई। वस्तुतः इन दोनों में कोई तात्विक अन्तर नहीं है। केवल शैलीगत भेद ही मुख्य है। सगुण जहाँ सविशेष साकार सोपाधि है अर्थात् गुणयुक्त भक्ति है वहीं निर्गुण निविशेष गुण के कारण गुण की व्याप्ति से पृथक् नहीं है। संत मीता ने सगुण और निर्गुण से परे अपरम्पार (अपरम ब्रह्म) की साधना की है। उनके अनुसार निर्गुण राम हैं और सगुण संत हैं। संत ईश्वर की ही देह है। इस प्रकार मीता का ब्रह्म परम निगुण है जो सगुण और निर्गुण को अपनी परिधि में समेट कर भी इन दोनों से परे है।

मीता एकेश्वरवाद का समर्थन करते हैं। उनके एकेश्वरवाद में हिन्दुओं का राम और मुसलमानों का अल्लाह राम-रहीम होकर एक हो जाता है, जहाँ निर्गुण और सगुण का कोई विरोध नहीं है। निर्गुण संत धारा में सगुण का निषेध इसलिए नहीं है क्योंकि मीता सगुण के रूप में सतगुरु को स्वीकार करते हैं। सम्पूर्ण आराधना ही सतगुरु को समर्पित हो जाती है और वही साधना के प्रेमा भक्ति सोपान से प्रियतम की सेज तक ले चलने में समर्थ होती है।

मीता का ब्रह्म सर्वव्याप्त होकर भी सब से न्यारा है -

भजि लीन्हा अलख अपारा है
है सब माँ औ न्यारा है
रूप रेख रंग नाहीं जाके
सो हमरा करतारा है।"

"संत तुम्हारी वाणी तो अमृत बरसाने वाली हैं।

उस अनंतमीय करूणानिधि की करूणा को बताने वाली हैं।"

के आधार पर संतो का दर्शन तो ईश्वर के अनुभूति में ही निहित रहता हैं। अतः संत कबीर एवं संत मीता के सात्विक सिद्वान्तो में पर्याप्त साम्य रूपों का दर्शन होता हैं।

साम्य एकेश्वरवादीः-

अ- दोनो ही संत कवि एकेश्वरवादी विचारधारा को मानते हैं। दोनो ही संतो का ईश्वर राम-रहीम साहब, निरंजन इत्यादि नामों वाला होते हुए एक हैं कहने

का आशय हैं कि केवल उसके नाम ही अलग-अलग हैं, किन्तु वह एक ही हैं। अतः दोनो में ही इस .ष्टि से तुलना करने पर दोनो में सम्यता के ही दर्शन होते हैं।

ब-ब्रह्म पर तुलनात्मक साम्य वैषम्य :-

1. दोनों ही संत कवियों ने ब्रह्म की एकता (एक होने पर) बल दिया हैं।
2. दोनों ही संतो ने ईश्वर को निर्गुण निराकार बताया हैं। संत कहते हैं।

"जाके मुंह माथा नही, नाही रूप अरूप।
पुहुव वास से पातरा ऐसा तत्व अनूप।"[2]

संत मीता ने भी इसी तथ्य को उजागर करते हुए कहा हैं।

''रूप रेख साहेब के नाही
नही बहुकाया धारै रूप अनूप।''[3]

3.दोनो ही संत कबि अवतार वाद पर विचार करने वाले या अवतार को नही मानते।

वैषम्यः-

यद्यपि दोनों ही संतो कबीर एवं मीता में ब्रह्म के प्रति पर्याप्त साम्य दृष्टिगोचर होती हैं, किन्तु उनमें ब्रह्म के प्रति कुछ असमानता या वैषम्य भी दृष्टिगोचर होती हैं।

1. मीता ग्रन्थावली के सम्पादक डाद्द चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित' जी ने कबीर एवं मीता के ब्रह्म के विषय में एक अत्यन्त विचारणीय (चिन्तनीय) कथन के द्वारा दोनो संतो मे वैषम्य (अन्तर) दिखलाते हुए लिखा हैं कि "कबीर का राम दशरथ राम से भिन्न हैं, मीता ने तो एक कदम आगे बढ़कर पहलीबार यह कहने का साहस किया कि रामचन्द्र तो एक साधारण मनुष्य हैं। मीता रामचन्द्र को संसारी व्यक्तियों की श्रेणी लाकर खड़ा कर देते हैं।"

कहने का आशय है कि कबीर जहां अपने राम को दशरथ से भिन्न (अलग) बताते हैं।

''न दशरथ धरि औतरि आवा
न लंका का राव संतावा।''[4]

वही मीता रामचन्द्र को संसारी पुरूषो अर्थात संसारिकता में गिनते हैं।

"जैसा सब संसार रामचन्द्र वैसारे।"5

अतः इस दृष्टिकोण से तो दोनो में पर्याप्त में वैषम्य परिलक्षित होता हैं। वस्तुतः तुलनात्मक दृष्टिकोण से विचार करने पर दोनो ही ब्रह्म की सत्ता का निरूपण करते हैं उसे एक मानते हैं। और विषमता मिलती होती है तो केवल अभिव्यक्ति या कथ्य के रूप में ही।

जीव पर तुलनात्मक साम्य वैषम्य :-

वस्तुतः तत्वज्ञानियों संतो आदि ने जीव को परमात्मा का ही अंश स्वीकार किया है। जीव जो परमात्मा का अंश है वह माया के कारण ईश्वर से बिछुड़ा हुआ हैं अतः संतो ने दोनो में तादाम्य (एकाकार होने के लिए) स्थापित करने के लिए जीव को बंधन से मुक्त, ईश्वर नाम को भजने आदि का उपदेश दिया हैं। वस्तुतः संत कबीर एवं संत मीता ने भी जीव एवं ब्रम्ह दोनो के एकाकार के लिए ही (आत्मा परमात्मा) ईश्वर या अपने राम का सुमिरन करते हैं। इस दृष्टिकोण से भी दोनो संतो में साम्यता के दर्शन होते हैं।

1. दोनो ही संतो ने जीव को ईश्वर का अंश माना हैं।
2. दोनो ही संतो ने जीवात्मा को माया के अधीन हो परमात्मा से बिछुड़ने का कारण माना हैं।
3. दोनो ही संतो ने जीवात्मा को परमात्मा में समाहित होने का वर्णन किया हैं।

वैषम्य :-

यद्यपि दोनो ही संत कवियो ने जीवात्मा परमात्मा का वर्णन किया हैं और इस दृष्टिकोण पर दोनो संतो में पर्याप्त समानता भी पाई जाती हैं किन्तु कही-कही जीव और ब्रम्ह के विषय में वैषम्य के भी दर्शन होते हैं वस्तुतः से विषमता केवल शब्दों के हेर-फेर के रूप में ही दृष्टिगोचर होती हैं।

1. संत कबीर जहां जीव को बूंद और परमात्मा को समुद्र के रूप में अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं अर्थात जीव को बूंद और ब्रह्म को समुद्र निरूपित करते हैं।

"बूंद समानी समुद्र में
सो कत हेरी जाय।"[6]

वही संत मीता स्पष्ट शब्दों में जीव और ब्रह्म का निरूपण करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं अर्थात जीव को जीव और ब्रह्म को ब्रह्म द्वारा अभिव्यक्ति प्रदान की हैं।

"उलटि जीव जो ब्रह्म समाये।"[7]

वस्तुतः दोनो पर तुलनात्मक दृष्टिकोण डालने पर दोनो में जीव सम्बन्धी का समान प्रतिपादन ही दृष्टिगोचर होता और यदि अंतर हैं तो केवल शब्दों के हेर-फेर का ही हैं। दोनो में ही जीव एवं ब्रह्म के एकाकार होने की अभिलाषा लक्षित होती हैं।

माया पर तुलनात्मक साम्य-वैषम्य :-

समस्त जगत माया से बंधा हुआ हैं। जीव के बंधन का कारण भी यह माया हैं। माया ही अपनी मनमोहनी रूप से सब को बांधे रहती हैं। संतो ने माया के इसी रूप को उजागर किया है। कबीर एवं मीता दोनो ही संतो ने माया की सत्ता को स्वीकार किया हैं कहने का आशय है इस मनमोहिनी माया को जीव के बंधन का कारण माना है। अतः इस दृष्टिकोण से दोनो में तुलना करने पर पर्याप्त समानता दीख पड़ती हैं।

1. संत कबीर एंव संत मीता दोनो ही माया की सत्ता को स्वीकार करते हैं।
2. दोनों ही संत कवियों ने माया को लोई (स्त्री) के रूप में निरूपित किया हैं।

"कबीर माया मोह की भई अधारी लोइ।"[8]
"चपल चपल बरनियां अरि मारे नैन चलाय।

वैषम्य :-

यद्यपि दोनों ही संतो ने माया को जीव के लिए अहितकर बताया हैं उसे स्त्री के समान भटकाने वाली बताया तथापि इस माया के विषय में दोनो संतो में कुछ विषमता के दर्शन होते हैं।

1. कबीर माया को जहां मोहिनी रूप में दर्शाते हैं।
   क- "कबीर माया मोहिनी मांगी-मांगी मिलै न हाथि। "9
   ख- "कबीर माया मोहिनी जैसी मीठी खाड़ि।"10

   वही संत मीता माया का बताते हुए कहा हैं।

   "या माया पर पन्चनी बहुत डोलावै हो।"[11]
2. कबीर ने जहां माया को विद्या माया अविद्या माया के रूप में अभिव्यक्त किया है, वही संत मीता ने माया को सुमिता तथा कुमिता के रूप में अभिव्यक्त किया हैं।
3. संत कबीर माया को ऐसा ऐसा त्रिविध वृक्ष बताते हैं, जिसमें सुख रूपी फल नही लग पातें।

''माया तरवर त्रिविध का, साखा दुख संताप
शीतलता सुपिनै नहि फलि फीकौ तपि ताप।''[12]

वही संत मीता ने माया को विष रूपी हवा के माध्यम से व्यक्त किया हैं।

''माया विखु वारि सपन सुख जैसा हों।''[13]

वस्तुतः तुलनात्मक दृष्टिकोण डालने पर दोनो ही संतो में माया के विभिन्न रूपों के वर्णन का भाव ही निहित होता दीख पड़ता हैं। यदि वैषम्यता मिलती हैं। तो केवल शब्दों के हेर-फेर में ही। अन्यथा माया के रूप वर्णन माया को परपंची मोहिनी आदि कहने में तथा उसके त्याग में ही दोनो संतो का मत दृष्टिगोचर होता हैं।

जगत पर तुलनात्मक साम्य-वैषम्य :-

वेदान्तियों संतो आदि सभी ने संसार को झूठ के समान बताया हैं। इस जग की सत्ता झूठी हैं। मिथ्या हैं। संत कबीर एवं संत मीता ने भी संसार की

नश्वरता आदि को अभिव्यक्त किया हैं और इस अभिव्यक्ति में दोनो के दृष्टिकोण के आधार पर समानता भी परिलक्षित होती हैं।

साम्य :-

1. कबीर के अनुसार जगत (सृष्टि) का सृजन परमात्मा की इच्छा का ही परिणाम है संत मीता ने भी इसी मान्यता का प्रतिपादन किया हैं।
   "प्रथमें गगन कि पुहुनि प्रथमें प्रभु।"[14]
   इच्छा ते सब करै खलक वह ऐसा रें।"[15]
2. दोनों ही संतो ने संसार को दुःखों का खान बताया हैं। यहां (जगत में) सुख स्वप्न को स्वप्नवत बताया हैं।
   "दुनिया भाड़ा दुख का भरी मुहांमुह भूख।"[16]

वैषम्य :-

दोनों ही संत जगत की सत्ता को स्वीकार करते हैं। तथापि इनमें कुछ शाब्दिक वैषम्य भी दिखाई पड़ता हैं।

संत कबीर संसार को जहां सेमल का फूल, मैला, काजल के समान काला अर्थात अन्धकारपूर्ण बताते हैं, वही संत मीता संसार को ठगो, अंधो, धूर्तो, झूठो तथा काटे की बारी बताते हैं।

1. "यहु ऐसा संसार जैसा सेवल का फूल।"[17]
2. "यहु संसार सकल हैं मैला।"[18]
3. "काजल केरी कोठरी तैसा यह संसार।"[19]

संत मीता के अनुसार।

1. "या जगु अन्धा देखि के कछु कहा न जावे।"[20]
2. "जग उगियन घट पसारी तिनु लूटै सब वैपारी।"[21]
3. "या संसार बड़ा है धोखा।"[22]
4. "या संसार काँट की बारी ताते चलौ सभांरि-संभारि।"[23]

अतः तुलनात्मक दृष्टि से दोनो ही संत संसार को घूर्त, झूठा, मैला, काटेंमय तथा दुखों की खानि के रूप में स्वीकार किया हैं। यहां वैषम्यता केवल शब्दो के हेर-फेर के रूप में ही दिखाई पड़ती हैं।

अतः दोनो संतो के तात्विक सिद्धान्तों की तुलना करने के बाद मैं अपने शब्दो में निष्कर्ष स्वरूप कह सकती हूँ कि संत सिद्वान्तो का प्रतिपादन न कर अपनी भावनाओं ईश्वर के सामीप्य के लिए अपनी-अपनी वाणी में या अपने-अपने शब्दों मे उस परम् प्रिय ब्रह्म का मनन तथा गुणगान कर उसके चरणों में या उसमें समाहित हो जाते हैं तथा जनमानस को भी अपनी ईश्वरमय वाणी से आप्लावित करते हैं।

मूर्तिपूजा व पाखण्ड पर तुलनात्मक साम्य-वैषम्यः-

संत ज्ञानी, भक्त ये सभी आध्यात्मिक ईश्वर के चिंतक होते है। कहने का आशय है कि ईश्वर का ध्यान, मनन, चिंतन करना उसकी प्राप्ति में सतत् प्रयत्नशील रहना ही इनका लक्ष्य होता हैं। संसारिकता से इनका कोई प्रयोजन नही होता, किन्तु समाज जो कि ईश्वर द्वारा ही निर्मित हैं, वहां पर फैली अव्यवस्था,अराजकता, दुःख, अंधविश्वास, पाखण्ड आदि को देखकर इनका अंतस चीत्कार कर उठता हैं। और फिर ये संत जन अपने उद्वेलित अंतस को शांत करने तथा मानव समाज में व्याप्त दुःख, दैन्य, पाखण्ड, अंधविश्वास आदि से छुटकारा दिलाने के लिए सतत् प्रयत्नशील हो जाते हैं। ऐसे ही संतो में संत कबीर एवं संत मीता हैं, जिन्होने समाज में व्याप्त पाखण्ड और बुराइयों से मानव समाज को छुटकारा दिलाकर इन्हे सच्चे ईस मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित किया।

मूर्तिपूजा, पाखण्ड, अंधविश्वास आदि में तुलनात्मक दृष्टि डालने से संत कबीर एवं संत मीता में पर्याप्त समानाएं परिलक्षित होती हैं। जो इस प्रकार हैं।

साम्य :-

1. दोनों ही संत निर्गुण उपासक हैं, एकेश्वरवादी हैं। अतः आडम्बरहीन मूर्तिपूजा दोनो ही संतो को असह हैं वे कहते भी हैं।
   "पाथर केरा पूतला करि पूजे करतार।"[24]
   इही भरोसे जे रहे ते बूढ़े काली धार।"

जो पाहन को पूजइ सो पाहन होय जाय।"[25]

इसी प्रकार जप-तप-तीरथ के विषय में भी दोनो में समानता परिलक्षित होती हैं।

1. "तीरथ-तीरथ करि जग मुवा डूबै पाणि-न्हाइ।"[26]
2. "जप-तप दीसै थोथरा तीरथ बेसास।
   सूबै सैवल सेविया, यो जग चल्या निरास।"[27]

क- "तीरथ-तीरथ का करौ होइहौ जल की मीन
जारू परे दुःख पाइहो कहि मीता हरि चीन्ह।"[28]

ख- "तीरथ नही छड़ाइ हैं जमु राजा की त्रास।
कहि मीता भजु राम का सीतल चरन निवास।"[29]

वस्तुतः यहां पर तुलनात्मक दृष्टि डालने पर हम देखते हैं कि संत कबीर एवं संत मीता दोनों ही आडम्बर मूर्ति-पूजा, अंधविश्वास आदि के प्रबल विरोधी हैं। दोनो ही संत इस आडम्बर पूर्ण मार्ग का त्याग कर जनमानस को सत्मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करते हैं। दोनों की ही भावनायें यहां समान रूप से उद्भाषित होती हैं।

वैषम्य :-

यद्यपि संत कबीर एवं संत मीता में उपरोक्त दृष्टि से तुलना करने पर दोनो में पर्याप्त समानतायें पाई जाती हैं, वस्तुतः दोनो ही के भाव है भी समान। किन्तु यदि कही थोड़ी बहुत विषमता परिलक्षित होती भी हैं तो वह केवल शब्दों के हेर-फेर में ही।

1. "एक स्थान पर हमें संत कबीर एवं मीता में यही अंतर दिखलाई पड़ता है कि संत मीता स्वयं आडंबर को छोड़कर ही जनसमुदाय को इसे त्यागने का उपदेष देते हुए दिखलाई पड़ते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मीता ग्रन्थावली, सम्पादक डॉ. चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित, प्रकाषक -चंददास साहित्य शोध संस्थान बाँदा पृ. 49/4/583
2. 'कबीर ग्रन्थावली' , सम्पादक ष्याम सुन्दरदास पृ. 47/4/584
3. 'मीता ग्रन्थावली', सम्पादक डॉ. चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित, प्रकाषक -चंददास साहित्य शोध संस्थान बाँदा पृ. सँख्या 101
4. 'कबीर ग्रन्थावली' , तदुपरिवत् 184 रमैनी
5. 'मीता ग्रन्थावली', तदुपरिवत् पृ. 219
6. 'कबीर ग्रन्थावली', तदुपरिवत् पृ. 13
7. 'मीता ग्रन्थावली', तदुपरिवत् पृ. 9
8. 'कबीर ग्रन्थावली', तदुपरिवत् पृ.27/24
9. 'मीता ग्रन्थावली', तदुपरिवत् पृ.39
10. 'कबीर ग्रन्थावली', तदुपरिवत् पृ.25/6
11. 'कबीर ग्रन्थावली', तदुपरिवत् पृ.26/9
12. 'मीता ग्रन्थावली', तदुपरिवत् पृ.26
13. 'मीता ग्रन्थावली', तदुपरिवत् पृ.261
14. 'मीता ग्रन्थावली', तदुपरिवत् 107/164
15. 'मीता ग्रन्थावली', तदुपरिवत् 24/भू. से
16. 'कबीर ग्रन्थावली', तदुपरिवत् 227/2
17. 'कबीर ग्रन्थावली', तदुपरिवत् 16/26
18. 'कबीर ग्रन्थावली', तदुपरिवत् 99/29
19. 'कबीर ग्रन्थावली', तदुपरिवत् 29/8
20. 'मीता ग्रन्थावली', तदुपरिवत् 107
21. 'मीता ग्रन्थावली', तदुपरिवत् 104
22. 'मीता ग्रन्थावली', तदुपरिवत् 239
23. 'मीता ग्रन्थावली', तदुपरिवत 237

शास्त्रीय संगीत के प्रचार-प्रसार में मध्यप्रदेश के संगीतज्ञो का योगदान (1 नवम्बर 1956 से अद्यतन तक)

नन्दलाल सिंह रघुवंशी

कुकड़ा जगत छिन्दवाड़ा म.प्र.

भारतीय संगीत अत्यंत प्राचीन व सुंदर ललित कलाओं में से एक है, जिसका उद्देय ही मनोरंजन करना तथा भक्ति मूलक भाव पैदा करना है। आज जो संगीत है, उसका विकास भी अन्य लिति कलाओं के समान धीरे धीरे हुआ है और संगीत के इस विकासक्रम का श्रेय निश्चित ही भारतीय संगीत के उन मूर्धन्य संगीतज्ञो एवं विद्वानों को है जिन्होनें प्राचीन काल से लेकर आज तक अपनी विभिन्न कृतियों रचनाओं और क्रियात्मक योगदानों से भारतीय संगीत को सजाया है, संवारा है, आज भारतीय संगीत अंतराष्ट्रीय स्तर पर छाया हुआ है, इन सभी के पीछे उन विद्वानों और संगीतज्ञों के सतत् प्रयासों को जानना और समझाना ही भारतीय संगीत को समझना है।

भारतीय संगीत के क्षेत्र में मध्यप्रदेश भी जगमगाते दीप के समान है, जिसकी रोशनी की प्रभा सर्वथा अलग है। प्राचीन काल से ही मध्यप्रदेश भारतीय शास्त्रीय संगीत का गढ़ रहा है तथा मध्यप्रदेश के संगीतज्ञों ने भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रचार प्रसार में सर्वश्रेष्ठ योगदान दिया है।

मध्यप्रदेश में शास्त्रीय संगीत की ऐतिहासिकता :-

भारतीय संगीत के इतिहास में मध्य भारत अर्थात् मध्यप्रदेश में रीवा नरेश रामचन्द्र, उज्जैन के राजा विक्रमादित्य, ग्वालियर नरेश राजा मानसिंह तोमर, इंदौर के राजा शिवाजी राव होलकर आदि ने स्वयं संगीत की साधना करके तथा कलाकारों को आश्रय प्रदान कर संगीत को समाज के उच्चतम स्थान पर प्रतिष्ठित किया। मध्यप्रदेश के लोगों के बीच शास्त्रीय संगीत बहुत महत्पवपूर्ण स्थान रखता है। मैहर घराना, सेनिया घराना और ग्वालियर घराना, इंदौर घराना इस राज्य के कुछ प्रमुख शास्त्रीय संगीत के घराने है। भारतीय संगीत के इतिहास में मध्यप्रदेश प्रारंभ से ही उपलब्धियों में अग्रणी रहा है और इन उपलब्धियों का आधार तथा विकास मुख्यतः शास्त्रीय संगीत की समृद्धशाली गायन शैली और परंपरायें रही है। संगीत की सभी गायन वादन शैलियां मूल रुप से किसी न किसी परंपरा या सम्प्रदाय या किसी घराने में फली-फूली और समृद्ध हुई है। मध्यप्रदेश में ग्वालियर, इंदौर, भोपाल, जबलपुर, रीवा, सतना, देवास, उज्जैन प्रारंभ से ही संगीत के क्षेत्र में आगे है। वास्तव में ये स्थान शताब्दियों से संगीत तथा विविध कलाओं के क्षेत्र है जहॉ ध्रुपद धमार, खयाल ठुमरी, समाज संगीत और विविध वाद्य यंत्रों के उत्कृष्ट कलाकारों ने संगीत की साधना की और भारतीय संगीत को दिशा प्रदान की तथा गायन को एक निश्चित आकार प्रदान किया। ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर ने ध्रुपद गायकी तथा ग्वालियर का विद्यापीठ आज भी मशहूर है।

ग्वालियर संगीत के शहर के रुप में जाना जाता है। राजा मानसिंग तोमर (1488ई.) के शासनकाल में संगीत महाविद्यालय की नींव रखी गई बैजू बावरा, स्वामी हरीदास, तानसेन आदि ने यहीं संगीत की साधना की। संगीत सम्राट तानसेन ग्वालियर के बेहट ग्राम में पैदा हुए मध्यप्रदेश सरकार द्वारा तानसेन

संगीत समारोह ग्वालियर में प्रत्येक वर्ष आयोजित किया जाता है। सरोद उस्ताद अमजद अली खान जी ग्वालियर शहर से है। उनके दादा गुलाम अली खान बंगस ग्वालियर के दरबाव में संगीतज्ञ थे। बैजनाथ प्रसाद (बैजू बाबरा) ध्रुपद के गायक थे जिन्होनें ग्वालियर को अपनी कर्मभूमि बनाई ग्वालियर के राजा मानसिंग तोमर संगीतज्ञों का बडा सम्मान करते थे। बैजू बाबरा इसी काल में हुए थे ऐसा कहा जाता है कि बैजू बाबरा के सहयोग से राजा मानसिंग तोमर ने ध्रुपद शैली का परिष्कार कर प्रचार प्रसार किया। उस्ताद आमिर खान इंदौर की प्रख्यात ख्याल गायिकी के मूर्धन्य गायक है। मैहर के उस्ताद अलाउद्दीन खान एवं महान गुरु और सरोद वादक हुए। उनके शिष्य पं. रविशंकर ख्याति प्राप्त सितारवादक है, कुमार गंधर्व देवास के ख्याल गायिकी के प्रख्यात गायक हुए है। अब्दुल लतीफ खान भोपाल के प्रसिध्द सारंगी वादक है। इस काल में मध्यप्रदेश के शास्त्र संगीत में जो संगीतज्ञ हुए उन्होनें संगीत को चरमोत्कर्ष तक लाने में अपना अमूल्य योगदान किया।

3. महत्व :-

शास्त्रीय संगीत के प्रचार-प्रसार में मध्यप्रदेश के संगीतज्ञों का बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है। प्रदेश में गायन, वादन शैलियॉ है और जो भी घराने अस्तित्व में रहे है और जिन कलाकारों ने रागों का निर्माण किया कलां की साधन की तथा संगीत के अमूल्य ग्रंथ लिखे उनका संबंध उत्तर भारत के मध्यप्रदेश से किसी न किसी रुप में अवश्य रहा है। प्रदेश में ऐसे उत्कृष्ट कलाकार हुए है जिन्होनें शिष्य परंपरा संगीत को दी है और यह शिष्य विश्व स्तर पर ख्याति प्राप्त कर रहे है और संगीत की शिक्षा प्रदान कर रहे है। इसी प्रकार प्रदेश में तबला, पखावज ओर सारंगी आदि वाद्य यंत्रों के विकास केन्द्र भी बनाए गए है जो कि प्रदेश के संगीतज्ञों की सलाह से संभव हो सके। इस प्रकार ध्रुपद विकास के लिए ध्रुपद केन्द्र भोपाल तथा राजा मानसिंग तोमर संगीत एवं कलां विश्वविद्यालय ग्वालियर में भी ध्रुपद केन्द्र बनाया गया है जो कि मध्यप्रदेश के संगीतज्ञों की देन है। उस्ताद अलाउद्दीन खां संगीत अकादमी भोपाल जहॉ ध्रुपद एवं सारंगी तथा विचित्र वीणा आदि वाद्य यंत्रों की संगीत शिक्षा प्रदान की जा रही है यह भी प्रदेश के संगीतज्ञों के आर्शीवाद का ही परिणाम है। इसी प्रकार जबलपुर में भातखंडे संगीत महाविद्यालय, सुरप्रभा संगीत महाविद्यालय, शारदा संगीत विद्यालय एवं रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय के संगीत विभाग में पदस्थ संगीतज्ञों के द्वारा शास्त्रीय संगीत के प्रचार-प्रसार के लिए अनेकों प्रयास किए जा रहे है। अतः प्रदेश के ऐसे संगीतज्ञों की जानकारी एकत्रित करके उनके उत्कृष्ट कार्यो एवं सराहनीय योगदान को जन जन तक लाना अति आवश्यक है साथ ही संगीत साधकों, संगीत के विद्यार्थियों एवं नवोदित कलाकारों के लिए यह एक ज्ञान वर्धक एवं महत्वपूर्ण जानकारी के रुप में कार्यगार सिध्द होगी।

4. विषय वस्तु :-मेरे शोध प्रबंध में निम्नलिखित तथ्यों को शामिल किया जावेगा

1. मध्यप्रदेश के प्रमुख संगीतज्ञ

मध्यप्रदेश के प्रमुख संगीतज्ञों में निम्नलिखित संगीतज्ञों का भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रचार प्रसार में महत्पवूर्ण योगदान रहा है जैसे -

1. तानसेन, 2. बेजू बाबरा, 3. उस्ताद अदाउद्दीन खॉ, 4. उस्ताद हाफिज अली खॉ, 5. शंकरराव पंडित, 6. राजा भैया पूँछ वाले, 7. उस्ताद अमीर खॉ, 8. कुमार गन्धर्व, 9. राजा चक्रधर सिंह।

1. तानसेन :- तानसेन का जन्म 1506 ई. में ग्वालियर से 28 मील दर बेहट नामक स्थान पर हुआ था। इनके पिता का नाम मकरंद पाण्डे था। जो सम्बतः ब्राम्हण थे। मकरंद पाण्डे को यह संतान एक सूफी फकीर हजरत मो. गोस के आर्शीवाद से प्राप्त हुई थी। तानसेन का वास्तविक नाम रामतानु या तन्ना मिश्र था। तानसेन यदपि गायन में सातों रागों में पारंगत थे, तथापि श्री रागभैरव, राम मल्हार, दरवारी तथा दीपक राग में उनका कोई सानी नहीं

था। रागदरवारी कान्डा में तानसेन को उतावी थ्झी। इसके अतिरिक्त रागदरवारी तोडी मिया की सारंग मिया की मल्हार ने तानसेन को अमर बना दिया। तानसेन सम्राट अकबर के नौ रत्नों में से एक थे। इस प्रकार तानसेन का भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रचार प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान उल्लेखनीय है।

2. बेजू बावरा :- बेज बावरा एक ऐतिहासिक गायक संगीतज्ञ है जो मुगल बादशाह के दरवार में नियुक्त थे, उनका वास्तविक नाम वेजनाथ मिश्र था। वह स्वामी हरिदास के शिष्य माने जाते थे, जो तानसेन के भी गुरु थे। तानसेन और बेजू बावरा के बीच शाही दरवार के द्वंद्व की अनेक कहानियॉ भी प्रचलित है, बेजू बावरा एक ऐतिहासिक भारतीय ध्रुपद गायक थे। उन्हें ग्वालियर के राजा मानसिंग तोमर का दरवारी संगीतज्ञ भी माना जाता है।

3. उस्ताद अलाउद्दीन खॉ :- प्रसिद सरोद बादक उस्ताद अलाउद्दीन खॉ का जन्म सन् 1881 ई. में त्रिपुरा शिवपुर नामक ग्राम में हुआ था। आपके बचपन का नाम आलम था। इनके पिता का नाम साधु खॉ माता का नाम श्रीमति हरसुन्दरी था। बचपन से संगीत में रुझान होने के कारण इन्होनें त्रिपुरा दरबाव के सुप्रसिध्द रबाव बादक श्री काजिम खॉ से सितार का प्रशिक्षण लिया था। मैहर महाराज ने उस्ताद अलाउद्दीन खॉ से गंडा बंधन भी करवाया था, तथा उस्ताद खॉ मैहर में अपने परिवार के साथ रहने लगे, आपकी पत्नि का नाम मदन मंजरी था। आपके पुत्र अली अखबर है, जो स्वयं संगीत की महान हस्ती है, तथा पुत्री का नाम अन्नपूर्णा था, जो सुरवहार बजाने में पारंगत थी। प्रसिद सितार बाधक पंडित रविशंकर जी ने भी उस्ताद से ही सितार बाजाना सिखा था। उस्ताद अलाउद्दीन खॉ क्लेरीनेट इसराज शहनाई, सितार आदि के भी ज्ञाता थे। आपने सूर सितार, चन्द्र सारंग, जल तरंग आदि नये वादयंत्रों का अविष्कार किया तथा मैहर में वाद्यवृंद का गठन किया।

4. उस्ताद हाफिज अली खॉ :- मध्यप्रदेश के संगीतज्ञों में उस्ताद हाफिज अली खॉ का महत्वपूर्ण स्थान है, हाफिज अली खॉ का जन्म ग्वालियर में सन् 1888 में हुआ था। सर्व उत्वादन में अपने चमत्कारी प्रदर्शन से देश विदेश में ख्याति अर्जित करने वाले हाफिज अली खॉ को संगीत विरासत में मिला था। इनके पिता का नाम उस्ताद गुलाव बंदगीखॉ था। जो कि प्रख्यात रबाव बादक थे। हाफिज अली खॉ ग्वालियर के श्रीमंत माधव राव सिंधिया के दरबार में मुलाजिम रहें तथा बाद में जीवाजी राव महाराज के दरबाव में रहे, माधव संगीत विद्यालय ग्वालियर में भी आपको नियुक्त किया गया था। ग्वालियर के महाराजा ने हाफिज खॉ को संगीत रत्नाकर की उपाधि से सम्मानित किया था बंगाल कॉन्फ्रेस ऑफ म्यूजिक ने आफताब ए सरोद की उपाधि से नबाजा।

5. शंकरराव पंडित :- मध्यप्रदेश में ख्याल गायकी को नया आयाम देने वाले शंकरराव पंडित का जन्म ग्वालियर में सन् 1863 ई. में हुआ था। इनके पिता का निाम श्री विष्णु पंडित था। शंकरराव पं. की प्रारंभिक शिक्षा बालकृष्ण बुआ के सानिध्य में हुई, यहॉ पर आपने जयदेव की अष्टपदिया सीखी, तत्पश्चात् प्रसिध्द संगीतज्ञ मो. निसार हुसैन को अपना गुरु बनाया। गायन की टप्पा शैली धार की देवी जी बुआ से प्राप्त की। शंकर पं. गायन की विभिन्न विधाओं में पारंगत थे। किन्तु ख्याल टप्पा विशेषकर रगमन्य ने एकाधिकार था। शंकर पं. एक ही राग को घण्टों तक गाकर दर्शको को आश्चर्य चकित कर देते थे। मुम्बई के एक संगीत समारोह में बालकृष्ण बुआ के साथ दी गई प्रस्तुति से देश भर में ख्याती प्राप्त की थी। सन् 1960 में पदभूषण की उपाधि से अलंकृत किए गए इनकी स्मृति में ग्वालियर में सरोद घर की स्थापना की गई। जहॉ देश विदेश के संगीतकार आते है।

6. राजा भैया पूँछ वाले :- राजा भैया पूँछ वाले का जन्म 12 अगस्त 1982 में ग्वालियर में हुआ था। राजा भैया पूँछ वाले का पूरा नाम बालकृष्ण आनंदराव अष्ठेखा था। राजा भैया का परिवार मूलतः महाराष्ट्र के सतारा जिले के अष्टा का रहने वाला था। संगीत की प्रारंभिक शिक्षा अपने पिता से ही मिला। जिन्होनें उन्हें सितार वादन सिखाया बामनराव

चिखलीकर तथा दरबार के संगीतकार बलदेव जी से आपने गायन सिखा। आपने प्रसिध्द गायक पं. शंकर राव से भी संगीत की गंभीर शिक्षा प्राप्त की। 26 मार्च 1956 को संगीत के लिए राष्ट्रीय अकादमी का पुरस्कार राजा भैया को घोषित किया गया।

7. कुमार गन्धर्व :- कुमार गन्धर्व देश के एक उच्च कोटी के संगीतज्ञ है, जिन्होनें अपनी साधना स्थलीय के रुप में मध्यप्रदेश को चूना था। कुमान गन्धर्व का जन्म कनार्टक के बलेगांव जिले में सुलेभावी ग्राम में 8 अप्रैल 1924 को हुआ था। आपकी प्रारंभिक संगीत शिक्षा मुम्बई के प्रोफेसर देवधर से प्राप्त हुई। कुमार गन्धर्व ने कई रागो को निर्माण किया जैसे अही मोहिनी, मालवती, तोडी, निन्दियारी, भावमत, भैरव, लगन गंधार आदि विशेष उल्लेखनीय है, गांधीराग आपका बहु चर्ची राग है, कुमार गन्धर्व की पुस्तक अनुराग, विलास में आपकी रचना संकलन उपलब्ध है। जिसमें 136 बंदिसें दी गई है। जिनमें 170 पुराने राग तथा शेष स्व निर्मित रागों में है। बंदिसों में काव्य रचना भी आपकी है। आपकी रचना में मुख्यतः सरस्वती वंदना, गुरु महिमा रितू वर्णन आदि विषय होते है कुमार गन्धर्व को देश की अनेक संस्थाओं में सम्मानित किया गया। सन् 1973 में विक्रम विश्वविद्यालय में उन्हें मानद डी लिट से सम्मानित किया। आपको केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी के राष्ट्रीय पुरस्कार म.प्र. शासन के शिखर और कालीदास सम्मान और भारत शासन द्वारा पदम विभूषण से सम्मानित किया गया है।

2. मध्यप्रदेश के संगीत घराने

मध्यप्रदेश में प्राचीन काल से निम्नलिखित घराने अस्तित्व में रहे।

1. सेनिया घराना।
2. ग्वालियर घराना।
3. मैहर घराना।
4. इंदौर घराना।

1. सेनिया घराना :- मिया तानसेन के वंशजों द्वारा तानसेन घराने की स्थापना की गई थी। जिन्हे राम को तथा जबलपुर रियासतों को संरक्षण प्राप्त था। रामपुर के बाद के नबाव कुछ संगीत के बडे कद्रदान थे। नबाव हेदरअली खान, हमीअदली खान, छम्मन साहेब अच्छे गायक व वादक थे तथा उनके दरवार में अमर बहादुर हुसैन खॉ, संगीत नायक बजीर खॉ तथा मोहम्मद अली खॉ थे। जो तानसेन के वंसज थे। वजीर खॉ स्वयं ना केवल एक महान संगीतकार अपितु एक महान संगीत शास्त्री भी था। जिसके द्वारा संगीत विषय पर विशाला मौसी की नामक ग्रंथ की रख्ना की गई थी। छम्मन साहेब द्वारा विशाला तानसेन संगीत फलसफा पर भी रचनायें की गई थी। जो रामपुर के नबाव के दरवार में सावधानी के साथ संरक्षित रखी गई थी। मो. अली खॉ ओर बजीर खॉ के पुत्र का शिष्य होने के नाते वर्तमान अनेक संगीतज्ञों ने इन कृतियों से बहुत कुछ सिखा है। तानसेन के वंशज का कहना है कि तानसेन की संगीत शिक्षा विशेषता वे जो रागो की संरख्ना पर आधारित है, गुरु एवं शिष्यों परम्परा के माध्यम से आगे लेजाई जा रही है। तानसेन स्वयं अवध के बाबारामदास और वृंदावन के स्वामी हरिदास के शिष्य थे, तथा वे दोनों भगवान शिव को राग रागिनी का सर्जक तथा हनुमान जी के प्रचारक मानते थे। तानसेन द्वारा ध्रुपद संगीत में मीड जम-जमा इत्यादि नये अलंकरण जोडकर एक नया स्वरुप प्रदान किया। संगीत वादयों के क्षेत्र में इनका योगदान उल्लेखनीय था। उनके द्वारा रबाव (रुद्र बीणा) तथा हिन्दुस्तानी सारस्वतः वीणा का विकास किया गया था। उनके वंशजों द्वारा उनके संगीत का जिंदा रखा जाना उल्लेखनीय है।

2. ग्वालियर घराना :- ग्वालियर अपनी स्पष्ट और पूरे खुले गले से गाने के लिए प्रसिध्द है तथा ग्वालियर घराना अष्टांग गायकी के लिए प्रसिद्ध है। ग्वालियर घराने के गायक टप्पा और तराना के उस्ताद माने जाते है, टप्पा उत्तर पश्चिम भारत के ऊंट गाडी चालको के प्रेम गीत है, जिनके छोटे वाक्यांश होते है। ता तराना में नोम तोम, दीम, देरेना, इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

ध्रुपद ग्वालियर घराना का गौरव है, वास्तव में ग्वालियर घराना संगीत की शैलियों पर अपना स्वामित्व

होने का दावा कर सकता है। ग्वालियर घराना का ख्याल कोई भी सानी नहीं है। ग्वालियर घराना के कुछ प्रसिध्द नाम इस प्रकार है बालकृष्ण बुआ, इचलकरंजीकर, कृष्णराव, शंकर पंडित, और ओमकार नाथ ठाकुर जी है।

3. मध्यप्रदेश के प्रमुख संगीत समारोह

मध्य प्रदेश के प्रमुख संगीत समारोह में निम्नलिखित संगीत समारोह का विशेष स्थान है -

1. तानसेन संगीत समारोह ग्वालियर।
2. निमाड उत्सव महेश्वर।
3. अलाउद्दीन खॉ संगीत समारोह मैहर।
4. कुमार गन्धर्व संगीत समारोह देवास।

1. तानसेन संगीत समारोह ग्वालियर :- मध्यप्रदेश को भारतीय शास्त्रीय संगीत में विशिष्ट स्थान प्राप्त है हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के रत्न महान तानसेन की कब्र ग्वालियर में स्थित है यहॉ प्रतिवर्ष नवम्बर-दिसम्बर में भारतीय शास्त्रीय संगीत का उत्सव आयोजित किया जाता है। देश तथा प्रदेश के जाने माने शास्त्रीय गायक अपने शास्त्रीय रागो से 5 रात्रि सत्रो में श्रुतोओं को आनंद के सागर में डुबोते है।

यह उत्सव पूर्व काल में ग्वालियर रियासत का अत्यंत महत्वपूर्ण संगीत समारोह हुआ करता था। अब यह सिलसिला संस्कृति विभाग की अकादमी द्वारा आयोजित किया जाता है। देश विदेश के महान सुविख्यात संगीतज्ञ और संगीत प्रेमी सर्वकालिन महान संगीतज्ञ तानसेन को अपनी श्रृद्धांजली देने के लिए समारोह में भाग लेते है।

2. निमाड़ उत्सव महेश्वर :- पवित्र नदी नर्मदा के तट पर स्थित एक छोटी नगरी तथा किसी जमाने में होलकर रानी अहिल्या बाई की राजधानी महेश्वर सम्पूर्ण विश्व में अहिल्या घाट और साडियों के लिए प्रसिध्द एक तिरथ स्थान है, निमाड उत्सव देश के उन विरल उत्सवों में शामिल है, जो देश में ऐसी नदियों से प्रभावित युगो पुरानी संस्कृति के रुप में नर्मदा नदी के तट पर आयोजित किया जाता है। तीन दिवसीय निमाड उत्सव में शास्त्रीय संगीत नृत्य तथा नाटक का प्रमुख उत्सव है। इस उत्सव का आयोजन प्रतिवर्ष कार्तिक पूर्णिमा को किया जाता है।

3. अलाउद्दीन खॉ संगीत समारोह मैहर :- 20वीं सदी के महान संगीत उस्ताद पदम विभूषण अलाउद्दीन खॉ की स्मृति में अकादमी द्वारा प्रत्येक वर्ष आयोजित किया जाना वाला समारोह सुविख्यात संगीत स्थल मैहर जिला सतना में आयोजित किया जाता था। यह समारोह 1970-80 से लगातार आयोजित किया जा रहा है। इस संगीत उत्सव में उस्ताद अलाउद्दीन खॉ की शैली में गायन वादन करने वाले अनेक प्रतिष्ठित कलाकारों के अतिरिक्त अनेक प्रभावशाली कलाकार स्वर्गीय उस्ताद अलाउद्दीन खॉ को अपनी संगीत श्रृध्दांजलि अर्पित करते है। यह समारोह प्रतिवर्ष फरवरी माह में आयोजित किया जाता है। जिसमें देश विदेश के कलाकार और संगीत रसिया भाग लेते है, इस संगीत उत्सव को राष्ट्रव्यापी मान्यता तथा प्रतिष्ठा प्राप्त है।

4. कुमार गन्धर्व संगीत समारोह देवास :- कुमार गन्धर्व संगीत समारोह देवास में हर साल उनके जन्म दिवस 8 अप्रैल को उनकी स्मृति में वर्तमान काल के महान शास्त्रीय गायक को अपनी संगीत श्रृध्दाजंलि अर्पित है। करने हेतु 1992-93 से लगातार आयोजित किया जाता रहा है। कुमार गन्धर्व के लोक शास्त्रीय गायन मिश्रण की जादूई संगीत शैली के अतिरिक्त बडी संख्या में सुप्रतिष्ठित तथा प्रतिभाशाली युवा अपनी संगीत शैली का परिचय देते है। बडी संख्या में संगीतकारों और गायकों की सिरकत यह समारोह देा के बडे संगीत समारोह में शुमार किया जाता है।

5. विषय का उद्देश्य :- शास्त्रीय संगीत के प्रचार में मध्यप्रदेश के संगीतज्ञों का योगदान विषय के उद्देश्य निम्नानुसार हैः-

1. सन् 1956 से सन् 2015 तक शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में मध्यप्रदेश के जिन संगीतज्ञों ने अपना अमूल्य योगदान दिया है। उनकी जानकारी एकत्रित करना।

2. भारतीय शास्त्रीय संगीत के अंतर्गत मध्यप्रदेश के विभिन्न जिलों में रहकर संगीत का प्रचार कर रहे संगीतज्ञों की जानकारी हासिल करके सूची बनाना।
3. मध्यप्रदेश के संगीतज्ञों के द्वारा गायन एवं वादन के क्षेत्र में किये गये सराहनीय कार्यों एवं उनकी उपलब्धियों की जानकारी हासिल करके जन-जन तक पहुँचाना।
4. मध्यप्रदेश के संगीतज्ञों की गायन शैली, घराना पुरूस्कार, सम्मान आदि की जानकारी हासिल करना।
5. संगीतज्ञों के द्वारा संगीत के प्रचार प्रसार के लिए किये गये विविध कार्यक्रमों, सम्मेलनों, कार्यशाला आदि की जानकारी हासिल करना तथा उनके द्वारा तैयार किये गये शिष्यों की जानकारी प्राप्त करना।
6. मध्यप्रदेश की संगीत संस्थाएं जैसे स्कूल, कॉलेज, तथा विश्वविद्यालयों के द्वारा संगीत के प्रचार प्रसार में किये जा रहे कार्यों की जानकारी एकत्रित करना।
7. मध्यप्रदेश के पदमश्री एवं पदमविभूषण प्राप्त संगीतज्ञों एवं कलाकारों की जानकारी हासिल करना।
8. कालिदास सम्मान, तानसेन सम्मान, लतामंगेशकर सम्मान संगीत नाटक अकादमी सम्मान एवं अन्य कई प्रकार के महत्वपूर्ण सम्मान प्राप्त कलाकारों की जानकारी हासिल करना।
9. मध्यप्रदेश के आकाशवाणी केंन्दों में कार्य कर रहे ग्रेडेड प्राप्त कलाकारों की जानकारी एकत्रित करना।
10. मध्यप्रदेश के संगीत समारोह तथा संगीत सम्मेलनों तथा विविध कार्यक्रमों की सूची तेयार करना।
11. मध्यप्रदेश के संगीत विषय में शोधकर्ताओं एवं उनके शोधग्रंथों की जानकारी हासिल करना।

6. निष्कर्ष :-

शास्त्रीय संगीत के प्रचार प्रसार के लिए मध्यप्रदेश के संगीतज्ञों के द्वारा किये गये सराहनीय कार्यो जैसे संगीत संगोष्ठी एवं प्रदर्शन, कार्यशालाओं का आयोजन, प्रदेश स्तर पर संगीत कार्यक्रमों का आयोजन, नवोदित कलाकारों के प्रोत्साहन हेतु कार्यक्रमों का आयोजन, संगीत सम्मेलन, स्कूल कॉलेजों की स्पाना, प्रभावी संगीत का शिक्षण, गायन शैली, पुरुष्कार एवं सम्मान शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रम में सहभागिता, आकाशवाणी एवं दूरदर्शन पर संगीत के प्रचार प्रसार हेतु रिकार्डिंग करना, उनके द्वारा रचित ग्रंथ, पुस्तकें एवं पत्र पत्रिकाओं समाचार पत्रों के द्वारा संगीत परंपरा को विकसित और प्रचारित करने में उनके द्वारा दिये गये योगदान की जानकारी प्राप्त हो सकेगी जो कि प्रदेश के संगीत साधकों, संगीत विद्यार्थियों एवं नवोदित कलाकारों के लिए महत्वपूर्ण उपयोगी तथा ज्ञानवर्धक जानकारी होगी जो प्रदेश के संगीतज्ञों को गौरवान्वित करेगी साथ ही प्रदेश के संगीतज्ञों की एकजुट जानकारी प्राप्त हो सकेगी।

7. उपयोगी ग्रंथो की सूची :-

1. भारतीय संगीत का इतिहास - भगवत शरण शर्मा।
2. हमारे प्रिय संगीतज्ञ - प्रो. हरिश्चंद्र श्रीवास्तव।
3. मध्यप्रदेश के संगीतज्ञ - डॉ. प्यारेलाल श्रीमाल (उज्जैन)।
4. पत्र पत्रिकाएँ एवं समाचार पत्र।

किन्नौर जनपद का सांस्कृतिक अनुशीलन

डॉ. दिनेश कुमारी नेगी

सहायक आचार्या हिंदी,
राजकीय महाविद्यालय धामी (सोलह मील) शिमला, हिमाचल प्रदेश

हिमालय पुत्र किन्नौर जनपद के गद्दी समुदाय का सांस्कृतिक वैभव अनमोल है और यहाँ के सांस्कृतिक परिवेश में भोला-भाला जीवन देखने को मिलता है। इसी पर्वतीय समाज की इंद्रधनुषी संस्कृति अत्यंत समृद्ध एवं भिन्न है। यहाँ का जीवन देव परंपराओं के इर्द-गिर्द घुमता है और इन देव परंपराओं का आरंभ प्राचीन काल से माना जाता है। यहाँ के नाम जनमानस पर देव संस्कृति की अनूठी छाप है और देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए प्रति वर्ष मेले, त्योहारों एवं पर्वों को मनाने की परंपरा है। जीवन की समृद्धि, खुशहाली तथा दुःख के क्षणों में देव आश्रय लेने की अत्यंत रोचक और प्राचीन प्रथाएँ है।

किन्नौर के निवासियों को किन्नर या किन्नौरा भी कहा जाता है। ऋग्वेद, महाभारत व अन्य भारतीय वांग्मय में किन्नरों का वर्णन यक्षों और गंधर्वों के साथ आता है। आदर्श गुणों, सरल, मृदुभाषी एवं अन्य सात्विक गुणों के कारण इन्हें देव संज्ञा भी दी जाती है। कहते हैं कि वीर अर्जुन को अश्वमेद्य यज्ञ के घोड़े की रक्षा करते वक्त हिमालय में किन्नर मिले थे और यही किन्नर प्राचीन काल से लेकर आज तक अपनी मौलिकता और अस्तित्व बनाए हुए हैं। किन्नर हिंदू तथा बौद्ध धर्म दोनों के अनुयायी है और इन्हें नेगी कहकर भी पुकारा जाता है जो एक सम्मान सूचक संबोधन है। भेड़-बकरियाँ एवं घोड़े पालना तथा ऊन का व्यापार करना इन लोगों का मुख्य व्यवसाय रहा है लेकिन अब ये कृषि-बागवानी के साथ-साथ प्रशासनिक पदों पर कार्य कर रहे हैं।

किन्नौर जिले की उस पवित्र माटी से जब गीतों की भिनी-भिनी ध्वनियाँ मुखरित होती है तो मानो सारा आँचल नृत्य में झूम उठता है। देव मेलों, त्योहारों एवं पर्वों के अवसर पर यहाँ के गाँव-गाँव में लोक गीत गाए जाते हैं और लोक नृत्य होता है। यहाँ के लोक नृत्यों की अपनी ही एक विशिष्टता है। जनश्रुति है कि बर्फ का राजा हिमवान। (युकुन्तरस) अपनी दो बेटियों गंगा और गौरी के साथ रहता था। एक बार भगवान विष्णु ने महादेव को कहा–''मामाजी और तो सब ठीक है लेकिन बिना मामी के काम नहीं चल रहा इसलिए आप स्वीकृति दें तो योग्य मामी को खोजने का कार्य किया जाए। महादेव ने भी तुरंत स्वीकृति दे दी। विष्णु जी ने अष्टकोटिड देवताओं को सभी जगह योग्य वधु खोजने का कार्य दिया। देवताओं ने हर जगह योग्य वधु की तलाश की लेकिन उसमें वे सभी विफल रहे। अंततोगत्वा विष्णु और शंकर साधु का वेश धारण कर बर्फ के राजा युकुन्तरस के महल पहुँचे। शादी महल में अष्टधातुओं के सात द्वार थे जिन्हें कढ़ी परीक्षा व प्रत्येक डेबढ़ी पर रखे उसी धातु के नगाड़ों को बजाने के पश्चात ही खोला जा सकता था। शिव और विष्णु जो साधु के भेष में थे इन्होंने ऐसे ही किया। जैसे ही द्वार खोला और अंदर पहुँचे तो विष्णु ने विवाह का प्रस्ताव रखा। राजा युकुन्तरस को इनकी गतिविधियाँ और यह प्रस्ताव पसंद नहीं आया और अत्यंत क्रोधित हुए। उन्होंने इन साधुओं को भगाने के लिए भारी मात्रा में बर्फ गिराने का निर्णय कर बर्फ गिराना शुरू कर दिया।

दोनों साधु बाहर बैठे रहे और उन्हें इस बर्फ का जरा भी असर नहीं हुआ। यहाँ तक की महादेव को बर्फ स्पर्श तक नहीं कर पाई। आश्चर्यचकित राजा की दोनों कन्याएँ गौरी और गंगा पर इसका अत्यधिक प्रभाव पड़ा। दोनों ने पिता के क्रोध को शांत कर उन्हें इस प्रस्ताव के लिए मना लिया। विवाह की स्वीकृति मिलने का सुखद समाचार प्राप्त होने पर महादेव ने बारह सूर्य को एक साथ चमकाकर एक ही क्षण में सारी बर्फ पिघला दी। पर्वतराज ने विवाह के लिए कुछ शर्तें रखी और विष्णु को समझाया कि यदि प्रत्येक बाराती एक बकरे का माँस और बीस पथा नमक का लेगा तथा बकरे की खाल को नर्म करके एक ही रात में सुखाकर आटा पीसने का खालटा तैयार कर दे तो वह गौरी की शादी महादेव से करवा देंगे। विष्णु भगवान ने यह शर्त स्वीकार कर ली। तत्पश्चात निश्चित समय में महादेव की बारात का आगमन हुआ। पर्वतराज ने प्रत्येक बाराती के लिए बीस पथा नमक, बीस पथा चावल और एक-एक बकरा भेज दिया और बकरा काटने को एक बड़ा घन्न दे दिया। भगवान विष्णु ये यह सब कुछ समझकर सभी बारातियों को कायड़ग नृत्य करने का सुझाव दिया। सभी बाराती नृत्य करते करते घन्न को जमीन के एक सिरे से रगड़ते गए और जिसके कारण यह घिसते-घिसते कुल्हाड़ा बन गया। तभी बकरों को बारी-बारी से काटकर एक-एक टुकड़ा माँस सभी बाराती नमक लगाकर खाते गए। काटे गए बकरे की खालें पाँवों के नीचे दबकर नर्म होती गई। समस्त शर्तें पूरी हो जाने के पश्चात महादेव का विवाह गौरी से हो गया और महादेव साथ में गंगा को भी ले आए। इससे आगे सृष्टि उत्पत्ति की कथा आती है। इस कायड़ग नृत्य में लोक नाट्य या गीति नाट्य बनने के सभी गुण विद्यमान है। यह नृत्य किन्नौर जिले में बहुत ही प्रसिद्ध है। इस लोक नृत्य के अनेक रूप हैं जिनमें बाकायांग, छेरकी कायड़ग, नागसकायड़, थरकायड़, बोनगयागछु और शुनाकाय इत्यादि सुप्रसिद्ध है। इन सभी नृत्यों के पीछे दिव्य लोक कथाएँ व गाथाएँ जुड़ी हुई है। भगवान शिव का इस क्षेत्र से बहुत लगाव रहा है। पर्वतराज हिमालय युकुन्तरस का संबंध इसी भूमि से रहा है और भगवान शंकर की यह तप भूमि भी और ससुराल भी है। महादेव ने असंख्य असुरी शक्तियों का यहाँ विनाश भी किया था और तभी ये लोकगाथाएँ आज भी किसी न किसी रूप में विद्यमान है।

यहाँ के लोगों की अपनी धर्मिक मान्यताएँ एवं विश्वास है। हर देहात का संबंध किसी न किसी दिव्य शक्ति से रहा है। दैवीय शक्तियों के साथ-साथ असुरी मायावी शक्तियाँ भी समय-समय पर भक्तों पर हावी होती रही है। यहाँ के लोग दुरात्माओं एवं भूत-प्रेतों को भगाने के लिए एक नृत्य करते हैं जिसे मुखौटा नृत्य कहा जाता है। यह लोक नृत्य बौद्ध लामाओं की तांत्रिक नृत्य पद्धति है। ऐसी मान्यता है कि प्रसिद्ध बौद्ध लामा पल्दन ईश ने इस लोक नृत्य की परंपरा आरंभ की थी। इस नृत्य का प्रयध ोजन मानव जाति के उत्थान और प्रेत दुरात्माओं का विनाश एवं उन्हें भगाने से है। इसका शुभारंभ बौद्ध मंत्र उच्चारण और प्रार्थना से होता है। इसमें विशाल आकार के वाद्य यंत्र भारी करनाल, बढ़ा ढोल व बड़ी शहनाई जैसे वाद्य यंत्र बजाए जाते हैं। इसमें नर्तक दल के लोग मुखौटे पहनकर नृत्य करते हैं। ये मुखौटे लकड़ी एवं हल्के लोहे के बने होते हैं। सिर और गर्दन पर पशुओं के मुखौटे भी लगाए जाते हैं। इन सभी मुखौटों को तरह-तरह के रंग, मणकों व काले पत्थरों से सुसज्जित किया जाता है। धार्मिक लोक नृत्यों में ही इनका प्रयोग सर्वाधिक होता है और मंदिरों में इनको रखा जाता है। इनको लामा (धार्मिक पंडित) ही विशेष उत्सवों पर बाहर निकालते हैं। इनमें भी छम नृत्य, लामा नृत्य प्रेत नृत्य व तेमोस्वांग इत्यादि उल्लेखनीय है। लामा नृत्य बौद्ध भिक्षुओं में अत्यधिक लोकप्रिय व प्रचलित है। यह लोक नृत्य भी भूत-प्रेतों को भगाने और प्राकृतिक प्रकोपों को हटाने के लिए किया जाता है। इसमें ढोल नगाड़ों, नरसिंगे और शहनाई के साथ सभी नर्तक मुखौटा पहनकर नाचते हैं। इनें से दो नर्तक भालू या शेर का मुखौटा पहनकर नृत्य करते है और शेष नर्तक दल इन दोनों शेरों को रोकने या काबू में

करने का प्रयास करते हैं जिसका स्पष्ट मतलब होता है कि तरह से यहाँ के लोग शौर्य एवं पराक्रम से ऐसी शक्तियों का सामना कर उन्हें चित करते हैं। लोक नृत्य में एक प्रसिद्ध नृत्य है छम या प्रेत नृत्य। यह भी लामाओं में प्रसिद्ध है और यह सामान्यतः गोम्पाओं में प्रदर्शित होता है। इस नृत्य में नर्तक लोग अनेक जानवरों, पक्षियों और भड़कीले प्रेतों के चमकीले मुखौटे पहनकर नृत्य करते हैं और हाथों में कढ़ाई किए हुए झंडे लिए नर्तकों में अभिनय के साथ-साथ मुखौटा पहने नर्तक विनोद करते हुए एक विचित्र सा प्रभाव वातावरण में फैला देते हैं। इसमें लामा पंडित भी भाग लेते हैं और नर्तक के साथ मंत्रोच्चारण करते हैं। नर्तक भिन्न-भिन्न तरह के आठ मुखौटे पहनते हैं। ये आठ करोढा भयानक रूप आठ बोद्धिसत्व के प्रतीक हैं। वैसे ही मकर नृत्य भी किन्नौर और लाहौल स्पीति जिले में बहुत लोकप्रिय है। इस नृत्य में नर्तक लोग मुख पर मुखावरण पहनते हैं और शरीर पर लंबा चोला पहनते हैं। इसमें नर्तक के शरीर का कोई भी अंग दिखता नहीं है। इस नृत्य से संबंधित एक लोक कथा जुड़ी हुई है। कहते हैं कि भोट राजाओं में लंग दर्मा राजा बहुत ही दुष्ट व पानी था। वह हिमाचल प्रदेश के धर्म और संस्कृति को नष्ट कर रहा था। उने बहुत से धार्मिक पंडितों, लामओं एवं भक्तों को मौत के घाट उतारा तथा बहुत से बौद्ध-विहार, ग्रंथालयों को जलाकर नष्ट कर दिया। एक बार जब वह विजय उत्सव मनाने में लीन था तो उसमें यह मकर नृत्य भी हो रहा था। इस नृत्य में एक साहसी व योद्धा नतर्क अपने कपड़ों में एक छुरा छुपाकर लाया और नृत्य करते दरबार में राजा तक पहुँच गया। उसने छुरे से राजा के शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। तभी से यह नृत्य लामा लोगों में बहुत प्रसिद्ध हुआ। इसमें लामा लोग खुकरी के साथ नाचते हुए गोलाकार रूप में घुमते है।

किन्नौर जिला अपनी संस्कृति और सभ्यता के लिए समुचे राष्ट्र में एक अलग पहचान रखता है और यहाँ के लोकप्रिय पर्वों व त्योहारों पर प्रकाश डाले तो इसमें फुलेच त्योहार प्रमुख हैं जो भादों अंत या आसजू के प्रारंभ में मनाया जाता है और इसका संबंध फूलों से है, अतः इसे फूलों का त्योहार भी कहा जाता है। अलग-अलग तिथियों में मनाया जाने वाले इस त्योहार को उख्यांग भी कहा जाता है। उख्यांग से तात्पर्य ''उ'' फूल को कहते हैं और ''ख्यांग'' देखना। अतः उख्यांग का अर्थ है फूलों की तरफ देखना या फूलों का आनंद लेना। यह त्योहार आमतौर पर गाँव के पास पहाड़ियों की चोटी पर मनाया जाता है। त्योहार से एक दो दिन पहले ग्रामीणों की टोलियाँ पहाड़ियों की चोटियों से रंग-बिरंगे फूल चुनकर लाती है। त्योहार वाले दिन सारे ग्रामीण लोग, गाँव के चौगान पर सम्मिलित होकर ग्राम-देवता की मूर्ति को मंदिर से वहाँ ले जाते हैं और वो फूलों के हार देवता को चढ़ाए जाते हैं और बाद में वे लोगों में बाँट दिए जाते हैं। इस समय ही वह देवता का गुर या पुजारी आने वाले मौसम और फसलों आदि के बारे में भविष्यवाणी करता है और लोग ज्यादा फूल अपने-अपने घरों को ले जाते हैं।

किन्नौर जिले के छितकुल में ''खा मेला'' भगवती मथी देवी के प्रांगण में हर माघ महीने में एक शुभ मुहूर्त में मनाया जाता है। इस त्योहार को मनाने के लिए सभी ग्रामवासी अपने-अपने घरों में सफाई कर दीवारों पर अनेक प्रकार के चित्र उकेरते है। कुछेक घरों में तो बच्चों सहित पूरे वंश के नाम दीवारों पर लिखे मिलते हैं।

दखैरनी भी यहाँ का प्रसिद्ध मेला है और यह जुलाई माह में मनाया जाता है। इस मेले में गाँव के लोग अपने देवी-देवताओं को दर्शन के लिए जनसमूह में लाते हैं और ग्रामवासी देव परिक्रमा करते, गीत गाते हुए नृत्य करते हैं। देव पूजा के लिए झोंकर और लोकसर पर्वतों से फूल लाकर मालाएँ बनाई जाती है और देवी-देवताओं को चढ़ाई जाती है। फूल आशीर्वाद के तौर पर लोगों को बाँटे जाते हैं तथा मृत व्यक्तियों की स्मृति में गडरियों को भोज दिया जाता है और आत्माओं की स्मृति में पहाड़ियों अर्थात चोटियों पर सफेद कपड़ों में बौद्ध मंत्र लिखकर झंडे लगाए जाते हैं वैसे ही अन्य प्रसिद्ध त्योहारों में नूतन वर्ष में मनाया जाने वाला लोसर है, इसमें गाँव के

लोग एक-दूसरे को चिलगोजे की माला पहनाकर और 'लोसूमा ताशी' कहकर बधाईयाँ देते हैं व परस्पर भोजन करते हैं और उपहार देते हैं। सभी लोग गाँवों के बुजुर्गों को प्रणाम कर उनका आशीर्वाद लेते हैं।

अपनी समृद्ध संस्कृति का जीवंत उदाहरण एक और अन्य मेला फागुल या 'सुसकर' है जो फरवरी-मार्च में लगभग सात दिन तक ऊँची चोटियों पर बने मकानों में धूमधाम के साथ मनाया जाता है। यह त्योहार भगवती काली को समर्पित होता है। इसमें रह रोज काली माँ की पूजा अलग-अलग ढंग से की जाती है। अंतिम दिन सभी ग्रामीण भारी संख्या में इकट्ठे होकर सामूहिक अन्न भंडारा रखते हैं जिसमें बनाए गए पकवान सबसे पहले माँ काली को चढ़ाए जाते हैं। पूजा अर्चना करने के उपरांत कुछ पकवान घरों की छत पर रख दिए जाते हैं। इस विधान से प्रसन्न होकर काली ग्रामीणों को आशीर्वाद देती है।

किन्नौर जनपद की सांस्कृतिक संभ्यता में नाना प्रकार के रीति-रिवाजों की एक सशक्त मर्यादा रही है। यहाँ विवाह संस्कार का आम जीवन पर अत्यधिक प्रभाव देखने को मिलता है। लोगों के रीति-रिवाजों में विवाह पद्धति का उल्लेख करें तो यहाँ का जानेरटंग विवाह बहुत ही प्रसिद्ध है। इसमें जब लड़के वाले लड़की चुन लेते हैं तो लड़के का मामा या अन्य संबंधी जिसे ''मजोमिग'' कहते हैं को सुरा या छांग (मदिरा) लेकर लड़की के घर जाता है और अपने आने का प्रयोजन बताता है। तत्पश्चात माता-पिता परस्पर सलाह-मशबरा करते हैं।

यदि वे लड़के को योग्य न समझे तो लड़की की माँ कहती हैं कि मैं लड़की से बात करके आपको बता दूँगी। इसका मतलब समझ जाते हैं कि यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं है, तत्पश्चात मामा बिना छांग पिलाये वापस अपने घर आ जाता है और यदि लड़की का पिता मान जाए तो मजोमिग पाँच रुपए उसके सामने रखता है और मदिरा की बोतल भी, ढक्कन पर मक्खन लगाकर उसके सामने रख देता है जिसका अर्थ है भगवान इस अवसर पर आशीर्वाद दें और उसके बाद सुरा की बोतल खुशी से पी जाती है, इस रस्म को कोरयांग कहते हैं। इसके बाद लड़के का मामा लड़की वालों को लामा (पंडित) द्वारा निश्चित की गई शादी की तिथि के बारे में बताता है। शादी की तिथि को दुल्हे का पिता लगभग पंद्रह आदमी बाराती लेकर बाजे बजंतरियों के साथ लड़की के घर जाते हैं। दुल्हा प्रायः साथ नहीं जाता है परंतु अब कहीं-कहीं साथ जाता है। जड़की के घर पहुँचने से पहले लामा एक थाली में तीन दीपक और जौ के तीन पिंड बनाकर सभी बारातियों के सिर पर घुमाता है ताकि कोई भूत प्रेत उनके साथ न आया हो। उसके बाद बारात लड़की के घर पहुँचती हैं। प्रत्येक बाराती को एक-एक पीला फूल दिया जाता है जो सभी टोपी में लगाते हैं। शराब की महफिल जमती है। खूब नाचना गाना होता है। उसके बाद लड़के के मामा, भाई और पिता लड़की के कमरे में जाते हैं और दुल्हन के माथे पर मक्खन का टीका लगाते है। सारी वैवाहिक रस्में पूरी करने के उपरांत अगले दिन बारात वापस लौटती हैं। लड़की के साथ उसकी दो तीन सहेलियाँ ही जाती है। जब बारात पहुँचती है तो लड़की को पहले मंदिर में ले जाया जाता है और बाद में वह सबसे पहले अपनी सास के पास जाती है और उन्हें प्रणाम कर आशीर्वाद लेती है। बाहर बकरे काटे जाते हैं और नाच-गान व खाना पीना होता है। अंत में दुल्हा सभी को उनके गले में सूखे न्योजे और खुमानी की माला पहनाकर विदा करता है। इनके विवाह संस्कार में एक और तरीका ''हार'' विवाह करना भी है इसमें लड़का किसी मेले या शादी में लड़की को जबरदस्ती उठाकर शादी कर देता है या लड़की स्वयं स्वेच्छा से भाग जाती हैं तो इसे हार शादी कहा जाता है। ऐसी सूरत में लड़के के परिजन लड़की के परिजनों से समझौता कर उनके लड़के द्वारा किए गए काम के कारण बेइज्जती की क्षतिपूर्ति के लिए पाँच सौ रुपए तक या बकरा देते हैं। इस तरह की शादी को किन्नौर में दुबदुब, चुचिस या खुटकिमा कहते हैं। पति-पत्नी में जब अनबन हो जाए तो लड़की अपने पिता के घर वापस आ जाती है और लड़की का पिता पिछले पति को रीत का पैसा देकर

जिसमें उसके पति द्वारा दिए गए गहनें-कपड़ों की कीमत या शादी के अन्य खर्च शामिल होते हैं, बिना किसी औपचारिक तलाक लिए छुड़ा सकता है। दूसरी शादी करने की सूरत में यह रीत दूसरे पति द्वारा दी जाती है। यह रिवाज स्त्री की स्वतंत्रता का प्रतीक है कि उसकी इच्छा के विरुद्ध उसे बाधिक नहीं किया जा सकता और पति उसके ऊपर जुर्म नहीं कर सकता। अलग-अलग कुनबों में तलाक के अपने तरीके हैं। तलाक को 'दोहरी' या हारी कहते हैं। किन्नौर और लाहौर स्पीति में लकड़ी की छाल का धागा तोड़ा जाता है और तलाक पूरा हो जाता है।

कुछ समय पहले तक हिमाचल प्रदेश के ऊपरी क्षेत्रों में जिसमें किन्नौर भी शामिल है में बहुपति-प्रथा भी प्रचलित रही है जिसका मूल लोग महाभारत में ढूँढते हैं। कहा जाता है कि पाँच पांडवों ने एक पत्नी द्रौपदी से विवाह किया था। इस प्रथा के अनुसार ज्येष्ठ भ्राता झाजरा शादी करता है और उसके शेष भाई स्वयमेव उसके पति माने जाते हैं। वैवाहिक संबंधों का बँटवारा वे आपसी सहमति से इस प्रथा के अनुसार करते हैं और इस विवाह से पैदा होने वाली संतान बड़े भाई के नाम दर्ज की जाती है। स्त्री को निष्पक्ष होकर सभी पत्तियों से एक जैसा व्यवहार करना पड़ता है और इस प्रकार की शादी की सफलता भी स्त्री के निष्पक्ष व्यवहार पर निर्भर करती है। इस प्रथा के समर्थकों का कहना है कि इससे बच्चों की संख्या पर नियंत्रण रहता है और परिवार में विभाजन भी नहीं होता और इकट्ठे परिवार में रहने से परिवार की आर्थिक-दशा ठीक रहती है तथा भूमि का विभाजन नहीं होता लेकिन आज समय के परिवर्तन के साथ यह प्रथा बदल चुकी है। आधुनिक समय में अब यहाँ के लोग प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ रहे हैं। आज नेगी लोग हिमाचल प्रदेश ही नहीं बल्कि भारत सरकार के महत्त्वपूर्ण पदों पर कार्य कर रहे है।

निश्चय ही किन्नौर जिले की संस्कृति की अपनी एक विशिष्ट पहचान है। यहाँ के मुक मुद्रा में प्रहरी की भाँति खड़े मठ, मंदिर और स्मारक किन्नौरी संस्कृति के मुँह बोलते चित्र प्रस्तुत करते हैं। इस संस्कृति में पर्वतीय जनजीवन के रीति-रिवाजों की अक्षय निधि छिपी है। यहाँ पर लोक संस्कृति देव कृपा के सहारे पल्लवित होते देखी जाती है। हिमाचल प्रदेश जिससे कि देवभूमि नाम से जाना जाता है में देवी-देवताओं को सर्वोपरि माना जाता है और उनके नाम पर ही संस्कृति का विकास हुआ है। आज मनाए जाने वाले असंख्य पर्व, तीज त्योहार इसके जीवंत प्रमाण है। हिमाचल प्रदेश वह भूमि है जहाँ पर मनुष्य के राजा मनु ने जन्म लिया और यह वह पावन भूमि है जहाँ पर महान् प्रतापी ऋषियों ने कठोर तपस्या की, महादेव शंकर भगवान ने तप किया और दिव्य शक्ति से पर्वतराज हिमालय की पुत्रियाँ गौरी और गंगा को प्राप्त किया, इसी कारण तो महादेव को पर्वतराज हिमालय का दामाद भी कहते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. देवराज शर्मा, हिमाचल अतीत, वर्तमान और भविष्य एक झलक, पृष्ठ सं-98
2. वही, पृष्ठ सं-99
3. वही पृष्ठ सं-101
4. सांस्कृत्यायन राहुल, किन्नर देश, पृष्ठ सं-43,44
5. नेगी शरब, हिमालय पुत्र किन्नौर की लोकगाथाएँ
6. बलोखरा जगमोहन, अलौकिक हिमाचल प्रदेश, पृष्ठ सं-121
7. वही, पृष्ठ सं-122
8. वही पृष्ठ सं-123
9. वही पृष्ठ सं-173
10. दिलैक गोपाल, विशाल हिमाचल, पृष्ठ सं-132
11. वही, पृष्ठ सं-133

संगीत के विकास में भक्तिकाल का योगदान

शिवेश कुमार

शोधार्थी

विश्वविद्यालय संगीत विभाग ति. मॉ. भा. विश्वविद्यालयए भागलपुर।

भारतीय परंपरित परकासना में संगीत और अध्यात्म का गठजोड़ दृष्टिसम्पन्न रहा हैं संगीत श्रांत मस्तिष्कीय मनोविनोद का साधन नहींए वरन् ईश्वरीय अनुसंधान के परम मंगल का विधायक रहा है। आदि काल से लेकर मध्यकालीन भक्त कवियों तक संगीत द्वारा ही पर ब्रहम की आराधना होती रही है। आर्यावर्त की धर्म भावना केवल नित्य-नैमित्तिक तथा बाहय लोकाचार तक कदापित सीमित नहीं रही अपितु आध्यात्मिक अनुभूति से अनुप्रेरित रही है।

अध्यात्म के रंग में रंग कर ही हमारे भक्त कवियों ने संगीत के माध्यम से विश्व के प्रत्येक रूप में सर्वव्यापी दिव्यसत्ता का साक्षात्कार किया है एवं अन्यों को भी लाभान्न्ति करवाया है।

भक्त कवियों के भजनए पदए कीर्तन इत्यादि परंपरागत कण्ठों में अक्षुण्य रहे है तथा भारतीय साहित्यों में भक्ति ने काव्य को संगीत के साथ ही स्वीकार किया है। गेयता के कारण ही संगीतमय भक्ति.काव्य काल के धात के बीच भी प्रभापुंज बना रहा।

भक्ति की चरमावस्था में भावविभोर भक्त अपने आराध्य से एकरस हो जाता है। भाव जगत में परमप्रिय के सान्निध्य से आत्मा माया को छोड़कर अनिवर्चनीय से मिल जाती है। इस अद्वैत स्थिति का माध्यम है.संगीतए जो विशुद्ध उदात्त भक्ति को इष्ट के योग्य बनाने के लिए अपनी शक्ति का सबल देती है। निर्गुण संत हो या सगुण साधकए प्रेम मार्गी हो या ज्ञान मार्गी सभी ने काव्य और संगीत के नैवेद्य से अपने इष्ट की आराधना की है।

''श्री हरि मोहन मालवीय के अनुसार''– महाप्रभु बल्लभाचार्य द्वारा पुष्टि भक्ति एवं नवधा भक्ति में कीर्तन का समावेश हुआ था। पुष्टिमार्गीय सेवा विधि में अष्ट प्रहर की झांकी के अनुकूल ही संकीर्तन एवं पदों का गायन होता था। अष्टछाप के कवि सूरदास, कुम्भन दासए नंद दास, परमानंद दास, छीतस्वामी, गोविन्द दास एवं कृष्ण दास इत्यादि कवि ही नहीं महान संगीतज्ञ एवं कीर्तनकार भी थे। स्वामी हरिदास एवं गोविंद स्वामी के शिष्यतत्व में गायक तानसेन ने गानविद्या सीखी थी एवं महाकवि सूरदास ने 'माना रे करि माधौ से प्रीत' गाकर सम्राट अकबर को आश्यर्य.चकित किया था। मीराए राजा आसकरण, गंग, ग्वाल इत्यादि भक्त कवियों ने संगीत के माध्यम से ही सूर मल्हार, सूर सारंग, मीराबाइ की मल्हार, सूर और मीरा के नाम से प्रचलित रागों में भजन इत्यादि गाया करते थे जो आज भी प्रचलित रागों के श्रेणी में ही आते है तथा उपरोक्त संतो द्वारा निम्नलिखित प्रसिद्ध भी था–

''सांझ को राग सकारे गावे
सोह साधु मोरे मन भावे।''

इन संतो का गायन स्वच्छंद था एवं ये भजनीक थे तथा इन सब ने गायकी से अधिक महत्व भाव को दिया था। तुलसी की रचनाओं में ख्याल, ध्रुपद, टप्पाए ठुमरी, लावनी आदि उदाहरण देखने को मिलते है।

ठीक इसी प्रकार सूफी साधक में चिश्ती सम्प्रदाया के साधक संगीत प्रेमी थे तथा कव्वाली गाते समय

अनेक सूफी साधकों ने अपने प्राण विसर्जित किये थे एवं दरगाहों में एकत्रित जन-समूह प्रेममार्गी सूफियों की कव्वाली से विभोर हो उठते थे आदि।

भक्तिकाल भले ही निर्गुण और सगुन धाराओं में विभाजित होकर सामने आया हो किन्तु कुछ मुख्य विशेताएँ एवं ऐसी मान्यताएँ तथा जीवन मूल्य है जो समान रूप से संतो, सूफियों, राम भक्तों, कृष्ण भक्तों इत्यादि में देखने को मिलती है।

'आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी' के अनुसार– जितनी सरलता और सहजता से इस साहित्य ने जन-जीवन का स्पर्श किया, उतनी सहजता से अन्य कोई भी साहित्य नहीं कर सका। इस साहित्य द्वारा भ्रमित और हताश जनता को उल्लासमय जीवन जीने की प्रेरणा ही नहीं उन्हें एक अलौकिक संतोष भी प्रदान किया तथा सम्पूर्ण इतिहास में यह अपने ढंग का अकेला है जो भक्ति साहित्य के नाम से शोभायमान होकर एक नयी दुनियाँ ही है।

भक्ति युग में जो धाराएँ विकसित हुई वो अलग-अलग भले ही हो किन्तु उनके सिद्धांतों में पर्याप्त समानता देखने को मिलती है। यह सादृश्य भक्ति काल का विशिष्ट है एवं इस समानता के आधार पर भक्ति काल की कुछ विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

1. भक्ति भावना की प्रधानता : भक्ति भावना मोक्ष प्राप्ति के एक मात्र साधन के रूप में प्रवाहित होती रही जिससे संतए सूफी तथा सगुणोपासक भक्तो ने गहराई तक उतरकर इसकी अनुभूति की तथा दिव्य व अलौकिक सत्ता का साक्षात्कार कर जन कल्याण हेतु प्रस्तुत भी किया।
2. नामस्मरण की महिमा : निर्गुण और सगुण दोनों ही भक्तों ने नाम की महत्ता को अंतर्मन से स्वीकार कर उनका गुणगान किया। कबीर ने नाम स्मरण के समान उत्तम अन्य कोई मार्ग नहीं माना तो सूर भी ईश्वर नाम पर ही विश्वास रख आगे बढ़े तथा तुलसी ने तो राम नाम को ही अधिक महत्व दिया।
3. गुरू महत्व : समस्त भक्त कवियों ने माना कि बिना गुरू के सानिध्य प्राप्त हुए कोई भी मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता तथा गुरू की महत्ता पर सर्वाधिक बल भी दिया क्योंकि गुरू ही अपने ज्ञान और अनुभव के आधार पर अपने शिष्य को परम तत्व पर पहुंचाने में सहायक होता है। तुलसी ने रामचरित्र मानस के प्रारम्भ में ही गुरू की महिमा का गुणगान कर लिखते हैं–

   बन्दौ गुरू-पद-कंज, कृपा सिंधु नर रूप धरि
   महामोह तम-पुंज, जासुवन रवि कर निकरि।

   ठीक इसी प्रकार कबीरए जायसी इत्यादि ने भी गुरू की महिमा का वर्णण अपने-अपने अंर्तभाव द्वारा किया है।
4. सत्संगति की महिमा : भक्त कवियों का मानना था कि सत्संगति मानव मन के दोषों को दूर कर सद्गुण व सद्भावनाओं का विकास करती है अतः इन्होंने सत्संगति पर विशेष जोर दिया तथा 'संतकवि कबीर' लिखते है :

   ''कविरा संगति साधु कीए हरे और की व्याधि।
   संगति बुरी असाधु की आठो पहर उपाधि।।''

5. अहंकार का त्याग : समर्पण के मार्ग पर चलने के लिए अहंकार का त्याग आवश्यक है क्योंकि बिना समर्पण के भक्ति संभव नहीं है यह सभी भक्त कवियो द्वारा मान्य रहा इत्यादि।
6. ज्ञान का महत्व : भक्ति काल के कवियो ने शास्त्रो से प्राप्त ज्ञान को अधिक महत्व न देकर निजी अनुभव द्वारा प्राप्त ज्ञान को ही अधिक महत्व दिया। निर्गुणवादी कबीर कहते है–

   ''पढ़ि जग मुआए पंडित भया न कोय।
   ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पण्डित होय।।''

   ठीक इसी प्रकार तुलसी दास जी ने भी वाक्य को व्यर्थ बता लिखते है–''वाक्य ज्ञान अत्यंत निपुण, भव पार न पावै कोई।''

7. लोक संग्रह : इस काल के समस्त कवि पारिवारिक जीवन व्यतीत करने वाले थे लेकिन योगी नहीं। इस कारण उनके काव्यों में जीवनानुभवों का समग्र चित्र प्रस्तुत किया गया है जिसमें लोक संग्रह की भावना विद्यमान है। ये समाज से अलग न रह कर उसी समाज में वैयक्तिक साधना पद्धति की अपेक्षा सामाजिक साधना पद्धति पर अधिक बल देते थे जैसें- राम भक्त तुलसी का समस्त काव्य भले ही राम के चरित्र को आधार बना कर लिखा गया हो किन्तु फिर भी वे महाराज दशरथ के राजमहल के साथ-साथ समाज के प्रत्येक वर्ग को साथ लेकर चले है। यह सब लोक संग्रह को ही दर्शाता है इत्यादि।

अतः इस प्रकार उपरोक्त विवेचन द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि भक्ति काल में सगुण और निर्गुण दोनों ही धाराओं द्वारा भक्त कवियों ने कुछ समतुल्य तथ्यों को अपनाकर भक्तिकाल जीवन मूल्यों एवं भारतीय संस्कृति का उद्घोष संगीत माध्यम द्वारा किया तथा उपरोक्त सभी विशेषताएँ भक्तिकाल के अन्तर्गत समानभाव में प्रवाहित होती रही इत्यादि!

थाती

कजरी विकास की उर्वरा भूमि

मन्नू यादव

लोक परम्परा में मीरजापुरी कजरी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। मेघ के फुहारों के बीच बाग-बगीचों, खेत-खलिहानों, नगर-कस्बों मीरजापुर की गलियों में बरबस आज भी सुनाई पड़ते हैं। इसलिए एक कहावत अति प्रसिद्ध है, 'लीला रामनगर क भारी, कजरी मीरजापुर सरनाम'। यही है सर्वाधिक उवर्रा भूमि जिसे मीरजापुरी कजरी के नाम से ही न केवल देश बल्कि विदेशों में भी इसकी चर्चाएँ होती रहती हैं। कजरी के गीत आज भी पाश्चात्य संस्कृति के अन्धाधुन-प्रयोगों पर भारी पड़ते दिखाई देते हैं। लोक विद्वानों के अनुसार मीरजापुरी कजरी की मिठास का प्रवाह पूर्वी उत्तर प्रदेश के अतिरिक्त अन्य प्रदेशों में भी हुआ है। बिहार के पश्चिमी जिलों सहित छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, झारखण्ड के समीपवर्ती इलाकों, दिल्ली, राजस्थान, हरियाणा, उत्तराखण्ड में इसे झूलागीत अथवा ऋतु गीत के रूप में मान्यता प्राप्त है। 'मीरजापुर कइला गुलजार हो कचउड़ी गल्ली सून कइला बलमू' इस लोक विख्यात पंक्ति का अभिप्राय एक क्रांतिकारी को अंग्रेजों ने मीरजापुर से काले पानी भेजा था जो काशी बनारस के कचौड़ी गल्ली का निवासी था। उसकी प्रेयसी उसे खोजते-खोजते मीरजापुर आयी थीं। अपने पति रूपी प्रेमी के पीड़ा को वह सहन नहीं कर सकी और विरक्ति में कजरी का गायन किया तब से यह पंक्ति पूर्वांचल में आज तक प्रसिद्ध है। मीरजापुर की महत्ता को यह पंक्ति बखूबी बयाँ करती हैं। मीरजापुर एक ऐसा जिला है जहाँ भोजपुरी, अवधी दोनों बहने आपस में गले मिलती हैं। इन दोनों बोलियों में यहाँ कजरी गायन किया जाता है। मीरजापुरी कजरी की एक अलग पहचान है और इसे संरक्षित रखने के लिये स्वयं यहाँ की प्राकृतिक छवि है, नदी, नालो, खोहों, पहाड़ों, गिरि, कन्दराओं, गावों, कस्बों तथा माँ विन्ध्यवासिनी के चरणों से स्व प्रवाहित रसधारा आज भी अमरत्व को प्रदर्शित करती है। यहाँ शायरी कजरी, अखाड़े की कजरी, दुनमुनिया कजरी, नारी प्रधान सौन्दर्य, विरह के अनेकों बोल आज भी सुनने को मिलते हैं, जैसे-विरह में व्याकुल नायिका अपने पति को पाने के लिए यह कजरी गाती है। रिमझिम बरसै लगल सवनवाँ, कहिया होइहैं मिलनवा ना, वही वह पावस की खुशी में भींगते हुए गाती हैं। छम छम बाजै ले पैजनिया नथुनी, सरसे गिरै ओढ़नियाँ भीगै सारी बदनिया ना, हमारी लोक परम्परा में यह गायन शैली लोकरंजकता की अद्भूत झाँकी मीरजापुर के हर घरों में देखने को मिलती है। नागर क्रान्तिकारी की याद में देखे एक दूसरी पंक्ति– 'सबकर त नइया जाला काशी औ विशेसर रामा–हरे रामा नागर नइया जाला काले पनियाँ रे हरि।'

मीरजापुर का सबसे गहरा रिश्ता काशी से है। कजरी के अखाड़ों में बनारस की कजरी का स्थान भी अति महत्त्वपूर्ण देखा जाता है। दोनों शहरों और गांवों के बीच अखाड़े बाजी के कजरी दंगल आज भी आयोजित होते हैं। हिन्दी जगत के प्रसिद्ध साहित्यकार ष्बदरी नारायण चौधरी प्रेमधन ने मौलिक कजरी गीतों की रचना कर जहाँ मीरजापुरी लोकसंस्कृति में लुप्त होने से बचाया, वही छायावादी रचनाकार हिन्दी साहित्य के अप्रतिम हस्ताक्षर भारतेन्दु

हरिश्चन्द्र जी ने काशी की महत्ता को स्थान देते हुए अनेक कजरी गीतों को हिन्दी जगत में स्थापित किया था। मैं अपने बचपन से आज तक यह देखते आ रहा हूँ, कि सावन, भादों में आज भी मीरजापुर व बनारस में चौराहों पर कजरी के जागरण होते हैं कहीं औरतें रतजगा करती हैं तो कहीं पुरुष ढ़नमनियाँ कजरी की गोल-गोल घेरे में युवक युवतियाँ, पुरुष व महिलायें कजरी की मस्ती में दिखाई देती है। कजरी की स्वर लहरियों से पूरा काशी प्रान्त झूमते नजर आता है।

इस लोकपरम्परा में तेजी से गिरावट भी आयी है। पहले जो हुजुम चौवारों पर, चट्टीयों पर, चौफालों पर होती थी वह आज टीवी के साथ चिपका रहता है। फिर भी मीरजापुर, बनारस, जौनपुर, सोनभद्र, चन्दौली में कजरी के आयोजन आज भी होते रहते हैं। यही हैं इस लोक परम्परा की महान गायन शैली कजरी की सबसे उवर्रा भूमि। हरि हरि, हरे रामा, रामा हो। सावरिया, रे हरि, ना, ना हो, के टेक के साथ मीरजापुरी.कजरी के कुछ बोल बरबस गैर हिन्दी भाषियों को भी अपनी ओर बेहद आकर्षित किया है। राष्ट्रीय आयोजनों में एक मीरजापुरी कजरी गीत की अवश्य माँग इसकी सार्वभौमिकता में बड़ा महत्त्व प्रदान करता है।

भगवान बावन जी ने राजा बलि से दान में मात्र तीन पग धरती माँगी थी। प्रथम चरण जिस स्थान पर पड़ा वह प्राचीन इतिहास में चरणाद्रि गढ़ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। आज उस स्थल को चरणाट या चुनार गढ़ के नाम से जाना जाता है। माँ विन्ध्यवासिनी की पूज्य स्थली तथा पुण्य गंगा, माँ शलिला इस स्थल की चरण पखारते हुए काशी की ओर प्रवाहित होती हैं। 'सात नदी सत्ताइस नाला जेकर जल जरगो में जाला' इस लोक कहावत का प्रवाह भी माँ गंगा में चुनारगढ़ के किले के पूर्व दिशा से स्पर्श कराते हुए उत्तर गंगा में जाकर मिल जाता है। यही चुनार परिक्षेत्र है जहाँ कजली का सबसे प्राचीन घराने का नाम है सीखड़ का बफ्फत घरानाध्सीखड़ चुनार का हृदय स्थल माना जाता है, इस घराने के शिष्य, भभुआ, बलिया, बनारस, राबर्ट्सगंज, भदोही, जौनपुर आदि जगहों पर बिखरते गये और कजली के सबसे बड़े घराने की शाखा चुनार से लगभग 14 किलोमीटर दूर थी, सहसपुरा में कजरी के लेखकों गायको की लम्बी परिपाटी पैदा हुई। श्याम किशोर सिंह, बाबूलाल सिंह, बटुक महराज आदि बड़े नाम हुआ करते थे। बाबू बद्री सिंह ग्राम.मठना जमालपुर के रहने वाले थे। इनका दंगल बहुत सम्मान से लोग सुनते थे।

बद्री सिंह ने मीरजापुर चुनार का नाम काफी ऊँचाई तक ऊंचा किया। इनसे प्रभावित होकर तमाम बिरहा के आयोजक बिरहा गायकों से मुकाबला भी आयोजित करते थे।

मीरजापुर जनपद में स्थित अहरौरा नामक बाजार अति प्राचीन है। लोगों की मान्यता है कि सीधी, सरगुजा, अम्बिकापुर, विलासपुर से व्यापारी बैलों से सामान लाद व्यापार करते थे, यहाँ की सकरी गलियाँ आज भी देखने को मिलती हैं। यहाँ भी कजरी के मशहूर फनकारों का नाम बड़े ही सम्मान से लिया जाता है। संस्कृति का आदान.प्रदान पुरातन परम्परा के प्रवाह से ऐसा लगता है कि मीरजापुरी कजरी को ही आज के छत्तीसगढ़ में भुजली गीत, वर्षा के गीत का नाम दिया गया है। लोककला मर्मज्ञ डॉद्र सोमनाथ जी तथा डॉ. पी.सी. यादव द्वारा ज्ञात कराये गये स्रोतों तथा अहरौरा बाजार से सिधी, सरगुजा के सम्बन्धों ने इसमें पारंपरिक हस्तान्तरण को गति दिया होगा। प्रायः धान की रोपनी, सोहनी में दोनों अंचलों में कजरी गीत का प्रचलन था जो आज के व्यावसायिक अथवा तकनीकि कृषि के कारण शून्य प्रतीत होता है। भगवान श्रीकृष्ण से जुड़ी तमाम किमबदंतियों मे मौखिक परम्परा के विभिन्न बोल में बार.बार कृष्ण के पर्यायवाची नामों का प्रयोग एक प्राचीन लोक.परम्परा का मौखिक साक्ष्य है। डॉ. शान्ति जैन जी ने अपनी पुस्तक 'कजरी' में यह लिखा है कि 'कुछ विद्वान कजरी के जन्म का सम्बन्ध मीरजापुर, बनारस में प्रचलित शक्ति पूजा या गौरी.पूजा से मानते हैं। वैष्णव धर्म वाले इसे विशेष रूप से कृष्ण.उपासना या लावनी से जोड़ते हैं।

वैष्णव धर्म के प्रवर्तक ष्वृष्णि' नामक यदुवंशी के द्वारा स्थापित यह सम्प्रदाय भगवान श्री कृष्ण के पूजा में धूम-धाम से गायन करता है। जैसे पूर्वांचल तथा पश्चिमी बिहार में यादवीय लोक आयोजनों में भी श्री कृष्ण पूजा (कराहा) एक महत्त्वपूर्ण पूजा आज भी की जाती है। इस पूजा के उपरान्त बिरहा एवं कजरी के मुकाबले भी, आयोजित किये जाते हैं। कजरी गायन शैली का उद्‌गम एवं विकास का लिखित साक्ष्य तो नहीं है परन्तु मौखिक इतिहास में महाभारत काल की लोक-परम्परा कृषि जीवी संस्कृति एवं ग्रामीण पृष्ठभूमि के विविध रूप में कजरी आज भी विद्यमान है। हिन्दी साहित्य के तमाम विद्वानों ने इसे अपने-अपने ढंग से लोक साहित्य का अंग माना है, देखें—गोस्वामी तुलसीदास जी की पावस ऋतु का सूक्ष्म वर्णन जो 'कजरी' को किस प्रकार इंगित करती है। घन घमण्ड नभ गरजत घोरा प्रिया हीन डरपत मन मोरा।

काशी की विद्वत् परम्परा में गोस्वामी तुलसीदास जी के अनुसार, उमड़े कजरारे, बादलों की गर्जना से पूरा ब्रह्माण्ड थर्रा रहा है, एक प्रियतमा ऐसे में घबरा रही है डरकर काँप रही है क्योंकि वह प्रियतम हीन है। अर्थात् उसके पति परमेश्वर घर पर नहीं हैं। ऐसे में वह आज भी काफी डरी हुई हैं।

काशी में तुलसीदास जी गंगा के तट पर निवास करते थे, आज भी उनके नाम पर तुलसीघाट नामक एक घाट है तथा काशी के यादवीय परिवेश में उनके नाम पर एक कुश्ती का अखाड़ा है जिसका नाम तुलसी अखाड़ा है, भारत माता मंदिर के अन्तिम पेशराज बाबू निरहू सरदार उसी अखाड़े के उस्ताद हुआ करते थे जिनके अखाड़े से कई राष्ट्रीय स्तर के 'मल्ल' काशी का नाम रौशन किये। नाग पंचमी के दिन जहाँ दिन में पहलवानों के दाँव पेंच का प्रदर्शन होता है वहीं रात्रि में कजरी व ढुनमुनियाँ कजरी के अखाड़ों के गायक-गायिकाओं का भी दंगल आयोजित किये जाने की परंपरा आज भी देखने को मिलती है। मिर्जापुर कइला गुलजार हो, कचउड़ी, गली सून कइला बलमू' यहाँ स्थानीय पुट दो अतिप्राचीन शहरों की संस्कृति को जोड़ता है, मिर्जापुर कइला गुलजार हो, कचउड़ी, गली सून कइला बलमू, जनश्रुतियों से ज्ञात होता है कि यह कजरी गीत 1857 की क्रान्ति के काल में काशी (बनारस) के कचौड़ी गली मुहल्ले के गुण्डा नागर से जुड़ी रोचक तथ्य से है। नागर की प्रेमिका कोई गौहर जान नाम की तवायक थी, नागर को जिला बदर कर बनारस से मिर्जापुर अंग्रेजों ने भेज दिया, वहाँ नागर क्रान्तिकारियों की मदद करने लगे तथा खुद क्रान्ति में कूद पडे। यह जान अंग्रेजों ने नागर का जिला 'बदर' से काले पानी की सजा देकर पानी वाले जहाज से रंगून भेज दिया। इधर गौहर जान अपने जिला बदर प्रेमी को खोजते-खोजते मिर्जापुर शहर आई, जहाँ उसे पता चला कि उसके सच्चे प्रेमी को अंग्रेजों ने काले पानी की सजा देकर रंगून जेल में विदेश भेज दिया है। यह विरक्ती गौहरजान सहन नहीं कर पाई और बिरह वेदना में उसके मुख से स्फुटित कजरी आज अमर हो गई, वह कह रही है मेरी कचौड़ी गली सूनी है जहाँ नागर के नाम की तूती बोलती थी। मिर्जापुर में नागर की वाहवाही देख गौहर कह रही है यहाँ क्रान्ति में नाम गुलजार कर गये और पापी अंग्रेज मेरे दिल के टुकड़े को पानी के जहाज से रंगून भेज दिये, ये नागर देख तेरी सच्ची प्रिया कितनी सींक जैसे पातर यपतलीद्ध हो गई है। गलकर नून हो गई है, तूं देश में नाम कर गया है। मेरे हाथ में यदि तलवार होती तो मैं अंग्रेजों का खून कर देती, यह तड़प, पीड़ा, बिछुड़ने का दर्द उपरोक्त कजरी में है।

कुछ विद्वानों के मतानुसार कजरी का नामकरण सावन के काले-काले बादलों के कारण पड़ा (लेखक की परिभाषा में यही तथ्य है)।

भारतेन्दु जी के मतानुसार मध्य प्रदेश के दादू नामक प्रसिद्ध जनप्रिय राजा की मृत्यु के पश्चात वहाँ की स्त्रियों में जो धुन गायी उसका नाम 'कजरी' पड़ा।

कुछ विद्वान कजरी वन से भी कजरी गीत का सम्बन्ध जोड़ते हैं।

पं. बलदेव उपाध्याय जी के मतानुसार आज की कजरी प्राचीन लावणी की ही प्रतिनिधि है।

कजरी 'उत्तर प्रदेश का सर्वप्रिय लोकगीत है परन्तु मध्य प्रदेश में भी कजरी गाने की प्राचीन परम्परा है। कुछ विद्वानों ने कजरी के उद्‌भव पर विचार करते हुए मध्य प्रदेश तथा समीपवर्ती हिन्दी भाषी प्रदेशों की सीमा तथा मध्य भारत को कजरी की उर्वरा भूमि कहा है।

तमाम विद्वानों के विचारों को देखने परखने के बाद आप यह अच्छी तरह जान पायेंगे कि कजरी गायन विधा की मूल मिट्टी वह भारत की कृषि जीवी संस्कृति की गर्भ भूमि पूर्व का सीमान्त प्रान्त आज का उत्तर प्रदेश ही है। इसका प्रमाण किसी भी भाषा, संस्कृति, राग, लय, बोल, तुक का स्थानीय बोली भाषा में बार.बार प्रयोग होना यह सिद्ध करता है। माँ विन्ध्यवासिनी के धाम से लगायत-पूरब-पश्चिम-उत्तर दक्षिण चारों दिशाओं में कजरी गीतों का मौखिक प्रमाण यही दर्शाता है। मेरी व्यक्तिगत मान्यता इस तथ्य को सर्वाधिक प्रमाण देती है। दादू राजा के कार्य की चर्चा भारतेन्दु जी करते हैं जो मध्य प्रदेश के राजा थे। वहाँ भी कजरी छत्तीसगढ़ विलासपुर अचल में भुजली के रूप में, कजरी बिहार मैथिली में सावनी-झूला गीत के रूप में, कजरी राजस्थान में हड़ौती तथा उत्तराखण्ड में भी कजरी ये रूप भारत के खण्ड-खण्ड में रची बसी लोक संस्कृति के विविध आयामों में इसके विभिन्न रूप ही इसकी मौखिक प्रमाणिकता के साक्ष्य हैं। यानी वर्षा काल में यह लोक विधा खासकर भारत के हिन्दी भाषी प्रदेशों में किसी न किसी रूप में गायी जाती रही है।

मेरे अध्ययन के उपरान्त कजरी की परिभाषा इस प्रकार हो सकती है ''माँ विन्ध्यवासिनी की कालरात्रि पूजा के आवरण काजल के समान कपालिनी रूप को निरखते हुए बादलों जैसी काली घटाओं के आवरण के मध्य पूजित मातृ रूप तथा पूजा की विधि में नारी राग की काज्जल स्वरूप ही कजरी की गायन शैली के सन्दर्भ में लोक मान्यता के अनुसार कजरी कहते हैं। यह माँ के सप्तमी स्वरूप को इंगित करते हुए स्वरों की स्फूटन धारा है जो कालान्तर में कजरी के नाम से आज भी प्रसिद्ध है।''

''संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर के लेखक/सम्पादक रायचन्द्र वर्मा, पृ. 155 पर कजरी के शुद्ध उच्चारण कजली संज्ञा स्त्री लिंग का एक शब्द है जिस संस्कृत में काज्जल तथा देशज अर्थ में कालिख से सम्बोधित करते हैं। इस शब्द के कई अर्थों के बाद छठे शब्द के रूप में कजरी के विषय में ज्ञात कराते हैं कि कजली अर्थात् कजरी एक बरसाती त्यौहार है। कजरी एक प्रकार का गीत है जो बरसात में गाया जाता है।

जहाँ तक मीरजापुर व रामनगर यवाराणसीद्ध का प्रश्न है कि लीला रामनगर के भारी, कजरी मीरजापुर सरनाम् इस पंक्ति का सीधा व साधारण अर्थ है जिस तरह रामनगर की रामलीला प्रसिद्ध है उतना ही प्रसिद्ध मीरजापुरी कजरी की भी महत्ता है। यह तथ्य काफी हल्का है क्योंकि कजरी रामनगर की रामलीला से पूर्व भी रही होगी। रामनगर की रामलीला मात्र लगभग एक सौ पचहत्तर साल से हो रही है। एक तथ्य हैं कि पहले रामनगर से निकट मीरजापुर जनपद के मीरजापुर नामक गाँव जिसे छोटा मीरजापुर के नाम से जाना जाता है। वहाँ का एक वणिक परिवार के लोग रामलीला का आयोजन करवाते थे, और महाराजा काशी नरेश आरती लेने के लिए प्रतिदिन आते थे। एक दिन काशीराज को लीला स्थल पर उपस्थित होने में विलम्ब हुआ, प्रतिक्षा के बाद आरती हो गयी राजा आरती नहीं ले सके और वापस हो गये। महाराज को चिन्ता सताने लगी की एक बनिया जब रामलीला आयोजित कर सकता है तो मैं राजा.महाराजा होकर यह काम क्यूँ नहीं कर सकताद्य बस राजा ने ठान ली और रामनगर में स्थान, पात्र, नाम तय कर आने वाले वर्ष में स्वयं आयोजन शुरू किया और आज विश्व प्रसिद्ध रामलीला मानी जाती है।

जनश्रुतियों के अनुसार रामनगर का रामलीला काफी नवीन काल से प्रारम्भ हुई लेकिन कजरी में बार-बार कृष्ण-राधा-गोपी जैसे शब्द इसे मौखिक रूप से महाभारत काल से जोड़ता है, रही बात कजरी के उवर्रा भूमि की तो वह है मीरजापुर के पारंपरिक अखाड़े और अखाड़ों की कजरी और इसके गुरु शिष्य परंपरा का संवहन का काल साहित्य, वर्ण

विषय तथा मान्यताएँ मौखिक रूप से सनातन सन्दर्भो को लिखित रूप देने का मौखिक प्रमाण लगभग 200 वर्षों से पाना प्रतीत होता है, मीरजापुर की जनसंख्या को ध्यान में रखें तो कजरी के घरानों, लेखकों, गायकों में कृषक समाज के कुर्मी बिरादरी का वर्चस्व रहा है। जिसमें प्रमुख रहे, बद्री सिंह, श्याम किशोर सिंह, बाबुलाल सिंह, विश्वनाथ सिंह, आदि बड़े नामों के अलावा वाराणसी के कुर्मी बाहुल्य क्षेत्रों में आसि पटेल, हरिनंदन पटेल, सीमा पटेल तथा अनगिनत नाम पटेल यकर्मीद्ध समाज से आते रहे हैं। वहीं अहीर, तेली, नाऊ, गड़ेरिया व अति पिछड़ी जातियों के साथ-साथ कुछ एक कलाकारों की सूची में सर्व समाज के नाम भी हैं। जैसे, बटुक महराज, घट्टर मिसिर, पं. शिवदास तिवारी, उर्मिला श्रीवास्तव, अजिता श्रीवास्तव, आदि नाम आते हैं। कजरी के साथ सर्वधर्म समभाव की गंगा जमुनी संस्कृति के उदाहरण स्वरूप बफ्फत खलीफा, करमुल्ला, जमीरन, मसीउल्ला, दिलमहमद, खुदा बक्स तथा वर्तमान में रोजन अली कजरी लोक गायन शैली की परम्परा का बखूबी निर्वाहन कर रहे हैं। मुस्लिम समुदाय के गायकों तथा कवियों ने कजरी की मान्यताओं व मूल्यों को हिन्दूओं से कन्धा से कन्धा मिलाकर चलने का कार्य किया है। जैसे मंच की पूजा, आराधना, वन्दना, पोशाक, सब सनातन धर्मी रूप में ही करना, एक बड़ी परम्परा का पोषक तत्त्व कजरी के गायकों में दिखती रही है। लगभग 50 वर्षीय रोजन अली अपने कजरी गीतों में हिन्दू गणवेश में ही गाते आपको दिखेंगे।

कजरी के उस्तादों में बफ्फत खलीफा का नाम बड़े ही आदर के साथ लिया जाता हैं। यूँ कहें मीरजापुर व वाराणसी घरानों में सीखड़ का बपफत घराना कजरी का पर्याय माना जाता रहा है।

आज के वर्तमान को देखें तो कजरी साम्प्रदायिक सद्भावना एवं एकता का प्रतीक गीत है। इसमें खासकर दोनों सम्प्रदायों का सम्मिश्रण रहा है। अतः कजरी राष्ट्रीय एकता को बल प्रदान करने वाली लोक गायन शैली के रूप में भी जानी जाती है।

चंबा जनपद की प्रमुख लोक गाथाएं एवं मेले

छविंदर कुमार

अनुसंधित्सु ए पीएचडी हिंदी

केंद्रीय विश्वविद्यालय धर्मशाला, जनपद कांगड़ा हिमाचल प्रदेश

हिमाचल प्रदेश अपनी समृद्ध संस्कृति व विरासत के लिए प्रसिद्ध है। इस प्रांत को देवभूमि नाम से भी जाना जाता है। यहां का मानस जीवन देव परंपराओं के अनुसार ही चलता है। देव संस्कृति और लोक संस्कृति का यहां अनूठा संगम देखने को मिलता है। हिमाचल प्रदेश में साठ के दशक तक वर्ण व्यवस्था के अनुरूप कार्य क्षेत्र को प्राथमिकता दी जाती रही है। इसका सीधा असर ग्रामीण वादियों में कृषि पर देखने को मिलता था। सभी वर्ण के लोग मिलजुल कर खेतीबाड़ी का काम करते थे। मेले, त्योहारों, उत्सवों तथा खुशियों के अवसरों पर हर वर्ग के लोग आबंटित कार्य के आधार पर अपना-अपना दायित्व निभाते रहे हैं। इसी कारण मूल रूप से हिमाचल प्रदेश की लोक संस्कृति समृद्धि के स्तर पर पहुंच पाई। हिमाचल प्रांत के चंबा जनपद के लोकगीत अत्यंत मधुर, आनन्द दायक और लयात्मक है। इन लोकगीतों की झंकार खेत-खलिहान से लेकर अरण्यों, मेलों एवं अनेकों पर्वो सभी में सुन सकते है। इन लोकगीतों एवं गाथाओं का विषय सामान्य जीवन से लेकर इतिहास धर्म-पुराण सभी से संबंधित होता है। सामान्यतः गाए जाने वाले लोकगीत, प्रेम गाथाओं, शौर्य गाथाओं, देव स्तुतियों, ऋतु प्रभात और सामाजिक बंधनों, उत्सवों इत्यादि से संबंधित है। हर्ष और विषाद दोनों की इसमें अनुभूति होती है। ये लोकगीत एकल, युगल या सामुहिक रूप में गाए जाते हैं। इनके रचयिता कोई संगीत विशेषज्ञ नहीं बल्कि किसी सरस हृदय से निकली स्वच्छंद लयात्मक आवाज है जो संगीत के सभी नियमों को तोड़कर मन की तारों को झकझोरती है। किसी विशेष उत्सव, त्यौहार या मेले में गाते समय स्थानीय वाद्य यंत्रों का गायन के साथ प्रयोग किया जाता है। यहां अधिकांश लोक गाथाएं पौराणिक है और इनका संबंध समृद्ध संस्कृति व धर्म से है। इसके अलावा प्रेम विषयक गाथाओं का भी बहुत बड़ा भंडार पाया जाता है। इन गाथाओं में करूण और वीर रसों की भरमार है। ये घटना प्रधान गाथाएं जो सत्य पर आधारित है और इनका अपना साहित्यिक तथा सांगीतिक महत्व है। इन गाथाओं में जैसे कुंजू-चंचलो प्रमुख हैं। यह गाथा चंबा जनपद की भटियात तहसील से संबंधित है, जिसमें कुंजू एक बहुत ही समृद्ध परिवार से संबंधित था और चंचलो जो कि देखने में सुशील थी, एक दरिद्र परिवार से ताल्लुक रखती थी। इन दोनों को परस्पर प्रेम हो जाता है और मिलने लगते हैं। पुरातन संस्कृति के अनुसार कुंवारी लड़की का संबंध किसी युवक के साथ होना एक अपमान जनक घटना थी। गांव के लोगों को इस बात का पता चलते ही उन्होंने इसको गांव का अपमान समझकर कुंजू को जान से मारने की धमकी दे डाली। चंचलों ने लोगों में प्रतिशोध का भाव देखकर कुंजू को समझाया कि जब तक प्रतिशोध की अग्नि शांत न हो जाए तब तक आप दूसरे गांव चले जाओ ताकि आपकी जान बच सके। चंचलों के कहने पर कुंजू ने भी ऐसा ही किया। कुछ दिनों पश्चात कुंजू सेना में भर्ती हो गया। दूसरे परिजनों ने लोकलाज के भय से

चंचलो के विरोध के बावजूद भी उसका विवाह हठ करके एक ग्रामीण युवक से करवा दिया। इसके बावजूद भी चंचलों का अंतर्मन कुंजू के स्नेह पाश में था और उसी तरह कुंजू का मन भी चंचलों के सुंदर नयनों में वासित था। लोक गाथा के अनुसार जब कुंजू को पता चला कि उसकी प्रेमिका चंचलो का विवाह किसी अन्य युवक से कर दिया गया है तो वह चंचलो की तलाश में भटकता हुआ उस पनघट पर पहुंच गया जहां चंचलो वस्त्र प्रक्षालन करती हुई अपने बाल्यावस्था के प्रेमी कुंजू के वियोग में विरह के अश्रु बहा रही थी। कुंजू ने जाकर प्रेयसी के दर्शन किए और चंचलो ने मानसिक उद्वेग में अपने बाजू में पहने चांदी के चूड़े तोड़ दिए। इसी समय कुंजू ने चंचलो को चांदी का चूड़ा प्रेम उपहार स्वरूप स्मृति चिन्ह दिया और उसकी आंखों से ओझल हो गया। इस मार्मिक लोक गीत के स्वर इस तरह से है ....

''कपड़े धोआं कन्ने रोआँ कुंजूआ,
बिच बटण नसाणी हो हाय
मेरिये जिंदे, बिच बटण नसाणी हो,
बटणे दा गम मत करे चंचलो,
चंबे चांदी बथेरा हो हाय!
मेरिये जिन्द चंबे चांदी बथेरा हो...
दूर-दूर कजो मते रैंदा कुंजूआ,
तेरे दिले बेईमानी हो हाय!
मेरिये जिंदे तेरे दिले बेईमानी हो...''

अर्थात—चंचलो कुंजू को कहती है कि तू मेरे से दूर क्यों रहता है, मैं सब जानती हुं तेरी दिल में मेरे लिए जगह नहीं है, प्यार नहीं है। तब कुंजू कहता है मैं ता दूर, दिल तेरे पास चंचलो, लगी प्रीत नभानी हो—हाय! मेरिए जिंद लगी प्रीत नभानी हो।''

कुंजू कहता है कि मैं भले ही दूर रहता हुं लेकिन दिल तेरे पास ही है। क्या करें यह सब कुछ देखना पड़ता है। (चंचलों कहती हैं ...)

राती ओ बराती मत इंदा कुंजूआ ए बैरी भरियां बंदूका हो... हाय! मेरिए जिंद बैरी भरियां बंदूका हो हाय।

कुंजू—चंचलो से मिलना चाहता है और कह रहा है... कि प्यारी चंचलो मिलणा तो है लेकिन किस जगह पर मिलना है और उसकी क्या निशानी है।

मिलणा जरूर तिज्जो प्यारी चंचलो, तेरी क्या वो नसाणी हो हाय! मेरिए जिंद तेरी क्या निसाणी हो

चंबे—रे चुगाने मेरा डेरा कुंजूआ, बूटा पीपलू नसाणी हो—हाय! मेरिए जिंदे बूटा पीपलू नसाणी हो

अर्थात—चंबा के चौगान में मैं आपसे मिलुंगी, वहां पर पीपल का छोटा वृक्ष है, वही उसकी पहचान है।

अंत में

चंबे मिंजरा दा मेला चंचलो, कहा मिलि-जुलि दिखणा हो! मेरिये जिंदे असा मिलि-जुलि दिखणा हो (चंबा में मिंजर मेला लगता है और वहां पर हम दोनों मिलेंगे।)

यह लोकगीत चंबा में ही नहीं बल्कि पूरे हिमाचल प्रदेश में लोकप्रिय है और लोग आज भी इस गीत की दुहाई देते हुए दिखते हैं। इस मार्मिक गीत का अनुश्रवण कर हर किसी की आंखों से आंसू निकल पड़ते हैं और आज भी उस प्रेमी युगल के मार्मिक प्रणय संबंधों की स्मृति ताजा हो जाती है।

वैसे ही एक अन्य प्रेम गाथा फुलमू और रांझू की है। इसके नायक-नायिका भी चंबा जनपद के गीतों में गाये जाने वाले रांझू और फुलमू है। लड़कपन

का स्नेह क्रमशः परिपक्वता की चरम सीमा पर पहुंच जाता है, किंतु इस हृदय हीन समाज में इतनी सहिष्णुता कहां कि किसी युवा के प्रेम को सफल होने दें। फुलमू चंबा जनपद के बधेरन देहात की

एक रूपवती कन्या थी और रांझू पड़ोसी गांव के एक नंबरदार का बेटा था। रांझू फुलमू के सौंदर्य को देखकर उसकी तरफ आकर्षित हुआ और वह बांसुरी की मधुर धुनों से फुलमू के मन को प्रसन्न व सुकून देता रहता था। काफी समय तक यह चलता रहा। कुछ समय पश्चात् इनके प्रेम प्रसंग से पर्दा उठा और चारों तरफ गांव में चर्चा होने लगी। घर में प्रतिष्ठित खानदानी नंबरदार ने पुत्र को समझाने का यत्न किया और समझाया कि इस लड़की से विवाह करना हमारे खानदान के खिलाफ है व इससे सब जगह बेइज्जती होगी और हम कहीं पर भी मुंह दिखाने लायक नहीं रहेंगे। पिता ने बहुत समझाया लेकिन ये दोनों तो परस्पर आकर्षित थे और रांझू ने पिता की बात को दरकिनार कर दिया। घर वालों ने जबरदस्ती रांझू का रिश्ता करवा दिया और विवाह की सभी तैयारियां पूरी कर दी गई। फुलमू की सखी पड़ोसन ने सब कुछ उसे बता दिया कि ऐसे-ऐसे हो गया है। यह सब जानकर फुलमू ने वियोग में घर पर खुदकुशी कर ली और सच्चे प्रेम की साकार मूर्ति सदा के लिए टूट कर बिखर गई। अगले रोज जब रांझू की बारात रास्ते से निकल रही थी और उसे मालूम हुआ कि ऐसे हो गया है, फुलमू अब नहीं है एवह मर चुकी है। कुछ ही देर पश्चात फुलमू की अर्थी उसी रास्ते से होकर गुजरी जिस रास्ते से रांझू की बारात निकल रही थी। दोनों का आपस में मिलन हुआ ए यह दृश्य कितना हृदय स्पर्शी रहा होगा विचारणीय है। रांझू को सब मालूम हो गया था कि यह अर्थी फुलमू की है तो वह भी तड़पता हुआ अपनी पालकी से उतरकर अर्थी के साथ हो लिया। रांझू ने अपने हाथों से फुलमू की चिता बनाई और उसे मुखाग्नि देकर स्वयं उसमें कूदकर अपनी जीवन लीला भी समाप्त कर दी। इसी प्रकार फुलमू–रांझू की काया को राख में तब्दील हो जाने पर इस सच्चे प्रेम का अंत हुआ। यह मार्मिक स्नेह गाथा आज भी चंबा के इतिहास में अमर है। आज भी प्रेमी युगल इस गीत को सुनकर भावुक हो उठते हैं। इस प्रेम कथा पर अनेकों लोकगीत प्रस्तुत हुए हैं और उन्हीं में से एक है हिमाचल प्रदेश के लोकप्रिय कलाकार करनैल राणा जी ने गाया है जो बहुत प्रसिद्ध गीत है।

फुलमू और रांझू का परस्पर संवाद है...

''कुनी जे परोते तेरा ब्याह पढ़ेया, ओ रांझू ब्याह लिखेया ओ! कुन्नी ओ किती कुड़माई ओ रांझू, गल्ला होई बीतियां रांझू उत्तर देते हुए कह रहा है ...'' कुलजे परोते मेरा ब्याह पढ़ेया ओ मेरा ब्याह पढ़ेया ओ ए बापूएं किती कुड़माई फुलमू गल्ला होई बीतियां...वारे-वारे रांझू, दी जंज जाए, लोकों जानी जाए! पारे-पारे फुलमू दी लोथ लोकों ए गल्ला होई बीतियां।

रांझू कहता है...रक्खा वो कहारों मेरिया पालकिया ओ, मेरिया पालकिया ओ! फुलमू जो लकड़ी मैं पाणी लोकों, गल्ला होई बीतिया...

बड़ा ही मार्मिक चित्रण यहां पर है.... ''इक्की हत्थे फुलमू जो लकड़ी पाईं लोकों ओ लकड़ी पाईं दूए हत्थे लांबू ते लाया लोकों। गल्ला होई बीतियां ओ ...

यारी नी लाणी इन्ना कच्चेयां कन्ने, लोको कवारेयां कन्ने। ब्याही करी होंदे बेईमान लोकों गल्ला होई बीतियां...

अर्थात किस पुरोहित ने आपकी शादी में मंत्रोच्चारण किया है और किसने कुड़माई की है, कुड़माई कहते हैं वधु के पिता को। रांझू उत्तर देते हुए कहता है कि ... कुल पुरोहित ने मेरा ब्याह पढ़ा है और पिताजी ने कुड़माई की है। सब लोग अब यह जान चुके हैं। रांझू की जब बारात जा रही होती है तो दूसरी तरफ से फुलमू की अर्थी आती है तो वह यह सब जानकर कहता है कि मेरी पालकी को किनारे कर दो, मुझे अपने हाथों उसे मुखाग्नि देने दीजिए। हमें किसी से प्यार का इजहार नहीं करना चाहिए क्योंकि लोग बहुत दुष्ट होते हैं और वो ये सब कुछ नहीं देख सकते तथा धार्मिक रूढ़ियों का सहारा लेकर किसी के जीवन को नष्ट कर देते हैं। ये लोकगीत व गाथा भी चंबा जनपद के साथ.साथ पूरे प्रदेश में लोकप्रिय है। चंबा के फुलमू-रांझू और कुंजू-चंचलो पर चलचित्र भी बन चुकी है।

बर्फ से आच्छादित धौलाधार पर्वत श्रृंखलाओं से घिरे चंबा जनपद में मनाई जाने वाली प्राचीन व पारंपरिक जातरों (यात्रा लोकोत्सवों) में रथ-रथणी की ऐतिहासिक जातरा भी बहुत प्रसिद्ध है। यह जातरा प्रतिवर्ष भाद्रपद मास की पूर्णिमा में हर्षोल्लास से मनाई जाती है। पौराणिक कथा के अनुसार इस जातरा में आशुतोष शिव को वृकासुर से बचाने और वृकासुर को भस्म करने की कथा का मंचन किया जाता है। पुराणों में कहा गया है कि वृकासुर राक्षस ने कठिन तप करके महादेव शिव से अमर रहने का वरदान प्राप्त किया था और इस वरदान से वह राक्षस निरंकुश बन बैठा। एक बार वह पार्वती मां पर ही आसक्त हो गया और अपने आराध्य देव शिवजी पर ही आक्रमण करने दौड़ पड़ा। शंकर महादेव उसके इस तरह के आचरण से बहुत दुःखी हुए और बैकुंठ जाकर विष्णु भगवान से मिले और उनके पीछे वृकासुर भी भागता हुआ वहीं पहुंच गया। ऐसी स्थिति में भगवान विष्णु ने अप्सरा मोहिनी का रूप धारण कर लिया। मोहिनी को देखकर वृकासुर मोहित हो गया और उसके समक्ष विवाह का प्रस्ताव रख दिया। कामुक वृकासुर को 'मोहिनी' ने अपने साथ नृत्य करने को कहा तो उसने तुरंत स्वीकार कर लिया। नृत्य करते-करते वृकासुर भी वैसे ही नृत्य करने लगा जैसे मोहिनी कर रही थी। तभी मोहिनी ने अपने दोनों हाथ अपने सिर पर रखें और वृकासुर ने भी ऐसा ही किया। ऐसा करते ही वह ऊं नमोः शिवायः कहते हुए भस्म हो गया। चूंकि महादेव ने उसे अमरत्व का वरदान दे रखा था कि तू जिसके सिर पर हाथ रखेगा वह स्वतरू भस्म हो जाएगा और न ही तू किसी अन्य के हाथों मरेगा, परंतु अपने सिर पर हाथ रखने से ही मरेगा। यही वृकासुर बाद में भस्मासुर नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस पौराणिक प्रसंग को रथ-रथणी जातरा में एक लोक नाट्य के रूप में पेश किया जाता है। इस दिन चंबा के श्री लक्ष्मी नारायण मंदिर परिसर में मोहिनी की एक बड़ी मूर्ति सजा कर पालकी में स्थापित की जाती है। यही विष्णु रूपी रथणी है। इसी प्रकार नगर के श्रीहरि राम मंदिर में भस्मासुर का रथ सजाया जाता है और इसके पश्चात बकरे की बलि दी जाती है। सूर्यास्त से पहले श्री लक्ष्मीनाथ मंदिर से रथणी की पालकी तथा श्रीहरि राम मंदिर से भस्मासुरी रथ चलते हैं और नगर के बीच चौगान के पास चौराहे पर एक-दूसरे से मिलते हैं। इस मिलन के बाद रथनी को पौराणिक चंपावती मंदिर में ले जाते हैं और भस्मासुर के रथ को नगर में घुमाकर चौगान लाया जाता है। लोग रथ के चारों ओर इकट्ठे होकर वृकासुर के भस्म होने का मंचन देखते हैं तथा बाद में यही लोग रथ पर टूट पड़ते हैं और उसे तोड़ कर इधर-उधर फैंक देते हैं। इसके बाद इसमें लगे सफेद कपड़े को भी लूट जाते हैं। रथ को तोड़ने, लुटने व बिखेरने का यह अनुपम दृश्य देखते ही बनता है। लूटे वस्त्र को लोग प्रसाद रूप में घर ले जाते हैं और पूजा-गृहों में रखते हैं।

हिमाचल प्रदेश को भारत का यदि सांस्कृतिक प्रदेश कहा जाए तो अतिश्योक्ति नहीं होगी और चंबा जिला तो वैसे भी देवघाटी है। यहां के सुप्रसिद्ध मेलों का यदि उल्लेख करें तो इसमें मिंजर मेला संपूर्ण भारत वर्ष में प्रसिद्ध है और अब इसे अंतरराष्ट्रीय मेले का दर्जा दिया जा चुका है।

यह श्रावण मास के दूसरे रविवार से आरंभ होकर अगले रविवार तक चलता है। यह मेला चंबा शहर के संस्थापक राजा साहिल वर्मन के समय में शुरू हुआ था। कहा जाता है कि साहिल वर्मन एक महान पराक्रमी और योद्धा थे और उन्होंने तुरूकश नामक शक्तिशाली कबीलों को पराजित किया था। उनकी वापसी पर लोगों ने उन्हें धान व मक्का की मालाएं पहनाकर अभिवादन किया था जो कि समृद्धि और खुशहाली का प्रतीक है और इसके बदले राजा ने उन्हें सोने की अशर्फियां वितरित की थी। मेले की घोषणा मिंजर के वितरण से की जाती है जो पुरुषों और महिलाओं के पहने पोशाक के कुछ हिस्सों पर रेशम की लटकन रूप में समान रूप से पहनी जाती है। यह लटकन (धान और मक्का) की कटाई का प्रतीक है। जब ऐतिहासिक चौगान मैदान में मिंजर का झंडा फहराया जाता है तब सप्ताह भर का मेला शुरू होता है। पुरुष व महिलाएं दोनों सुंदर चंबयाली वस्त्र पहनकर अपने आपको गौरवान्वित महसूस करते हैं और मेले का आनंद लेते हैं। मेले में सांस्कृतिक संध्या कार्यक्रम, खेल गतिविधियां, व्यापार व चंबयाली पोशाकों इत्यादि की प्रदर्शनियां लगाई जाती है। पहले राजा के कर कमलों से मेले का शुभारंभ व समापन होता था लेकिन अब मुख्य अतिथि करते हैं इसमें मुख्यमंत्री व राज्यपाल मुख्य रूप से होते हैं। मेले के अंतिम दिन चंबा के सारे देवता इकट्ठे होते हैं। 'अखंड चंडी महल' से एक सुंदर जलूस निकाला जाता है जो शहर की सुसज्जित गलियों से निकलता हुआ रावी नदी के किनारे पहुंचता है। मुख्य अतिथि के हाथों में एक नारियल, एक रूपया, एक मौसमी फल और मिंजर जो कि लाल रंग के कपड़ों में बंधे होते हैं को नदी में प्रवाहित किया जाता है और लोग भी हाथों में लिए हुए मिंजर एमक्की के फूल व नारियल को पानी में बहाते हैं। इसमें वरूण देवता की पूजा का भी आभास मिलता है। इस मेले की अपनी एक विशिष्ट पहचान है और चंबा सहित संपूर्ण भारत वर्ष में लोकप्रिय है। इसमें हजारों की संख्या में श्रद्धालु हिस्सा लेते हैं और देवी -देवताओं का आशीष लेते हैं।

शिव पूजा के रूप में मनाया जाने वाला 'नवाला' चंबा के गद्दी समुदाय की समृद्ध संस्कृति का वाहक है और बहुत ही लोकप्रिय है। इस त्योहार को नवाला या नुआला कहा जाता है। यह त्यौहार महादेव शिव से संबंधित है। नुआला का शाब्दिक अर्थ है नौ गद्दियों द्वारा शिव स्तुति, शिव आराधना, शिव महिमा या शिव गुणगान इत्यादि। इसमें नुआला के नौ लोगों को भिन्न-भिन्न काम करने पड़ते हैं। इसमें चार गद्दी पुरुष पूरी रात भोलेनाथ की स्तुति और महिमा गाते हैं, इन्हें बंदे भी कहा जाता है। पांचवां पुरुष रात भर इन चारों बंदों की हर तरह से सेवा करता है। नुआला मनाते समय रात को लोग अपने-अपने घर के एक कमरे में गोबर लीप कर चावल के सुखे आटे से चौकोर मंडल बनाकर शिव पिंडी समाप्त करके शिव-पूजा की जाती है। शिव-पिंडी के सामने गंधम दालों आदि के ढेर लगाए जाते हैं जो कैलाश पर्वत और उसके आसपास की पहाड़ियों को दर्शाते हैं। उसके पश्चात फूलों की मालाएं बनाकर पिंडी के ऊपर छत से लटकाए जाते हैं। पुरोहित यह सारा काम करवाते हैं और नुआला करवाने वाला व्यक्ति शिव पिंडी को भेंट चढ़ाता है। बहुत से लोग तो बकरे की बलि चढ़ाते हैं लेकिन जो लोग वैष्णव होते हैं और हिंसा नहीं करते वे नारियल चढ़ाकर ही संतुष्ट हो जाते हैं। संपूर्ण रात शिव महिमा व सत्संग होता है जिसे कि 'ऐंचली' कहते हैं। फिर गुर या चेले को बुलाया जाता है जो शिव को भेंट चढ़ाते समय 'खेलता' है। प्रश्न पूछे जाने पर वह खेलकर ही उनका उत्तर देता है क्योंकि उसके माध्यम से शिव स्वयं बोलते हैं ऐसा माना जाता है। नुआले का नौवां पुरुष रसोइया होता है जो खाना बनाकर जागरण में शामिल सभी श्रद्धालुओं को भोजन करवाता है। सामूहिक नृत्य गायन और खान-पान पहाड़ों के पर्वों, मेलों एवं त्यौहारों में सर्वोपरि माना जाता है। नुआला चंबा और कांगड़ा के गद्दियों में अत्यंत सशक्त प्रथा है।

अतः हम कह सकते हैं कि ऐसे ही इस प्रदेश को देवभूमि नहीं कहा जाता है। यहां कंकर-कंकर में शंकर महादेव विराजमान हैं। यहां पर हर कोस में

किसी न किसी देवता या देवी मां का वास माना जाता है। यहां के पेड़-पौधे, पशु-पक्षियों सभी में ईश्वर का निवास है। गौमाता की पूजा होती है इतना ही नहीं यहां के लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि बागवानी है तो कृषि से जुड़े हर औजार की पूजा विधि विधान से की जाती है। जल स्त्रोतों जैसे बावड़ियों, कुंओं, तालाबों एवं नदियों नालों की भी पूजा होती है। इन लोक कथाएं, गाथाएं व संगीत के पीछे कोई न कोई दिव्य कथा जुड़ी हुई है। यहां पर सभी मेलें, पर्व व त्यौहार बहुत प्रसिद्ध है और उनकी अपनी अलग विशेषता होती है। देव मिलन और पूजकों का एक साथ इकट्ठे होना बहुत ही सुंदर लगता है। यदि कोई व्यक्ति हिमाचल प्रदेश की संस्कृति की जड़ों तक जानना चाहता है उसे यहां के मेलों त्योहारों व पर्वों को देखना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शर्मा देवराज, हिमाचल अतीत वर्तमान और भविष्य एक झलक
2. शर्मा रूप, हिम दर्पण
3. की. एस. नेगी, एस. टी. आफ हिमाचल प्रदेश
4. सांस्कृत्यायन राहुल, हिमालय परिचय
5. दिलैक गोपाल, विशाल हिमाचल, पृ. सं. 91
6. वही, पृ. सं. 92
7. वही पृ. सं. 93
8. वही, पृ. सं. 94
9. बलोखरा जगमोहन, अलौकिक हिमाचल प्रदेश, पृ. सं. 133
10 वही, पृ.सं. 134
12. वही, पृ.सं. 135
13. वही पृ.सं. 180
14. वही पृ.सं. 181-182

सामायिकी

Role of Music in Indian Economy

Ruma Chakraborty

Research Scholar, Department of Music
Patna University

Music is the soul of any culture and India has had a long tradition of musical ingenuity. Indian music has a great and golden history. The ancient history of Indian music is fundamentally the history of her people, civilization and culture. The continuity of Indian civilization & culture, from the most ancient time up till now, has one of its sources in the geographical configuration of the country. Music that evolved on the Indian soil and was cultured all through ages in diverse ways and forms by the Indian people and nurtured in a religious and spiritual atmosphere, is called 'Indian Music'. If you want to know the gradual embracing segments of the Indian culture, just go through the history of Indian Music, you will get all your answers in an artistic way.

Music has been an inseparable part of daily life in India. It has been considered as the soothing entertainer for the common man. From very beginning, music is always treated as either the 'Marg for Sadhana' or as subject for entertainment. People are not much aware about the commercial aspect of this art. However, after certain span of time, the Indian Music comes in front of the commercial lime-line.

Economic liberalization 1991, transform the Indian Market. Establishment of Securities Exchange Board of India, 1992, strengthensthe markets and boosts the investor's confidence. Now, the question is why I am dealing with all these aforesaid things, i.e. economy, market, investors, and all. Although, prima facie it seems unnecessary and irrelevant in the context of Indian Music, but now a day, it is the immense part of the Indian Music. Indian Music Industry and Indian Music Market playa pivotal role in Indian Economy.

Let's take some example of renowned brand and company in the field of Music Album, Electronic instruments –***"Radel"*** – a renowned and pioneer company in digital electronic Indian musical instruments (which produces electronic Tanpura, Tabla, Swarmandal and many more), catering to the precise and artistic needs of a musician. Their excellent tonal quality has earned them the approval of leading musicians. These instruments are extremely simple to operate, thus they are suitable for use in concerts as well as practice sessions.

- *T-Series, Saregama, Tips Music, Sony, Times Music*, etc. are the companies, whose names are enough

to stand as a big trend for the artist. These music companies, apart from the Film music, release individual albums and songs, and the net worth of these companies show the contribution of the Music Industry in the Indian Economy. A brief discussion regarding the aforesaid companies –

- ***T-Series***, a subsidiary of Super Cassettes Industries is India's leading company. T- Series' ties to Bollywood movie production and the massive popularity of soundtrack sales in India have helped the company maintain its leading position.
- With an estimated market share of 20%, ***Saregama***is the next largest local music company in India. Previously the Indian branch of EMI's Gramophone, Saregama is majority-owned (59.14%) by Rainbow Investments Ltd. As per the 73rd Annual Report of Saregama India Ltd., the consolidated total income is Rs. 53,270.39 Lakhs.

Saregama CARVAAN – Carvaan's annual revenue is greater than the cumulative revenue of all music streaming apps in India. Launched in 2017, it's an audio player with inbuilt speaker and 5,000 pre-loaded songs, allowing customers to listen to their favorite music anytime without any ad breaks. Saregama's flagship product, CARVAAN, is a perfect blend of digital technology and a retro form factor. The embedded songs are selected using data analytics and are classified based on singers, lyricists, music, composers, actors, moods, etc. The product is retailed through 28K+ retail outlets and all leading e-commerce platforms.

- ***Tips Music*** falls in third place, with an estimated market share of 5% in 2016. In contrast to Saregama, Tips registered a dip in music sales in the final nine months of 2016. According to the company, audio revenue stood at Rs. 217.8m, down from Rs. 275.7m in the prior-year period.
- ***Sony*** is the largest of the international majors in India and the second-biggest company overall, with a 25% market share. As per the Global Financial Report-2019, total revenue an operating income by music segment is 849.9 billion.

Economic Impact of Music

India has been home to one of the world's oldest and culturally rich civilizations. Among other things, the country has had a long and illustrious history of creating music across a wide range of genres and languages.

As per the IFPI-GMR 2019 report, India is 15th in the world in terms of music industry size. This is not in sync with India's economic or cultural position in the world, and represents a gap – but also an opportunity to grow. One may note that the music industry's growth is expected to have an amplified effect on growth in the broader economy.

Economic contribution of Music through different sectors –

1. Recorded Music Industry

As per IFPI, Global Music Report – 2019, India's recorded music industry revenue is estimated to be INR 1,068crore. According to Deloitte analysis, the top 12 music labels employ 500-600 people. Thus, at an aggregate level, it is estimated that the recorded music industry directly provides employment to ~1,460 people.

2. TV Broadcasting

The TV industry consumes music in several ways, including dedicated music channels, music based reality shows (such as *Indian Idol* and *Sa Re Ga Ma Pa*), musical TV series or programmes featuring compilations of film music (such as *Chitrahaar, Rangoli of yore*, etc.), commercial jingles, and background scores. According to Deloitte analysis, it is estimated that TV industry generates ~INR 2,850 crore of revenue through music driven content.

3. FM Radio

FM radio is seen to be a cherished source of entertainment, and remains one of the favorites, especially amongst commuters across various age groups. India has more than 381 operational private radio stations, covering more than 106 cities and towns. Music remains the core of the programming for these private radio channels.

As per FICCI Frames report on Media & Entertainment, 2019 – the Radio Industry in India is sized at INR 3,130 crore. According to TRAI Annual Report 2018, it is assumed that the size of the private FM Radio industry in India as a proxy for the revenue of the radio industry that is attributed to music. This is estimated at about INR 2,170 crore.

4. Live Events

Over the past few years, live events have increased in number and frequency, with several new music festivals and concerts emerging on a national and global scale. These events are an amalgamation of music, entertainment and food, with music at their core.

As per FICCI Frames report on Media & Entertainment, 2018 & 2019 and Deloitte Analysis, the revenue generated from such events is estimated to be about INR 1,280 crore. After analyzing the employee-revenue ratio for leading events companies, it is estimate the employment generated by the events industry that is attributable to music to be about 6,010 FTEs.

5. Audio Streaming OTT

Digital audio streaming has been rising on the back of increasing smartphone use and decreasing data costs. In India, more than 4,440 million monthly streams are running across leading audio OTT players (including JioSaavn, Gaana, and Wynk).

According to Deloitte-IMI, Audio OTT economy in India – Inflection Point, 2019, the Industry is currently in investment mode and the funding that Indian Audio OTT companies receive is an indicator of their potential to purchase music. Recent funding/investment/deals include –

- RelianceJio's acquisition of Saavn for USD 104 million, taking the value of the combined JioSaavn (JioMusic + Saavn) to USD 1 billion

- Spotify's India launch (Spotify is the global leader, with revenues in excess of USD 5 billion and market capitalization of over USD 25 billion)
- Xiaomi's USD 25 million invested in Hungama Digital Media Entertainment and the subsequent integration of Hungama's Music streaming service with its Mi Music app.
- Tencent's USD 115 million investment in Gaana
- Launch of Amazon Prime Music (Amazon is amongst the highest valued public companies in the world).

Conclusion:

India is one among the top entertainment markets of the world, and as such plays an important role in trade in music goods. Music Industry has undergone tremendous changes, from the period of audio tapes to CD's and now to digital distribution of Music. The major aspect which affects the Indian Music or we can say which change the scenario of the Indian Music is 'Technological Up-gradation'. All over the world physical sales of music have fallen and digital sales of music have increased. From the aforesaid information, we can conclude that the Indian Music Industry and Indian Music Market have a strong potentiality to play an important role in the Indian Economy and to boost up the Indian Markets with standard market shares.

References:

1. Prajnananand Swami, *'A History of Indian Music'* (Vol. 1)
2. Iyer Padma, *'History of Music'*
3. Saregama India Ltd. (Annual Report 2019-20)
4. Tips Industries Ltd.
5. Sony: Corporate Report 2020
6. IFPI, Global Music Report, 2019
7. TRAI Annual Report, 2018
8. Deloitte Analysis

हिन्दी सिनेमा और स्त्री जीवन

डॉ संतोष

बी.वी.बी महाविद्यालय, बीदर, कर्नाटक

भारतीय सिनेमा हमेशा से भारतीय संस्कृति का परिचायक रहा है। क्योकि सिनेमा ने हमारे संस्कृति के विषयों को उठाकर पर्दे के माध्यम से हमेशा से चित्रित किया है। इसने नए जीवन के उल्लास को और बितते पलों को समेट पर्दे पर जिंदगी जीने की हमेशा कोशिश की है। इन्ही कोशिशों में सिनेमा ने ममता महिमा, भावनात्मक बहन, प्यारी पत्नी और जीवन को निछावर कर देने वाली स्त्री के चरित्र को चित्रित किया है। जहां वो कृध होती है, टूटती है, बिखरती है और कभी संघर्ष के लिए खड़ी हो जाती है। ऐसी है हमारी भारतीय हिन्दी सिनेमा की संस्कृति और उसमे रचने-बसने वाली नारी।

संचार के सबसे सशक्त माध्यम के तौर पर फिल्म का प्रभाव भारतीय जनता (आम आदमी) पर सबसे अधिक पड़ता है इसमें पढ़े-लिखें लोगों से लेकर गरीब व सामान्य जनता तक समिमलित होता है क्यों कि यह दृष्य-श्रव्य माध्यम है। हिंदी सिनेमा का प्रारंभ वैसे तो सन 1931 में ईरानी निर्देशित फिल्म 'आलम आरा' से होती है जिसकों भारत की पहली सवाक फिल्म होने का गौरव प्राप्त है। वैसें भारत में सिनेमा 1896 में बम्बई के वास्टन होटल में प्रदर्षित लूमेर भाइयों के मूल फिल्मों से होती है।

जबसे सिनेमा बनना प्रारंभ हुआ है तबसे भारतीय समाज में नारी जीवन की विडंबनाओं को लेकर कई फिल्में बनाई गई है। जिनमें मुख्य रूप से देख सकते है, वह सिनेमा 'इंदिरा एम.ए' (1934) 'देवदास'-(1935), 'अछूत कन्या' व 'बाल योगिनी' (1936) 'दुनिया ना मानें' (1937), 'आदमी'-(1939), प्रमुख रूप से सम्मिलित है। इस तरह की फिल्मों में नारी जीवन से संबंधित जिन समस्याओं को उजागर किया गया उनमें 'बाल विवाह', 'अनमेल विवाह', 'पर्दा प्रथा', 'अशिक्षा' आदि थें।

हिंदी सिनेमा के संदर्भ में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद यानी सन 1947 के बाद परिवर्तन आया। फिल्मों में व्यावसायिकता वढ़ी और जो विषय सामाजिक होनें चाहिए वह गौण हो गए और इससे जुड़े लोगों का ध्येय सिर्फ मुनाफा व मनोरंजन का रह गया।

50 और 60 के दशक में विमल राय, गुरू दत्त, महबूब खान और राजकपूर जैसे फिल्म बनानें वाले हसितयों नें नारी कें कई रूप पत्नी, मां, प्रेमिका का सही चित्र प्रस्तुत किया। जिसके विषय नारी की आंतरिक हाल और विचारों पर केन्द्रित रही 'मदर इंडिया', 'प्यासा', 'कागज के फूल' और 'मधूमति' जैसी फिल्मों नें यह साबित किया की किस तरह स्त्री अपने 'व्यकितत्व' को जीती है, किस तरह वह खुश रहती है, उनका आंतरिक हृदय क्या कहता है और वह किस तरह समाज और परिवार को देखते हुए कहा पहुचना और

रहना चाहती है। 70, 80 और 90 के दशक में स्त्री पक्ष को लेकर गजब का बदलाव आया जिसनें पर्दे पर ही नारी चरित्रों को नहीं बदला, बल्कि इसनें समाज में पल रहे नारीवादी विचारधारा को भी तोड़ा कि नारी सिर्फ घर की चारदीवारी में रहकर घर का काम-काज और बच्चों को पालनें के लिए होती है।

70 और 80 के दशक के दौरान 'दो बीघा जमीन', 'बूट पालिश', 'जागृति', 'झनक-झनक पायल बाजें', 'सुजाता', 'गाइड', 'उपकार', 'आनंद' इसके अलावा ऋषिकेश मुखर्जी की 'अभिमान' और 'मिली' जैसें फिल्मों नें सामाजिक अंतरद्वंद और किस तरह नारी जीवन जीती है उसका चित्रण किया। उसी फिल्म ने नई सोच कों उजागर किया जहा स्त्री-चरित्र को अपना कैरियर भी प्यारा है। 90 के दशक में जब भारतीय अर्थव्यवस्था कों विश्व अर्थव्यवस्था से जोड़ा गया। भारत में बाजार के उदारीकरण और अर्थव्यवस्था के वैष्वीकरण की शुरुवात होती है। जिससे भारतीय हिंदी सिनेमा में विदेशी कंपनियों की भागरीदारी बढ़ी और भारतीय समाज में हालीवुड की फिल्मों का अच्छा प्रभाव देखकर उसी तरह की तकनीक और शैली का विकास हुआ। बड़े पैमाने पर भारतीय समाज की स्त्रियों पर प्रभाव हिंदी सिनेमा मे भी देखा गया।

भारतीय समाज में जैसे-जैसे अदूनिकता बड़ी और नारी जो हर तरह से शक्ति शाली होगाई तब से सिनेमा में भी नारी का बदलता चरित्र हम देख सकते है। पहले की फिल्में स्त्री जीवन की मुश्किलों और विडंबनाओं को व्यक्त करते हुए उनके साथ बराबरी और अधिक और मनुष्योचित व्यवहार करने पर बल देती थी। जबकि इनके बाद जो फिल्में बनाने लगी उसमे इसनके साथ-साथ स्त्री सबलिकरण पर भी बल दिया गया है। इन फिल्मों में स्त्री जीवन के कुछ ऐसे पहलुओं को उठाया गया है जो की शायद इस तरह से इससे पहल इतने तीखे रूप में नहीं उठाया गया है। इन फिल्मों में गरीबी और भुखमरी में जीने वाली स्त्रियाँ भी है और आभिजात समाज की स्त्रियाँ भी है। इसमें उच्च वर्णीय हिंदू है तो दलित स्त्री भी है और धार्मिक अल्पसंख्यक भी।

इन फिल्मों ने स्त्री जीवन के पारिवारिक और सामाजिक सवालों को ही नहीं उठाया गया है बल्कि राजनीतिक सवालों को भी उठाया गया है। स्त्री जीवन पर केंद्रित कुछ ऐसी फिल्में 'सूरज का सातवा घोड़ा' (1992), 'दामिनी' (1993), 'बेंडिट क्वीन' (1994), 'मम्मो' (1994), 'फायर' (1998), 'सरदारी बेगम' (1998), 'मृत्युदंड' (1998), 'गॉड मदर' (1999), 'हरी-भरी' (1999), 'गजगामिनी' (1999), 'अस्तित्व' (2000), 'जुबैदा' (2000), 'क्या कहना' (2000), 'लज्जा' (2001), 'चांदनी बार' (2001), आदि के नाम लिए जा सकते है। इनके अलावा 'नसीम' (1995), 'जख्म' (1999), 'हमारा दिल आपके पास है' (2000), 'फिजा' (2000) आदि में भी स्त्री जीवन को महत्वपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त किया गया है।

सन 1991 में आई फिल्म लम्हें और हिना नारी संवेदनाओं और चरित्रों की विशेष प्रकार की फिल्म है जिसमें प्रेम तो है पर समझ भी है, जीवन के प्रति जीनें की। सन 1992 में रूदानी और रोजा जैसी फिल्मों ने फिर समाज में स्त्री के चरित्रों और कमजोरियों को उभारा दोनों फिल्मों की स्त्री पात्र लड़ती है, पर समाज और परिस्थितियों के आगें झुक जाती है।

सन 1993 में 'दामिनी' फिल्म जब पर्दे पर आई वहाँ नारी एक सशक्त चरित्र के रूप में उभर कर आती है जहा वह अपनें पति से अलग रहकर भी अपने सम्मान की लड़ाई लड़ती है। समाज में हो रहें अत्याचार के विरूद्ध खड़ी होती है, बेबाक होकर हाथ में फावड़ा लेकर गुंडों का सामना करती है। सन 1995 में 'बाम्बे' फिल्म में एक मुस्लिम स्त्री का हिंदू लड़के के साथ शादी और उससे उपजी दिक्कतों को दर्शाया गया। सन 1997 में 'विरासत' और 'परदेश' जैसी फिल्मों में, फिल्म विरासत में गाव और शहर के मध्य आंतरिक संवेदना का चित्रण किया गया वही परदेश के स्वच्छंद वातावरण में खुद को घुटती, महसूस करती एक नायिका का चित्रण किया गया। सन 1998 और सन 1999 के 'गॉडमदर', 'हम दिल दे चुके सनम', 'ताल', 'हजार चौरासी की मां', 'दिल से' आदि जैसी फिल्मों ने नारी के अनगिनत चरित्र पेश किए जिन्होंने सामाजिक बधनों को कहीं न कहीं तोड़ती दिखती है। इसके साथ फिल्मों में उपभोक्तावादी संस्कृति का विकास हुआ जिसका कार्य सिर्फ और सिर्फ मुनाफा था। "सिनेमा का संसार भी पुरूष वर्चस्व वाला संसार है। यह वर्चस्व

उनके संख्या बल के कारण नहीं बलिक सिनेमा के संसार में जारी मूल्य व्यवस्था के कारण है।

भूमंडलीकरण के कारण में हिंदी सिनेमा की स्त्रियाँ भी अब विश्व स्तर पर जानी जाती है स्वभावतरू उनके चरित्रों में परिवर्तन आया है। समाज में देश से लेकर विदेशी वस्तुओं की उत्पादकता और खपत बढ़ी है इनकी खपत में फिल्मों का भी एक बहुत बड़ा योगदान रहा है। तथाकथित समाज मान्य वर्तन को अमान्य करनेवाले नारी चरित्र फिल्मों से उभरें। फिल्म 'जुबैदा'(2001) जीने की आझादी और स्वयंनिर्णय की क्षमता से दूर नायिका के विद्रोह को दर्शाती है। पिता के अहंकार, समाधान तुष्टी का साधन बनी जुबैदा करियर, विवाह, तलाक का निर्णय स्वतंत्रता से नहीं ले सकती। आसमान का सपना देखनेवाली जुबैदा विद्रोह कर फतेहपुर राजा से विवाह करती है,पर कई शर्तो के साथ। अधिकारलिप्सा, संकुचित प्रथा-परंपरा में उसका दम घुटता है और समझौता न करने की स्थिति में उसकी मौत होती है।

फिल्म 'डोर' (2006) अलग पार्श्वभूमि की औरतों को जोडती है। विधवा, परंपराओं में फंसी मीरा का उत्साह काले घूंघट में दब जाता है।हत्या के आरोप में सौदी में बंदी पति को बचाने, सौदी के नियमानुसार मृतक की पत्नी का माफीनामा लाने जीनत हिमाचल सेजोधपूर आती है। वास्तविकता छुपाकर की गयी जीनत की दोस्ती को धोखा जान मीरा दुखी होती है। मात्र हवेली के लिए ऋण के बदले उसका सौदा करनेवाले ससुरालवालों को छोड, पुरानी परंपराओं से भागकर मीरा जीनत की ओर, जिंदगी की ओर जाती है, जिसने उसे जीना सिखाया।

अभिनय की उत्कृष्टता के मापदंड के बावजूद हिंदी सिनेमा में नारी को भोगवादी और शोपीस की तरह अधिक रखते हुए रूप और मादकता के लिए महत्वपूर्ण माना गया। पुरुष प्रवृत्तिओं को चुनौती देनेवाली प्रथाओं के चलते कुछ नायिकाओं को प्रसिद्धि मिली। 'द डर्टी पिक्चर' (2011) दाक्षिण की अभिनेत्री 'सिल्क स्मिता' के विवादग्रस्त, अल्प जीवन के साथ दर्शकों की अश्लील मनोवृत्ति, पैसे कमाने के अव्यावसायिक तंत्र एवं नारी मनोविज्ञान को दर्शाता है। फिल्मों जगत में नाम कमाने की इच्छुक रेशमा योग्य मार्ग न पाकर सब कुछ दांव पर लगाकर फिल्म के परदे पर बेशरम हो जाती है। किंतु उसकी विद्रोह मौका पाकर समाज की नग्न मनोवृत्ति पर प्रहार करने से नहीं चुकती। व्यावसायिक अपयश, वास्तविक सामाजिक स्तर, व्यसनाधिनता, प्रेम के नाम पर छल और सामान्य नारी की तरह कई सपनें लिए रेशमा अपने जीवन का अंत कर लेती है।

आज नारी साहस से कदम उठाते हुए कितनी ही पारंपारिक श्रृंखलाओं को तोड़ रही है। निश्चितता में ढल चुकी सामाजिक चौखट को भेदकर निकलनेवाली इन स्त्रियों के लिए पुरुष दृष्टिकोण फिल्मों में नजर आता है। बाजारीकरण, नवमूल्यवाद से 'स्टारडम' का प्रभाव आम समाज पर हुआ। जिसे फिल्म 'फॅशन' (2008) में देखा जा सकता है। घर छोड मुंबई आनेवाली मेघना जैसी छोटे शहर की लडकी का समझौतों से भरा फॅशन मॉडेल बनने का सफर, सफलता के बाद अति-आत्मविश्वास, मादक पदार्था का सेवन, भावनाओं की जगह व्यावसायिकता और करियर में पिछड़ने से टूटी मेघना का पिता द्वारा पुनः प्रोत्साहन इस फिल्म की विशेषता हैं। वहीं मॉडेल शोनाली सफलता के बाद पतन से निराश हो मानसिक रूप से बीमार, बेघर, शराबी बन एक दिन मरती है, तो मेघना आत्मविश्वास से रैम्प पर उतरती है।

नारी की जाग्रकता उसकी जीवन को अधिक सुसह्य बनाती है, अन्यथा उसके मन के न्यूनत्व का दुरूपयोग समाज करता है। 'परिणिता' (2005) ललिता के माध्यम से नारी आदर्श की स्थापना करता है। प्रेमी से गहरे प्रेम के बावजूद गरिमा, नैतिकता को महत्व देते हुए वह अपमानित होती है, पर सम्मान हेतु परिस्थिति से नहीं झुकती है।ृलाइफ इन मेट्रोश (2007) की उच्चशिक्षित 'शिखा' परिवार के लिए घर में रहती है। पति की उपेक्षा, उदासीनता से शादी में आई कडवाहट के चलते शिखा एक थियेटर कलाकार की ओर आकर्षित होती है। दोस्ती से प्रेम की ओर बढनेवाले इस रिश्ते में मर्यादा का उल्लंघन

नकरते हुए भी वह खुद को अपराधी मानती है। किंतु मर्यादाविमुख पति को वह आसानी से क्षमा कर देती है। 'अस्तित्व' (2000), 'कॉपरिट' (2006), 'नो वन किल्ड जेसिक' (2011), 'कहानी' (2012), 'चक्रव्यूह' (2012) मातृत्व, न्याय हेतु संघर्ष, नारीजनित प्रतिशोध, पुलिस की अत्याचार, क्रोध की प्रतिक बनती नक्सलवादी नारी, कर्तव्यनिष्ठ नारी, व्यावसायिक किंतु भावना से जुड़ी सोच की कहानी है।

भावनिकता के जगह ॲक्शन को मिलते महत्व ने नायक को महत्वपूर्ण भूमिका दिलाई और नायिका का काम कम से कम कपडों में आकर्षक दिखना मात्र रह गया। भारत में पुरुषप्रधान व्यवस्था के बावजूद नायिकाप्रधान फिल्मों ने समाज को अपनी ओर ध्यानाकर्षित किया। शोषण की अति से विद्रोही बनी, विवाह चौखट लांघकर निज अस्तित्व खोजनेवाली, कलम से लेकर बंदूक, घर से लेकर बार, आँगन से लेकर रैम्प, प्रेम से लेकर प्रतिशोध, न्याय से लेकर प्रतिकार, सुख खोजती, राजनीति के फलक पर चमकती नारी का चित्रण सिनेमा में हो रहे है।

भारतीय समाज में हम नारी सम्मान के बारे साहित्य लिख रहे है, उसे चेतना देने के लिय अनेक सिनेमा बना रहे है, लेकिन आज के संदर्भ में भी स्त्री हालत बहुत नाजुक है। भले ही वो हर क्षेत्र में पुरुष के साथ टक्कर ले रही है, किन्तु कुछ लोगों के संकीर्ण व पुरुषवादी मानसिकता के कारण आज भी भारतीय सभी नारी जात को सम्पूर्ण रूप से सम्मान व स्वतंत्र नहीं मिल रहा है।

संदर्भ

1) हिन्दी सिनेमा के सौ वर्ष-दिलचस्प, भारतीय पुस्तक परिषद 2009
2) सिनेमा में नारी- समीर खान, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, 2017
3) हिन्दी सिनेमा में साहित्यिक विमर्श- डॉ रामा, हंस प्रकाशन नई दिल्ली- 2019
4) भारतीय समाज हिन्दी सिनेमा और स्त्री- सुलभा कोरे, अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद- 2019
5) हिन्दी साहित्य और सिनेमा - डॉ विजय कुमार मिश्र, शिवालिक प्रकाशन, दिल्ली 2021

Music Career in the Post-Globalisation ERA

Dr. Keshavchaitanya Kunte

Asst. Prof. of music, Centre for Performing Arts,
Savitribai Phule Pune University

Abstract

In India, like all other performing arts, music is considered a form of worship, meditation and a path to self-development. In modern times, especially after globalisation, music is no longer just an art but has become an industry of entertainment. This article is written with an academic perspective, to understand the traditional form of music as a profession, its changing form in the current times, characteristics of a professional musician, and the skills required for the same.

Keywords

Music Professional – Singing, instrumental music and dance have together been considered as the three aspects of music. An individual exchanging his/her art for a definite remuneration, in any of these three domains, is to be considered a professional musician.

Globalisation – The complex process of economic growth and expansion, achieved by nations of the world through the exchange of advanced technology, trade and services, is known as globalisation. One aspect of this process is the coming together of populations from various ethnicities, various languages, and various socio-political and economic environments, through exchanges of various kinds. This involved a certain degree of standardisation, and hence, loss of cultural identity of these groups to a certain extent. However, the cultural and artistic exchange is another side of this same coin.

The entertainment industry – Keeping aside any or all of the higher goals of inner and self-development or education, selling one's art – music, theatre or films – purely for the sake of worldly entertainment.

Art consumer – An individual who pays for a given artwork, not just as an art-lover or a connoisseur who enjoys the art, but as a consumer who buys it for his/her personal use/benefit.

Mass-communication media – Media that can communicate with the masses, e.g. print media like newspapers, magazines, etc., audio-visual media like audio and video recordings, radio, television, etc., and internet-based media developed with the help of modern technology.

Preface – What does it mean to be a professional in the domain of music?

The word profession refers to specific work done in a given domain, to earn one's livelihood to fulfil the three basic needs for subsistence, viz, food-clothing-shelter. Also, it refers to working in the given domain, over and above the purpose of earning one's livelihood, such that the individual not only achieves the benchmarks of that domain but also contributes to the expansion of its horizons with one's creativity. Only by fulfilling the above conditions can a person be truly called a professional. Contributing meaningfully to a given domain through consistent work over a considerable period, beyond the level of a mere hobby, liking or livelihood, is also an important criterion for anyone being considered a professional.

Businessman, freelance professional, building a career, job holder and service provider are several terms used frequently in connection with being a professional. The scope of each of these terms is different, and so are the requisite skills, temperaments and goals. A professional in the domain of music is usually referred to as a freelancer or as someone building a career. Many professionals, however, are also service providers. Artists may be called businessmen when they legally register their institutions (schools, organisations, troupes or bands).

At the beginning of the 20th century, the scope of being a professional musician was limited to becoming a noted performer or music teacher. This has changed greatly in this era of globalisation. An entire 'entertainment industry' exists beyond the limited domain of Art music, and myriad forms of popular music fall under this great umbrella. Several new avenues and opportunities of work have made themselves available under this umbrella. A mere glance at these new opportunities, and the kind of work offered, will tell us that they demand much more than just the traditional knowledge music, artforms, and skills. They require new skills that are extrinsic to music (such as computer literacy, marketing, management, etc.). Hence, a professional musician in today's day and age needs to be a versatile individual with a different skill set in addition to musical proficiency.

Globalisation and the professional musician

Globalisation is a phenomenon encompassing not just the domain of music, but all the walks of life, and needs to be given its due in this light. Two very important questions that arise in this context–what exactly do globalisation and economic liberalisation truly signify? And what exactly is their outcome? Will the resultant affluence turn out to be an illusion? Prima facie this whole process looks beneficial, but a closer look reveals deep-rooted exploitation. And even if one welcomes these changes as beneficial, are they fairly brought in is a question that lingers. And that is the reason why activists and thethinkers world over, and especially in the third world countries, are leading movements and agitations against these processes. The core idea of preserving and respecting the freedom and individuality of participating nations and societies, their customs, philosophies and

art forms, while living in harmony with each other, seems to be lost in the course of globalisation. Instead, an extreme of standardisation is seen in every walk of life. Looking back at this globalisation, or Americanisation, whatever one may choose to call it, one realises that the importance, usefulness and meaningfulness of each aspect [of anything] have been lost in the complexity and superfluity of various aspects. The effects of globalisation on the standard and style of living are radical and multi-layered, having, both, pros and cons. When it comes to music, there are primarily two parties concerned – the artist, and the connoisseur or consumer. Music is an art as well as a commodity, at the same time. Earlier, a successful artist was first a good artist, and then a person who marketed himself well. The last century saw the rise of an entire class of artists who pursued a respectable career in music. Not just musical proficiency, but also the skills of management-advertising-marketing, are essential to be successful in the 'art market'. (That V.D.Paluskar possessed the vision to realise this, and included these softskills in his music syllabus about a hundred years ago, is quite astonishing!) Unfortunately, these soft skills have taken precedence over musical proficiency in today's times. The equations for being successful artists have changed – musical proficiency may not be great, but impeccable PR is a must! The marketing executive is more important than the artist. Definition of 'meaningful art' has rapidly shifted from being 'good' to be 'commercially viable', in the past 30-40 years. Great economic challenges face the Indian musicians and their position in the global market remains a mystery.

The Internet gives every individual an equal opportunity to market and advertise their music and musical persona. Excellent technology and advanced equipment for the study and preservation of traditional music are available today. Means to study not just Indian, but numerous other forms of music are available. It has become rare to find artists with the true urge to preserve, proliferate and perform their traditional music – even rarer is the support system (equipment and finance) necessary for accomplishing their task. Moreover, in the rush to grab the abundantly available opportunities on innumerable media, the true musical goal behind harnessing these media is somewhere lost on the way. However, the bright side of globalisation is that systematically studying music, which was earlier very difficult, has become much easier with the advent of the internet and easy accessibility of different kinds of music on it. This has also broadened the scope of study of the music. Complementing one's music with musical ideas from all over the world, to create new music has become easier. Ready access to the most advanced technology anywhere in the world is making music more and more dependent on technology – it has become possible to create music from the comfort of one's own home, without the participation of any other artists. A certain autonomy has become part of the process of music creation. It is obvious that there are cons to this too – loss of traditional musical skills, monotonous, lifeless and unimpressive music due to excessive technology-

dependence, loss of diversity and virtuosity which are intrinsic to collaborative work, are a few that can be named.

Opportunities in the Indian Music Industry

Since ancient times, though music as a profession has been more or less like all the other professions – transmitted from one generation to another – there have always been musicians outside of these musical families or lineage. Hence, music is not considered a prerogative of some specific class or race. References of professional musicians – singers as well as instrumental musicianswho performed as entertainers, can be found in various ancient texts. They were known by various names like *Gandharva, Kinnar, Apsara* in ancient times, while in the medieval period terms like *bhaand, natava, dhaadi, mirasi, devadasi, kanchani,* or *tawayaf*, can be found as denoting professional musicians who earned their livelihood through music. Similarly, in the traditional Indian societal setup, the *balutedar* – i.e. the 12 types of artisans –too, came to be associated with music, in addition to their designated roles in the society. However, this class of musicians lost its social status and respectability during the medieval period and came to be considered abdicable, for various complex reasons. But this situation changed in modern times. Also, by the end of the medieval period, various *Gharanas* – i.e. schools of music – were born amongst the traditional- professional musicians, and they continued to produce musicians of calibre. In the modern era, three factors contributed the most to a change in the status of professional musicians – modern education and the western value system under British rule, the contribution of stalwarts like Paluskar and Bhatkhande, and changing social environment. All of these drew a large number of highly educated, affluent individuals from the higher rungs of social hierarchy towards music as a profession. This class eventually produced a large number of professional musicians who did not belong to the traditional musician families. The 20th century saw the emergence of many musicians belonging to diverse socio-economic strata. This helped transform the public opinion about music and professional musicians, to the extent that now in the 21st century, being a professional musician has regained its social esteem. Traditional musicians had all the advantage of genetically transmitted skills and knowledge from the oral tradition, but their place was soon taken by acquired skills, scientific knowledge and multitasking. Moreover, in the post-modern era, especially after the gigantic shifts of globalisation and economic liberalisation, music as a domain for professionals, has grown by leaps and bounds.

Opportunities in today's music industry

Today, apart from art music, numerous other avenues in popular music, such as light music (including lyric-based forms of music like *Ghazal, Rabindrasangeet*, Marathi Bhaav-Sangeet, etc.), *Natya Sangeet*, film music, applied forms of music such as advertisement jingles, fusion bands, etc. are open for

professional musicians. Based on the type of work in these fields, they can be broadly categorised into two: -

1. **On-stage performance opportunities** – vocalists, instrumentalists, accompanists, chorus singers, comperes

2. Off-stage opportunities – there are several types of off-stage opportunities available for professionals:

a. Teaching – opportunities as a music teacher:
   i. Teaching in institutions – schools, colleges, departments of performing arts in various universities, and administrative posts in the same
   ii. Freelance teaching – private tutoring, online tutoring
   iii. Workshops – conducting theme-based workshops in various practical and theoretical aspects of music, or even music appreciation workshops
   iv. Lecture-demonstrations and audio-visual presentations on various music-related topics
   v. Voice-trainers: A special kind of voice training, based on voice culture is a newly emerging necessity in the field of music, where accomplished voice trainers are required.

To work as a teacher, a musician needs to have several other skills such as teaching skills, communication skills, management skills and the psychological skills required to gauge their students, in addition to musical proficiency.

b. Writing about music – apart from research, the following opportunities have recently emerged in this regard:
   i. Music journalism
   ii. Writing in periodicals
   iii. Music criticism
   iv. Scriptwriting for theme-based concerts
   v. Writing for research projects like encyclopaedias of music
   vi. Writing of music blogs or websites
   vii. Writing synopses or resumes for musicians' websites
   viii. Writing album inlay notes for music being published

These require a basic knowledge of music, good linguistic skills and a flair for writing.

c. Music research – In India, music research is not yet a well-paying profession for aspiring music researchers. Yet, more and more opportunities are coming up for obtaining grants for research through institutions. This requires not just an aptitude for research, but also an interdisciplinary knowledge of music.

d. Music archiving – Music archiving began in India in the 1980s through a select few music archives that were then established. But this began flourishing as an upcoming profession only since the last decade as more and more music archives and music museums are now being established. An individual willing to work in this domain would require, in addition to basic musical proficiency, curating skills, knowledge of music history, technology related to music, and computer and data operating proficiency too.

e. Music management –Various institutions require efficient

managers. Schools of music, university departments of performing arts, organisers of concerts, music festivals, and foreign concert tours, cultural trusts, and even corporate HR departments need managers with some basic musical knowledge. Many organisations require individuals as programme coordinators, organisers and advisors. Also, many professional musicians require personal assistants and/or PR agents. Individuals with basic knowledge of music and good management skills have a fair number of opportunities in this area as well.

f. Opportunities in popular music and applied music – Movies, theatre, television serials, web series, advertisements, short films, classical or modern dance concerts and choreographies, etc. are various art forms where music, as well as, background score are required. Music direction, arrangement, sampling, supervising, music assistant, music part writer, take artists, chorus, etc. are some opportunities in this direction. Recently, online music videos have come up as a new medium to showcase one's new compositions. The use of audio-visual media has grown exponentially, and music being an integral part thereof in one or the other way, individuals with a musical background are in great demand for technical arts like recording, editing, mixing and mastering, videography and photography, etc. All these jobs require the willingness to familiarise oneself with technology and with any other allied domains, as well as an inclination towards teamwork, apart from basic musical proficiency.

The economics behind the music industry

Many students of music nurture the dream of becoming full-time musicians. But they must be made aware of the harsh truth, that the path to the realisation of this dream is not all that rosy and smooth. As is true about any other art, it is impossible to guarantee a steady and fixed income from music alone. Moreover, one has to face fierce competition in this field too, and there is no point denying that many a time, apart from the quality of work, there are innumerable non-musical factors such as patrons, that decide an artist's success. Just as the saying goes, "Music is not everyone's cup of coffee; only the very rich or very poor can afford it". When an artist decides to make a livelihood out of his/her music, there comes a time when he/she is obliged to compromise his/her core artistic values. The individual is then faced with a difficult choice – remain an artist or become a professional? It is rare to be able to strike a balance between art and the business of it – sad, but true. This is why we often find in society, many an artist possessing high musical calibre with hardly any material success or fame.

- Awareness of economics – In the initial days of any artist's career, his /her economic value is less, and it eventually goes on increasing. Thus, an artist must always know his or her

economic value at any point in his career, concerning that of his/her contemporaries as well. He/she must know with certainty, what his/her remuneration should be in the context of current 'market rate'. (Many artists have illusory, unrealistic or fantastic ideas about their remuneration!) Both, timidity and temerity in quoting one's remuneration, are undesirable in a professional.

- The 'face value' or 'professional identity' of an individual is important in any profession. Building one's artistic image, nurturing and preserving it carefully, form an integral part of any professional musician's duty. Equally integral is the commitment to fulfil through one's work, the artistic expectations associated with this artistic image.
- The earlier generation brought up in its value system, naturally objects to the obvious 'marketing' in today's world. But one must remember that this is the collective consciousness of today's era and hence a 'moral duty' in today's times. Like it or not, the saleability of art is directly proportional to the efficiency of marketing, is the truth. (Of course, one could get into a philosophical discussion on 'whether art should be sold', but once the term 'professional musician' is accepted, one must also accept the premise of music being a 'commodity' in this context. Those advocating against the 'sale of art', then, won't be professional musicians in this context.)
- The shelf-life of individuals, as well as art objects, is rapidly reducing these days. With newer objects flooding the market every other day, it has become imperative for the artists to forever try and remain in the limelight. It is always possible that the artist's market value goes down due to an overdose of his presence. People easily get bored with the same artist and his work and soon turn to newer faces and newer work. This sometimes results in very short-lived fame and career for some artists. Thus, knowing just how much visibility and easy accessibility is healthy for one's art, has become one of the many important things for an artist to know.
- A well-written resume, press kits, performance requirement sheets, flow charts, one's website, web presence through YouTube have become inevitable for the coming generations of artists. Artists who are in their 50s or 60s today may not realise the importance of these things, but these are a must for those in their 20s.
- Artists like Pt. Ravi Shankar set new benchmarks in professionalism. Organising a concert well in advance; giving necessary instructions to the organisers, sound designers and other technicians well in time; reaching the concert venue a few hours before the time and looking into the technical nitty-gritties like sound checks; being

particular not just about one's performance, but also about the overall aesthetic experience that is offered to the audience in the form of stage décor, costumes and colours, etc; being punctual in starting and ending a concert; treating co-artists respectfully, giving them a fair share in the concert; these and such are some of the standards of professionalism. Biding by such professional standards, reviewing old standards and establishing new ones to suit one's day and age, are some of the duties of new-age professional musicians.

- In no profession do opportunities come knocking on the door – they have to be created. And music is no exception to this rule. Every professional must find one's niche and create opportunities therein. In these times of superfluous availability, making oneself unique and indispensable is the only way to keep one's place and a steady flow of opportunities!
- The professional world has always been competitive. And in a competition, it is fair to –

1. Want to last
2. Aspire to beat others to reach the top
3. Have a passionate desire to win

A professional needto have this competitive attitude.

- Musicians in earlier times were satisfied, and took pride, in doing just one kind of work. But now, multitasking is no more considered wrong. On the contrary, it is considered quite necessary. It isn't considered incorrect anymore for a performing artist to venture into allied avenues like recording, teaching, research, writing, organising, etc. Earlier, performing artists engaging with such allied activities were readily labelled as 'non-artists' by their contemporaries, and they risked losing their professional value. But it is not true today. One must do away with the mindset of considering just the performing artists as professional musicians!
- The professional status of an artist is measured based on four criteria – artistic life, familial life, personal life – on both, psychological and intellectual planes, and financial dealings. Hence it is important to have an equilibrium in all four. Each profession requires a certain mental framework. If one has it, nothing better. But if not, one must be able to suppress and modify one's original temperament to suit it to one's professional needs. It is important to understand that such modifications become natural and necessary at various points in the course of one's artistic career.
- It has become necessary for commercially successful and busy artists to employ personal managers to keep track of their programmes, travel and recording schedules, their financial dealings and follow-up thereof, contacts with media and organisers, and many such tasks. It is important to note that if one is unwilling to employ a manager, one

must do all this oneself, or have a family member strongly support it. Only then can all of it run smoothly.

- It often happens that in an artistic career, one has to wait long and hard for opportunities and success. One has to face many instances of disillusionment, humiliation and failure. One may have to go through phases of depression, frustration and dejection. There are enough examples to show us that failure to manage these psychological situations have resulted in addiction, financial downfall and, in extreme cases, the ending of an artist's career. Hence psychological well being of an artist is extremely important.
- In general, these are the times of financial instability. Hence an artist needs to plan and manage their finances on both, personal and professional, levels.

The above list is not exhaustive, but endeavours to take into account most of the important points relevant to the topic at hand.

Conclusion

Post globalisation, many opportunities and possibilities have presented themselves in the domain of music as a profession. Advanced technology has redefined the parameters of this profession. In the coming times, it is possible to professionally pursue a successful career in music, if one complements traditional knowledge with new, technology-based skills.

References:

Bauman, Zygmunt. (1998). Globalization: The Human Consequences. New York: Columbia University Press.

Mudgal, Shubha. (2011). Globalization and India's Performing Arts. Chennai: The Hindu.

Ranade, Ashok Da. (2009). Sangeet Vichar. Mumbai: Popular Prakashan.

Ranade, Ashok Da. (2014). Sangeet Sangati. Pune: RajhansPrakashan.

Rao, Suvarnalata (ed.). (2002) Globalization and Indian Music – Seminar Proceedings. Mumbai: ITC SRA, NCPA and Music Forum.

Tomlinson, John. (1999). Globalization and Culture. Chicago: University of Chicago Press.

साहित्य और राजसत्ता

डॉ. वीना सुमन

असिस्टेन्ट प्रो. आर्य महिला पी. जी. कालेज, चेतगंज, वाराणसी

अपने उद्भव-काल से ही, साहित्य और राज्यसत्ता के बीच का संबंध बहस का विषय रहा है। जो साहित्य को उसके सही परिप्रेक्ष्य में देखते रहे, उनके लिए यह साहित्यिक प्रश्न रहा है। परन्तु जो साहित्य को अलौकिक जगत की वस्तु या दैवी प्रेरणा से संभव रचना मानते रहे, उनके लिए यह साहित्येतर प्रश्न रहा है। इस तरह के लोग साहित्य को प्रत्येक उस वस्तु से मुक्त रखने की बात सोच सकते हैं, जिसमें राजनीति की गंध आती है।

साहित्य और राजनीति के पारस्परिक संबंध-विश्लेषण के लिए साहित्य के उद्देश्य, रचना-प्रक्रिया और स्वरूप को समझना अप्रासंगिक नहीं होगा। व्यापक रूप से साहित्य का उद्देश्य आनंद प्रदान करना माना जाता है। इस आनंद की भी अलग-अलग कल्पना हो सकती है। पर यह कोरा मनोरंजन नहीं होता है।

जो आनंद साहित्य का उद्देश्य है, वह शून्य में नहीं रहता। इस आनंद का मूल रचना में आई हुई परिस्थितियों के भीतर होता है। परिस्थितियों के यथार्थ को समग्रता में समझना और उसे यथार्थ रूप में ही चित्रित करना साहित्यकार का दायित्व है। और इस हेतु, सामाजिक समस्याओं के साथ-साथ आर्थिक और राजनीतिक विद्रूपताओं का भी अध्ययन आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार साहित्य व राजनीति अथवा राज्यसत्ता का संबंध स्पष्ट हो जाता है।

प्रायः मध्ययुग तक भारतीय तथा पाश्चात्य दोनो परम्पराओं में साहित्य की रचना राज्यसत्ता सम्बद्ध रही है। भले ही, वह इसके समर्थन में हो या विरोध में। हिन्दी साहित्य की परम्परा में ही, आदिकालीन और रीतिकालीन साहित्य राज्याश्रय में पलता रहा। भक्तिकालीन साहित्य में भी यदि विरोधी या आक्षेपात्मः तेवर दिखता है तो उसके केन्द्र में राज्यसत्ता ही रही है। यहाँ तक कि आधुनिक काल में भी आपातकाल के दौरान सत्ता और साहित्य का द्वंद्व स्पष्टतः देखा गया, नागार्जुन को जेल में बंद कर दिया गया। अतः साहित्य व राज्यसत्ता पूरी परम्परा में आमने-सामने आती रहती है। साहित्य दो तरह का होता है- जनसाधारण का और राज्यसत्ता का। इनके बीच भी अंगीकार और अधिग्रहण का द्वंद्व चलता रहता है। कभी जनता राज्यसत्ता का साहित्य अंगीकार कर लेती है तो कभी राज्यसत्ता जनता के साहित्य को अधिग्रहीत कर लेती है।

विवेच्य संदर्भ में आगे बढ़ने से पूर्व प्राचीन यूनान के प्लेटो-पूर्व तथा प्लेटोकालीन परिस्थितियों की चर्चा प्रासंगिक हो जाती है। प्लेटो (427, BC-347 BC) पाश्चात्य बौद्धिक परमपरा के नींव-निर्माताओं में से हैं। उनका परिवार एथेन्स की राजनीति में महत्वपूर्ण स्थान रखता था। उनकी माता के संबंधी सुकरात के मित्र थे। संभवतः इसी कारण वे सुकरात का निकटत्व पा सके और उनके विचारों और तर्क-पद्धति से प्रभावित हुए।

प्लेटो युद्ध से प्रभावित शहर में बड़े हुए। उनके जन्म से कुछ ही पूर्व प्रारंभ हुआ पेलोपोजेशियन युद्ध उनकी 23 वर्ष की अवस्था तक चलता रहा। युद्ध की समाप्ति स्पार्टा की जीत और एथेन्स की हार तथा कुंठा में हुई। इसके साथ ही, पेरीक्लीज के

नेतृत्व में गठित साम्राज्य सरीखे महान गणतंत्र-संघ का पतन हो गया। युद्ध से बिखरे एथेन्स में अकाल, प्लेग और सिराकस (सिसली) के असफल विस्तारवादी अभियान से हुई क्षति ने आंतरिक असंतोष को जन्म दिया। परिणामतः सत्ता-हस्तांतरण का एक क्रमिक दौर आया। एथेन्स का अंतिम रूप से पतन 404 BC में हुआ, जब एक बार फिर स्पार्टा के सहयोग से कुलीनतंत्रीय क्रांति (Oligarchic revolution) हुई। लेकिन यह सरकार भी आठ महीने ही चली और एक बार फिर गणतंत्र की स्थापना हुई। इस बार गणतंत्र ने ऐसा काम किया, जिसे प्लेटो कभी माफ नहीं कर पाया। 399 BC में इसने सुकरात को युवकों को पथभ्रष्ट करने के आरोप में मृत्युदंड दे दिया। प्लेटो बुढ़ापे में लिखे अपने अनुभवों में इस संबंध में कहता है-

"I thought they were going to reform society and rule justly and so I watched there proceedings with deep interest. ..... Among other things they tried to incriminate my old friend Socrates.....when I saw all this, and other things as bad. I was disgusted and drew back from the windedness of the times."[1]

यह महत्वपूर्ण है कि सुकरात ने ही राज्य-सत्ता से प्रश्न का अभूतपूर्व साहस किया था। उन्होंने कई प्रश्नों से बहस शुरू की। यथा- राज्य का अस्तित्व व स्वरूप क्या है? जिसे हम मानते हैं, क्या वहीं है? राज्यसत्ता के निर्माता (राजनीतिज्ञ) कौन होते हैं— यहीं के या दूसरी दुनिया के? सत्ता कैसी और किसके लिए होनी चाहिए? यह राजा की ही (एक व्यक्ति की) होती है या जनता की होती है? क्या चीज है जो मनुष्य को शासन करने योग्य बनाता है, सत्ता की योग्य बनाता है? ये मौलिक प्रश्न राज्य को चिंतित करने लगे थे। सत्ता के स्वरूप को लेकर जनता संशय करने लगी थी। सुकरात यह भी प्रश्न उठाते हैं कि काम छोटे ही क्यों करेंगे। वे अधिकारों का भी प्रश्न उठाते हैं और कारीगर, श्रमिकों की चर्चा भी करते हैं। उनके दर्शन में अर्थशास्त्र की भूमिका थी। साथ ही, वे मुफ्त शिक्षा दे रहे थे, अतः सत्ता को चुनौती मिलने की आशंका के कारण उन्हें मृत्युदंड दे दिया गया।

प्लेटो सुकरात के दर्शन को, उनकी चिन्ताओं को स्वर देते है; बल्कि एक संस्था का रूप देते हैं। उनके दर्शन के मूल में दो तथ्य हैं- एथेन्स की पराजय और सुकरात को मृत्युदंड। उन्होंने पाया कि एथेन्स बौद्धिकता पर बल देते रहने के कारण स्पार्टा की सैन्य क्षमताओं का मुकाबला न कर सका। इस क्रम में वे काव्य और काव्यकला को भी जिम्मेवार ठहराते हैं। वे अपनी कविताओं तक को जला देते हैं।

सुकरात के प्राणदंड के बाद वे मिस्र, सिसली, इटली, यूनान आदि देशों की यात्रा करते है और चालीस वर्ष की अवस्था में एथेंस लौटने के बाद यूरोप के प्रथम विश्वविद्यालय- 'अकादमी' (Academy) की स्थापना करते हैं। यह अकादमी राजनेताओं के स्कूल के रूप में स्थापित की गई थी। प्लेटो ने यह निश्चय इसलिए किया था कि यहाँ नए प्रकार के राजनीतिज्ञों को तैयार किया जा सके- भविष्य के 'दार्शनिक शासक' (Philospher ruler)।

एथेन्स की पराजय के बाद प्लेटो के मन में एक 'आदर्श-राज्य' की परिकल्पना जन्म ले चुकी थी। उनकी रचना 'रिपब्लिक' तथा विश्वविद्यालय 'अकादमी' आदर्श राज्य को साकार करने के प्रयास थे। वे इसके (आदर्श-राज्य के) संचालन हेतु 'दार्शनिक प्रशासक' को तैयार करने की योजना बनाते हैं।

वस्तुतः प्लेटो साहित्य के लिए किसी सिद्धांत की अलग से रचना नहीं करते। बल्कि इसी 'दार्शनिक प्रशासक' की शिक्षा के क्रम में वे साहित्य व कला-संबंध अपने विचार रखते हैं। एथेन्स की हार में बुद्धिवाद और बुद्धिजीवियों की भूमिका को उत्तरदायी ठहराते हुए वे कहते हैं कि हमें ऐसे साहित्य की आवश्यकता नहीं है जो जनता के अंदर बल व पौरूष पैदा करने की जगह कायरता आदि दुर्गुणों को जन्म देता हो। प्लेटो के अनुसार कोई बड़ा साहित्यकार दुखांतक (tragedy) को विषय बनाता है या किसी पात्र को पहले सहानुभूति का पात्र बनाता है तो जनता यह कथानक पढ़ने के बाद

कमजोर महसूस करती है। यदि व्यक्ति कमजोर होगा तो समाज कमजोर होगा और फिर राज्य कमजोर होगा। गाँधी जी का कथन यहाँ प्रासंगिक लगता है। गुजरात साहित्य-परिषद् में 2 अप्रैल 1920 को जन-साहित्य के बारे में दिए गए भाषण में वे कहते हैं- ''भयभीत होकर जीने वाले अपने मन के भावों को निर्भयता से प्रकट ही नहीं कर सकते।... इस समय साहित्य की सेवा करने वालों से मैं तो यही माँगूगा कि वे हमें ईश्वर से मिलाएँ, सत्य के दर्शन कराएँ।''[2]

शिक्षा-पद्धति में परिवर्तन के लिए प्लेटो के तर्क ये हैं कि सभी मनुष्य आदर्श राज्य अर्थात् अच्छा शासन चाहते हैं; शासन अच्छा तभी हो सकता है, जब उसके नागरिक अच्छे होंगे, जब उनकी शिक्षा अच्छी होगी; अच्छी शिक्षा तभी संभव है, जब विषय अच्छे हो और विषय वही अच्छे हैं जो तन और मन को अधिक से अधिक अच्छा बनाएँ- तन अच्छा हो अर्थात् स्वस्थ और मजबूत हो, मन अच्छा हो अर्थात् सुसंस्कृत और निर्भीक हो। इस के लिए प्लेटो दो विषय-व्यायाम और संगीत बताते हैं। प्रारंभिक शिक्षा इन्हीं की दी जानी चाहिए।

प्लेटो संस्कार से कवि है और शिक्षा तथा परिस्थिति से दार्शनिक। इसलिए काव्य और दर्शन के सापेक्ष महत्व को लेकर उनमें प्रायः अन्तर्द्वन्द्व दिखाई देता है। 'कवियों के प्रति प्लेटो की विख्यात विहष्णा का कारण यही था कि उनके अनुसार मनुष्य की चेतना को समग्रता से प्रभावित करने का, उसे दिशा-निर्देशित करने का एकाधिकार दर्शन का है और प्लेटो को लगता था कि साहित्य दर्शन द्वारा निर्धारित सत्य एवं मर्यादा का अनुगमन करने की बजाय खुद अपने लिए यह अधिकार तलब करता है कि वह मनुष्य चेतना की समग्रता के साथ संवाद स्थापित कर सके। इसीलिए प्लेटो के अनुसार ''कविता और दर्शन का झगड़ा बहुत पुराना है।''[3]

इसके समानांतर प्लेटो यह भी कहते हैं कि साहित्य दृश्यजगत की वस्तुओं की अनुकृति है, अर्थात् अनुकृति की भी अनुकृति होने के कारण काव्य तात्विक वस्तु नहीं है। वह सत्य से काफी दूर है। उनका दूसरा विचार यह है कि साहित्य में मनुष्य को प्रभावित करने का अपूर्व शक्ति है। काव्य में श्रेष्ठ चरित्रों के साथ निम्न कोटि के चरित्र भी चित्रित होते हैं, अतः वह नैतिकता से भी दूर है। यदि उसे नैतिक बनना है तो उसमें केवल श्रेष्ठ चरित्रों का निर्माण होना चाहिए। तीसरे, वे कहते हैं कि साहित्य की प्रक्रिया बौद्धिक नहीं है, वह भावनात्मक है। कवि बुद्धि से प्रेरित होकर नहीं; एक अलौकिक भावना से परिचालित होकर काव्य-रचना करते हैं।

प्लेटो द्वारा काव्य की अग्रद्यता के दो आधार हैं- दर्शन तथा प्रयोजन। दार्शनिक दृष्टि से सत्य से तिहरा दूर होने की वजह से वह मिथ्या है। प्रयोजन की दृष्टि से वे काव्य के विषय-वस्तु पर आपत्ति करते हैं। वे शास्त्रीय-काव्य में (Classic poetry) में देवताओं और राजाओं के चरित्र-चित्रण पर आपत्ति करते हैं। उन्हें क्रूर, लोभी कलही, प्रतिशोधी रूपों में चित्रित किया गया है। इसके के साथ ही वीरों, नायकों के चरित्रों में भी यह दोष दिखाया जाता है। ऐसी स्थिति में, न देवताओं का और न ही मनुष्य का चरित्र आदर्श रह जाता है। इन काव्यों में कई प्रसंग ऐसे आते हैं जो पाठकों के मन में शौर्य वीरता के भाव की जगह कायरता जगाते हैं। प्लेटो कहते हैं कि काव्य ऐसा होना चाहिए, जो नवयुवकों में शौर्य की भावना भरे तथा मृत्यु की लालसा जगाए। क्योंकि 'दासता मृत्यु से भी बुरी चीज है।' प्लेटो का पूरा दर्शन, उनकी पूरी संकल्पना पर गुलामी की पीड़ा का असर है।

इसी तरह, काव्यों में सज्जन को दुख भोगते और दुर्जन को सुख भोगते दिखाया जाता है। इससे पाठकों में गलत संदेश जाता है। हताशा की प्रवृत्ति तो उत्पन्न होती ही है, गलत रास्ते की चकाचौंध दिग्भ्रमित भी करती है। प्लेटो का कहना है कि इस तरह के केन्द्रीय पात्रों को रचना में दुःखों से मात्र इस कारण गुजारा जाता है कि उसे जनता (पाठक) की सहानुभूति मिल सके। इसी कारण वे होमर के विषय में कहते हैं- ''अपने यौवन के आरंभ से ही होमर के लिए मेरे मन में आदर व प्यार रहा है,

जिससे मुझे हिचक होती है, क्योंकि वे सभी महान दुखान्तकीय कवियों के पथ-प्रदर्शक और वास्तविक गुरू रहे हैं। लेकिन, सत्य की अपेक्षा व्यक्ति को अधिक सम्मान नहीं दिया जा सकता...'' (.....the love and respect I've always had from a boy for Homer makes me hesitate-for I think he's the original master and guide of all the great tragic poets. But one must not respect an individual more than the truth.....) [4]

प्लेटो के अनुसार काव्य मनोवेगों का पोषण और सेचन करता है। (Poetry feeds and waters the passions) वे दो तरह के मनोवेगों-साधु तथा असाधु, की भी बात करते हैं। असाधु मनोवेग अधिक क्रियाशील होते हैं। अतःवे ऐसे कवियों को राज्य से बाहर निकालने की माँग करते हैं, जो असाधु मनोवेगों को उद्दीप्त करता है। प्लेटो काव्य को अत्यन्त समर्थ मानते थे, क्योंकि यह शक्तिशाली विचारों से जनता को मजबूत कर सकती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि साहित्य संबंधी प्लेटो के विचार एक निश्चित और युगानुकूल माँग-'आदर्श राज्य' या सुदृढ़-समृद्ध-सुसंस्कृत राज्य से प्रेरित हैं। फिर भी प्लेटो पर कुलीनवादी, प्रतिक्रियावादी, इतिहासवादी, नस्लवादी, उपयोगितावादी, नैतिकतावादी आदि होने के आरोप लगाए गए हैं। उपरोक्त आरोपों में उनके समग्र दर्शन-'रिपब्लिक' में व्यक्त सामाजिक-नैतिक आदर्शों, शिक्षा-प्रणाली, परिवार तथा सम्पत्ति के सिद्धांत तथा आदर्श-राज्य की संकल्पना को लपेटा गया है। हमें यहाँ सिर्फ उन मुद्दों की जाँच करनी चाहिए जो साहित्य-विषयक उनके आग्रहों से जुड़े हुए हैं। क्या राज्यसत्ता का तार इससे कहीं जुड़ता है?

प्लेटो की मुख्य चिन्ता- 'आदर्श-राज्य' की स्थापना से सम्बद्ध है। बार-बार के आक्रमणों से टूटे-बिखरे एथेन्स की स्थिति से वे मर्माहत थे। उनके साहित्य के मानदंडों में यदि नैतिक और दिशा-निर्देशित करने वाले तत्व हैं भी, तो वे बाह्य-आक्रमण और पराभव से बचाव के उपाय के रूप में हैं। न कि, आंतरिक शोषण व स्वार्थ की प्रवृत्ति से। परिस्थितियों और परिवेश के सापेक्ष ही नैतिकता का स्वरूप भी वरेण्य अथवा कुत्सित होता है। भारतीय परम्परा में शिष्ट वर्चस्वशील संस्कृति के हितों की रक्षा के क्रम में नैतिकता, प्रतिमानों को अवश्य रूढ़ जड़ किया जाता रहा है; लेकिन परिवेश में अन्तर था। दूसरी बात, कि प्लेटो भुक्तभोगी थे; बाहरी आक्रमण, पराधीनता से मुक्ति के लिए तन-मन से सुदृढ़-संस्कारित व्यक्ति-समाज-राज्य के निर्माण हेतु ही वे अपने साहित्य या शिक्षा का स्वरूप गढ़ते हैं। जबकि, भारत में एक ही राज्य में, समाज-समुदाय के भीतर की विभेदकारी शोषणमूलक व्यवस्था को निरन्तरता देने के लिए और प्रश्नों से मुक्त रखने के लिए काव्यगत-आचारगत नैतिकता और मानदंडो की व्यवस्था की जाती रही है। डेसमंड ली ने सही लिखा है- "It must also be remembered that the Greeks had no Bible, and what the Bible has been to us as a source of theology and morals, the poets were to the Greeks. And if Plato seems very preoccupied with the moral and theological aspect of the poets it is because it was from then that the ordinary Greek was expected to acquire his moral and theological nations." [5]

प्लेटो की दो और आलोचनाएँ, प्रायः समरूप, मिलती हैं। डा. रामविलास शर्मा कहते हैं-यह एक ऐसी पुस्तक है जिसमें आदर्श समाज-व्यवस्था कायम करने के लिए जाति-प्रथा को आधार (रिपब्लिक के बारे में) बनाया गया है।

रामविलास शर्मा यह स्थापित करना चाहते हैं कि यूनान में एक खास प्रकार की जाति-प्रथा स्थापित थी और सुकरात की बातों से पहले एक अव्यवस्था फैली, राजतंत्र पर कब्जे की आशंका पनपी। उनका प्लेटो पर यह आरोप है कि वे उसी प्राचीन व्यवस्था (प्रायः oligradry) के समर्थक थे और उसी में स्थित बहुत सारी चीजें, जो टूटने लगी थीं, उसे बचाए रखने हेतु 'रिपब्लिक' की रचना करते हैं। प्रकारान्तर से, यह सुकरात के योग्य शिष्य प्लेटो पर अपने गुरू की शिक्षा से विमुख होने, कृतघ्न होने का

आरोप है। यह आरोप उचित नही। प्लेटो ने स्वयं अपने सातवें पत्र में अपनी स्थिति स्पष्ट की है।

कुछ इसी प्रकार का आरोप K.R. Popper ने अपनी पुस्तक 'The Open Society And Its Enemies' (Vol-1) में लगाया है। उन्होंने आर्थिक-प्रक्रिया का यूनान में विकास निरूपित करते हुए दिखाया है कि किस प्रकार पूर्व का कुलीनतंत्रीय बंद समाज (Oligavchic Closed Society) व्यापार एवं उससे संभव सम्पर्को को तिरछी निगाहों से देख रहा था। जबकि गणतंत्रीय खुला समाज व्यक्तिवाद और वैयक्तिक श्रेष्ठता हेतु वर्ग-संघर्ष के साथ उन्नति कर रहा था। यहाँ वर्ग-संघर्ष को वे सार्थक सामाजिक घटना-प्रक्रिया के रूप में लेते हैं। उनका प्लेटो पर आरोप है कि वे एथेन्स के सत्तासीन गणतंत्र का विरोध कर कुलीनतंत्र का, जो एथेन्स के शत्रु स्पार्टा का शासन-प्रतिरूप (model of administration) था, पक्ष ले रहे थे।

वस्तुतः इन आरोपों में इस कारण दम दिख जाता है कि प्लेटो का 'आदर्श-राज्य' अत्यन्त उच्च धरातल पर आदर्शवादी और सैद्धांतिक था। अन्यथा, प्लेटो की निष्ठा और इरादे पर कत्तई संदेह नहीं किया जा सकता। यह तो अपराध-विज्ञान और दंड-विधान में दृश्ट है कि आरोपी के इरादे को देखकर ही अपराध की प्रकृति का निर्धारण किया जाता है। वैसे, स्वयं K.R. Popper प्लेटो के महत्व को स्वीकार करते हुए कहते हैं—"I believe that the medico-political treatments which he recommended, the arrest of change and the return to tribalism, was hopelessly wrong. But the recommendation, though not practicable as a therapy, testifies to Plato's power of disguosis." [6]

निःसंदेह प्लेटो का 'दार्शनिक शासक' एक मरीचिका है। यह एक प्रकार के आदर्शवाद की उपज है, जो मानवीय क्षमता से अधिक की माँग करता है और इस सबके बाद जो प्राप्त होता है, वह निराश करता है। फिर भी वह उन समस्याओं को कम-से-कम समझने का प्रयास तो करता है जो वास्तविक है और जिनके समाधान के लिए प्रत्येक समाज प्रयत्नशील रहता है।

अरस्तु, प्लेटो के दर्शन में साहित्य राज्यसत्ता हेतु उर्वर माहौल बनाने के लिए आता है। लेकिन निश्चय ही यह राज्यसत्ता एक आदर्श प्रतिरूप है, प्रायः रामचरितमानस के 'राम-राज्य' की तरह। उसकी प्राप्ति हेतु स्वस्थ तन-मन वाले सुसंस्कृत, उदात्त भाव-युक्त एवं शौर्य से परिपूर्ण श्रमशाली नागरिकों को तैयार करने वाले मानदंड अगर प्लेटो के साहित्य-मानदंड हैं, तो इसमें आपत्तिजनक कुछ भी नहीं। युगीन परिवेश और नेकनीयती, जिसके प्रमाण उपलब्ध हैं, के कारण साहित्य और राज्यसत्ता का यह संबंध एक ओर तो द्वंद्वात्मक है और एक ओर सहयोगात्मक। द्वंद्वात्मक वहाँ है, जहाँ स्थापित गणतंत्रत का प्लेटो विरोध करते हैं और सहयोगात्मक वहाँ है, जहाँ वे अपने 'आदर्श-राज्य' की बात करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ -

[1] PLATO-THE REPUBLIC-Translated by Desmond Lee, Page No. 14, Penguin Books, 2nd edition.

[2] 'आजकल' (हिन्दी मासिक), पृष्ठ संख्या-6-7, अक्टूबर, 1999

[3] विचार का अनंत- डा. पुरुषेत्तम अग्रवाल, पृष्ठ संख्या-41-42

[4] PLATO-THE REPUBLIC, by Desmond Lee, Page-422

[5] PLATO-THE REPUBLIC, by Desmond Lee, Page-129

[6] The Open Society And K.R. Popper, London, Its Enemies' - Routledge & Kegan Paul, Vol.-I Page-171, 1974

भारतीय शास्त्रीय संगीत के नवीन आयाम (रोहिलखंड के विशेष सन्दर्भ में)

सविता चौहान

शोध छात्रा-संगीत विभाग

महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय चित्रकूट सतना (म.प्र.)

सारांश

आधुनिक युग नवीन विचारधारा का युग है। संसार के सभी क्षेत्रों में नई प्रणाली, नए आयाम, नई खोज की आवश्यकता है। शिक्षा आयोग समय-समय पर अपनी नीतियों में बदलाव के लिए प्रतिबद्ध है। यदि ये बदलाव न हो तो युगीन विचारधारा का पीछा करना असंभव हो जायेगा। तकनीकि क्षेत्र हो या कला क्षेत्र, व्यावहारिक क्षेत्र हो व्यावसायिक क्षेत्र, आर्थिक क्षेत्र हो या मनोरंजन का क्षेत्र, प्रत्येक क्षेत्र बदलाव की नींव पर ही दृढ़ता से टिका हुआ है जिससे जनमानस में हिलोरे ले रही परिवर्तन की भावना का समुच्चय सम्मान होता है। नई शिक्षा नीति 2019 भी इसी बदलाव की मुहिम है जिसमे संगीत कला को प्राथमिकता के तौर पर लिया गया है। प्रसन्नता का विषय है कि सरकार भी इस कला की गंभीरता को समझती है और प्राथमिक व माध्यमिक स्तर पर इसे वैकल्पिक नही बल्कि अनिवार्य विषय के रूप में लागू करने के लिए प्रयासरत है। प्रस्तुत विषय भारतीय शास्त्रीय संगीत के भावी नवीन आयामो को खोजने की दिशा में एक प्रयास है जिसका क्षेत्र विस्तार रोहिलखंड है।

मूल शब्द - शास्त्रीय संगीत, उद्देश्य, नवीन आयाम, निष्कर्ष।

प्रस्तावनाः-

''भारतीय शास्त्रीय संगीत के नवीन आयाम'', यह विषय अत्यंत वैचारिक होने के साथ ही विस्तृत भी है इसीलिये इसे संक्षिप्तता देने के लिये रोहिलखंड क्षेत्र का चयन किया गया है। शास्त्रीय संगीत का क्षेत्र विशाल समुद्र की भांति है जिसको सीमित शब्दों में वर्णन करना मुमकिन नही है। जब हम अपने आस-पास दृष्टि डालते है तो यह देखकर बहुत ही गर्व महसूस होता है कि हमारी युवा पीढ़ी अत्यंत वैचारिक, स्पष्टवादी, नई खोज के प्रति अग्रसर और पूर्वाग्रह से मुक्त है। हमारी नई पीढ़ी हमारी संस्कृति, हमारी राष्ट्रीय छवि को सहेजने में समर्थ है। भारतीय शास्त्रीय संगीत की अमूल्य विरासत को उचित सम्मान व आदर दिलाने के लिए समर्पित है बशर्ते उन्हें आवश्यकता है सही दिशा व मार्गदर्शन की। भारतीय शास्त्रीय संगीत अपनी उत्कृष्ट विशेषताओं के लिये सम्पूर्ण विश्व में एक अलग पहचान रखता है। समयानुसार व विषयानुसार इसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी होते रहे हैं इसीलिए इसकी शास्त्रीयता सदैव नवीनता व विविधता से परिपूर्ण रही। इसी नवीनता व विविधता का परिणाम आज हम विभिन्न शास्त्रीय गायन शैलियों के रूप में देख रहे हैं जिनसे सम्बंधित उत्कृष्ट कलाकार भी विश्व के कोने कोने में अपनी प्रतिभा का परचम लहरा रहे हैं। इन्हीं कलाकारों से इन गायन शैलियों का अस्तित्व है।

वर्तमान में अल्प जानकारी के चलते लोग इस विषय की उच्च शिक्षा लेने में हिचकिचाते हैं या संगीत व्यवसाय के नवीन आयामो की जानकारी के अभाव में इस कला से किनारा कर लेते हैं। ऐसे में आवश्यकता है लोगो को शास्त्रीय संगीत के नवीन आयामो के प्रति जागरूक करने की व प्रयास करने की जिससे इस शास्त्रीय कला को उचित सम्मान मिल सके और समाज व राष्ट्र को उच्च संगीत शिक्षक व गुणी कलाकार।

भारतीय शास्त्रीय संगीत

परिवर्तन सृष्टि का शाश्वत नियम है। प्राचीन संगीत ग्रंथो का इतिहास यदि देखा जाय तो यह तो प्रमाणित है कि भारतीय संगीत के साथ शास्त्रीय शब्द प्रयोग 19वी सदी से पूर्व नही हुआ है। शास्त्रीय शब्द का प्रयोग 19वी सदी के बाद के सांगीतिक इतिहास मे प्रचुरता से देखा गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में जो परिवर्तन देखने को मिले हैंएवे अभूतपूर्व हैं। भारतीय शास्त्रीय संगीत राग की जानकारी के बिना अधूरा है। पंडित भातखंडे ने अपने ग्रन्थ ष्श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्ष् में राग की परिभाषा देते हुए कहा है-

ष्योयं ध्वनिविशेषस्तु स्वर वर्ण विभूषितः।
रंजको जनचिंतानाम् स रागः कथितो बुधेरू।।

अर्थात स्वर तथा वर्ण से युक्त विशिष्ट ध्वनि समूह जो रंजक अर्थात लोगों के चित्त को आनंद देने वाला है उसे विद्वान राग कहते हैं। राग शब्द की उत्पत्ति श्रंज धातु से हुई है जिसका शाब्दिक अर्थ है रिझाना। आधुनिक शास्त्रीय संगीत में स्वरों के मूर्तताधार को माध्यम बनाकर रागों की अभिव्यक्ति के लिये ध्रुपद, धमार, ख्याल, ठुमरी, टप्पा, तराना आदि विधाओं का बखूबी प्रचलन कलाकारों के बीच है।

वैदिक काल प्रयुक्त मार्गी व देशी संगीत ही आधुनिक काल में शास्त्रीय व उपशास्त्रीय संगीत है। भारतीय संगीत के भूत व भविष्य के बीच वर्तमान शास्त्रीय संगीत एक दृढ़ श्रृंखला के रूप में परिलक्षित होता है। इस प्रकार वैदिक काल में साम संगीत व मध्य काल में 'पक्के गाने' के नाम से जाना जाने वाला संगीत 19 वी शताब्दी के बाद से शास्त्रीय संगीत का रूप ले चुका था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से इसी शास्त्रीय संगीत को अंग्रेजी प्रभाव ने 'क्लासीकल म्यूजिक' का रूप दे दिया।

उद्देश्य-

वर्तमान में संगीत विषय के अंतर्गत व्यावहारिकए व्यावसायिक एवं रुचिपरक उपादानों को समायोजित कर प्रारूपों की स्थापना करना आधुनिक शिक्षा का उद्देश्य ही नहीं, आवश्यकता भी बन गई है। आधुनिक तकनीकि को उच्च संगीत शिक्षा हेतु कार्ययोजना एवं नवाचार में समाविष्ट करके ही व्यावहारिक प्रयोग में लाया जा सकता है। शास्त्रीय संगीत के प्राचीन व आधुनिक रूप का ज्ञान नई पीढ़ी तक पहुँचाना सभी संगीत कलाकारों का उद्देश्य होना चाहिये। नई व पुरानी बंदिशों को लिखित रूप में संरक्षित कर उसे भावी पीढ़ी के लिये अग्रसारित करना चाहिये। शास्त्रीय संगीत में समय समय पर नई खोज व नए शोध भी होते रहने चाहिए जिसमें कलाकारों का उचित सहयोग व मार्गदर्शन भी प्रदान किया जाना चाहिये। शास्त्रीय संगीत के उत्थान के लिये हर संभव प्रयास हमारी जिम्मेदारी है ताकि शास्त्रीय संगीत का मूल रूप भविष्य के लिये सुरक्षित रह सके और भविष्य में मार्मिक कलाकारों का जन्म हो सके ।

नवीन आयाम-

संगीत के भविष्य की जानकारी देते हुए स्वामी प्रज्ञानानानंद ने Historical development of Indian music में पृ. 13 पर कहा है.

The future of Indian music is more brilliant and hopeful, and it will surely bring a permanent solace of peace and love not only to the people of india,but also to the other nations of the world.The development and novel creations of the types and patterns

of music are the signs of hope and life , and they will supply fresh materials for the new annals of history of indian music"

आधुनिक समय में सामान्य जीवन इस सीमा तक जटिल हो चूका है कि प्रत्येक व्यक्ति को समाज में रहते हुए अपने दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कोई न कोई व्यवसाय का चयन करना ही होता है। इसीलिए संगीत साधना में लीन व्यक्ति भी इन भौतिक कठोरताओं के व्यास से बाहर पग नही रख सकता। शास्त्रीय संगीत विषय में रोजगार के अवसर अल्प होने के कारण इस विषय में व्यावसायिक शिक्षा का शिक्षण अवश्यम्भावी हो गया है। साथ ही आर्थिक रूप से कमजोर संगीत छात्रों के लिये नवीन निःशुल्क शास्त्रीय संगीत संस्थानों की व्यवस्था सरकार द्वारा की जानी चाहिये।

एक समय था जब रोहिलखंड क्षेत्र के रामपुर-सहसवान घराने के प्रतिष्ठित कलाकारों से अन्य घराने के कलाकारों ने शास्त्रीय संगीत की उचित शिक्षा लेकर अपने शिष्यों को संगीत के शास्त्रीय पक्ष का ज्ञान दिया। यह संगीत का सर्वप्राचीन घराना कहा जाता है। अनेक महान कलाकारों की जननी होने के बाद भी आज यहाँ गुणी कलाकारों का अभाव है। उचित साधनोंएअवसरों व गुणी संगीत कलाकारों के आभाव में इस घराने का अस्तित्व अंधकारमय है।

आज शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में व्यावहारिक ज्ञान की आवश्यकता है। बदलते परिवेश में हर दिन दम तोड़ती जिन्दगी में जीवन निर्वाह करने के लिए संगीत को मात्र आध्यात्म से जोड़कर मोक्षप्राप्ति का साधन मानना या मात्र मनोरंजक समझकर इसमें दिशाहीन होकर भटकना भी संगीत प्रेमियों के लिए उचित नही है। वर्तमान परिवेश में संगीतज्ञों के लिए न तो राज्याश्रय की व्यवस्था है और न ही इस कला को विशेष संरक्षण प्राप्त है कि मात्र अपने शौक के लिये बिना किसी चिंता के समस्त दायित्वों से मुक्त होकर संगीत को ही अपना वर्चस्व समर्पित कर दें, क्यों न लोगों को जागरूक किया जाय और शास्त्रीय संगीत के नवीन आयामो को जन-जन तक पहुँचाया जाय जिससे संगीत रुचिपरक के साथ व्यावसायिक क्षेत्र में प्रगति कर सके।

आज रोहिलखंड क्षेत्र में शास्त्रीय संगीत में व्यावसायिक अवसरों का ये हाल है कि इस कला में उच्च शिक्षित लोग भी बेरोजगारी के चलते इस कला से पलायन को मजबूर है। इन्हीं लोगो को देखकर अन्य छात्र भी इस कला से दूरी बना रहे हैं। सर्वप्रथम आवश्यकता है इस कला में उच्च शिक्षित लोगों को रोजगार उपलब्ध कराने की। द्वितीय आयाम के रूप में आवश्यकता है विद्यालय व विश्वविद्यालय स्तर पर कैरियर काउंसिलिंग का आयोजन करने की ताकि इस कला को विषय के तौर पर लेने के लिए छात्र अपने भविष्य के लिए व्यवसाय के मुद्दे पर निर्भीक होकर तैयार हो सके। अतः कैरियर काउंसिलिंग ऑफ म्यूजिक शास्त्रीय संगीत के व्यावसायीकरण की दौड़ में नवीन आयाम सिद्ध होगा। रोहिलखंड क्षेत्र में लोग शास्त्रीय संगीत अनभिज्ञ हैं अतः उनके ज्ञान स्तर में वृद्धि के लिए छात्र/छात्राओं को शास्त्रीय संगीत से सम्बंधित संस्थानों, विश्वविद्यालयों, गुरुकुलों व ऐतिहासिक स्थलों के भ्रमण पर ले जाने की व्यवस्था विद्यालय स्तर पर की जानी चाहिए। ताकि शास्त्रीय संगीत के प्रति उनमे आदर व सम्मान का भाव विकसित हो सके। इस प्रकार के भ्रमण शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में वरदान साबित होंगे जो कि इस दिशा में एक नवीन आयाम होगा। साथ ही शास्त्रीय संगीत के नामी कलाकारों की मंच प्रस्तुति की व्यवस्था रोहिलखंड क्षेत्र में की जानी चाहिए ताकि इस कला को लोग विधिवत जान सके और उनसे शिक्षा व प्रेरणा लेकर भविष्य में इस कला के भावी कलाकार बन सके और इस कला को विलुप्त होने से बचाया जा सके।इस क्षेत्र का प्राचीन घराना रामपुर-सहसवान घराना के वर्तमान प्रसिद्ध कलाकार पद्मभूषण व पद्मविभूषण अवार्ड से सम्मानित शास्त्रीय संगीत गायक उस्ताद गुलाम मुस्तफा खान इसी घराने की शोभा है। इस क्षेत्र में शास्त्रीय संगीत को अब ऐसे कलाकारों मिलना असंभव सा प्रतीत होता है। इस कला को अब विशेष संरक्षण की आवश्यकता है। सरकार को इस

कला के उत्थान के लिए ठोस कदम उठाने होंगे व इसे अपनी प्राथमिकता में सम्मिलित करना होगा।

शास्त्रीय संगीत की उन्नति के क्षेत्र में बाधक बनती है संगीत अभ्यर्थियों की आर्थिक परिस्थिति। जो छात्र इस विषय में उच्च शिक्षा लेना चाहते हैं उन्हें विशेष रूप से आर्थिक सहायता पहुंचाने का प्रयास सरकार द्वारा किया जाना चाहिये। उनके लिये विशेष छात्रवृत्ति की व्यवस्था की जानी चाहिये। गुणी कलाकारों के गुरुकुलों में भी निःशुल्क शिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिये। जिस प्रकार सरकार अन्य कलाओं के उत्थान के लिए प्रयासरत है उसी प्रकार इस कला का उत्थान भी सरकार को अपनी प्राथमिकता में शामिल करना होगा।

वाद्यों का निर्माण व मरम्मत भी इस कला के ज्ञान द्वारा संभव है जो इस क्षेत्र में व्यवसाय का एक सफल आयाम है। रोहिलखंड क्षेत्र में इस व्यवसाय का सफलतम विस्तार है। इस दिशा में भी संगीत प्रेमियों को ध्यान आकर्षित करने की आवश्यकता है।

साथ ही इस क्षेत्र में गुणी कलाकारों के मंच प्रदशन की महती आवश्यकता है जिनका ज्ञान व मार्गदर्शन संगीत विद्यार्थियों के लिए संजीवनी का कार्य करेगा। छात्रों को शास्त्रीय संगीत की व्यापकता का ज्ञान हो सकेगा और इस कला के प्रति उनके हृदय में सम्मान व आदर का भाव जागृत होगा।

व्यावसायिक क्षेत्र में नवीन आयाम...

शास्त्रीय संगीत अपने प्राकृतिक रूप में ईश्वर से संबंध स्थापित करने का एक सशक्त माध्यम माना जाता था। यह कला प्रत्येक संगीत प्रेमी के लिए श्रद्धाए विश्वासए भक्ति व आध्यात्म से जुड़ी हुई थी। परंतु आज हमारी यह धरोहर व्यावसायीकरण के शिकंजे में फंस गई है। यह कला लगभग लुप्त होती जा रही है । शास्त्रीय संगीत से जुड़े कलाकारों में भी कमी आई है साथ ही भविष्य के लिए वर्तमान कलाकारों की भावी पीढ़ियों में भी इस कला के प्रति रुचि में ह्रास होता नजर आ रहा है जोकि अत्यंत शोचनीय व निराशाजनक है ।यह यथार्थ सत्य है कि मात्र मनोरंजन या शौक के लिए शास्त्रीय संगीत कला को अपनाना संभव है। यदि उचित दिशा में इस कला में व्यावसायीकरण संभव ना हो पाया तो भय है कि यह कला विलुप्तता की कगार पर खड़ी ना हो जाए। एक दौर था जब संगीत के कलाकारों को मात्र इस कला में निपुणता प्राप्त करना ही उद्देश्य था क्योंकि उन्हें राज्याश्रय व संगीत रसिक राजाओं का संरक्षण प्राप्त था। परंतु वर्तमान की सत्यता इससे बिल्कुल विपरीत है। हमें तो इस कला में निपुणता प्राप्त करने के लिए प्रयास करना है और साथ ही जीविकोपार्जन के स्रोतों को भी बढ़ाना है। आज का युग भौतिकतावादी युग है और मनुष्य चाहे वह किसी भी कला का विद्वान हो इस भौतिकता के व्यास से बाहर पग नहीं रख सकता क्योंकि उस पर पारिवारिक व सामाजिक जिम्मेदारी का भार है जिसका निर्वहन उसे हर परिस्थिति में करना है। किसी भी और दृष्टि डालें परंतु शास्त्रीय संगीत उन उच्च शिक्षित कलाकारों को भी रोजगार देने में सक्षम नहीं दिखाई देता जो इस कला की उच्चतम डिग्री नेट व पीएचडी कर चुके हैं तो फिर उन शास्त्रीय संगीत के छात्र-छात्राओं का क्या भविष्य हो सकता है जो आर्थिक रूप से अभावग्रस्त होने के कारण इस कला की अकादमिक डिग्री ना ले पाए हों या जिनके पास अच्छे गुरु अथवा शिक्षक पर सीखने के लिए आर्थिक तंगी का सामना करना पड़ रहा है। प्राथमिक व माध्यमिक स्तर पर भी शास्त्रीय संगीत की गुणवत्ता में भी कोई खास सुधार नहीं है। छात्र-छात्राओं में इस विषय के प्रति उदासीनता ही परिलक्षित होती है।

रुहेलखंड क्षेत्र के निवासी होने के कारण मैंने भी इसी क्षेत्र में संगीत विषय में अपना स्नातक किया है। इसीलिए इस क्षेत्र की सांगीतिक दशा से भलीभांति परिचित होने के कारण इस कला के प्रति लोगों में चिंता का भाव देख मन में अत्यंत निराशा होती है। शास्त्रीय संगीत प्रेमी होने के कारण इस कला को रुहेलखंड क्षेत्र में अपने मौलिक रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए प्रयासरत हूँ। शास्त्रीय संगीत का अध्यापन कार्य करने के साथ ही इस विषय का

मर्म समझने वाले संगीत विद्यार्थियों को इस विषय में उच्च शिक्षा के लिए प्रेरित करने का कार्य समय समय पर किया है। संगीत के कार्यक्रमों के लिए भी उन्हें प्रेरित करने के साथ ही उनका मनोबल बढ़ाया है और मंच के लिए तैयार करने का कार्य किया है। फिर भी ऐसा लगता है कि शास्त्रीय संगीत प्रेमियों का स्तर गिरता ही जा रहा है। श्रोता शास्त्रीय संगीत से ज्यादा सुगम व फिल्मी संगीत सुनना पसंद करते हैं। शास्त्रीय संगीत के छात्रों को मंच भी उपलब्ध नहीं हो पाता। जिससे उनकी प्रतिभा में और निखार आ सके।

प्रथम आयाम-

यदि इस कला में व्यवसाय के अवसर उपलब्ध भी करा दिए जाएं तो क्या लाभ हैए जब तक उस लाभ से लाभांवित होने वाले विद्यार्थियों की कतार ही नहीं है। रोहिलखंड क्षेत्र में इस कला के विद्यार्थियों की संख्या में बढ़ोत्तरी करने के लिए सर्वप्रथम संगीत शिक्षको व करियर काउंसलिंग की आवश्यकता है एजो समय समय पर प्रत्येक संगीत विद्यालय में आयोजित की जानी चाहिए ताकि इस कला को विषय के तौर पर लेने के लिए वे भविष्य के लिए व्यवसाय के मुद्दे पर निर्भीक होकर तैयार हों और परिवार में भी अपनी बात को सभी मापदंडो को समझाकर उनकी जिज्ञासा को शांत कर सकें। अतः करियर काउंसलिंग ऑफ म्यूजिक शास्त्रीय संगीत के व्यावसायीकरण की दौड़ में प्रथम आयाम है। जिस प्रकार अन्य विषयों की काउंसलिंग की जाती है उसी प्रकार इस विषय में भी विशेषज्ञों की टीम बनाकर उनके द्वारा संगीत के क्षेत्र में दिशा निर्देश दिए जाएं ताकि छात्र-छात्राओं का मार्गदर्शन हो सके और वे सामाजिक भ्रांतियों से मुक्त हो सकें।

द्वितीय आयाम-

जिस प्रकार अन्य विषयों से संबंधित ज्ञान स्तर को बढ़ाने के लिए छात्र छात्राओं को भ्रमण पर ले जाया जाता है उसी प्रकार शास्त्रीय संगीत से संबंधित संस्थानों, विश्वविद्यालयों व ऐतिहासिक स्थलों का भ्रमण कराने की सुविधा भी होनी चाहिए। ताकि उनके ज्ञान स्तर में वृद्धि हो सके। साथ ही शास्त्रीय संगीत के प्रति आदर व सम्मान का भाव भी विकसित हो सके। वर्तमान में इस दिशा में कार्य करना अत्यंत आवश्यक है क्योंकि हमारा सामाजिक परिवेश शास्त्रीय संगीत के मर्म को न समझ कर उसे हेय दृष्टि से निहारता है जो कि निराशाजनक है। जब तक शास्त्रीय संगीत को पूर्व की भांति शीर्ष पर विद्यमान ना कर दिया जाए तब तक इस दिशा में प्रयास रुकना नहीं चाहिए। शास्त्रीय संगीत कला संस्कारों की जननी है अतः इसका ज्ञान भावी पीढ़ी में संस्कारों के सृजन का कार्य भी करेगा जो कि हम सभी अपनी आने वाली पीढ़ी को देना चाहेंगे।इस प्रकार के भ्रमण शास्त्रीय संगीत की बेहतर स्थिति के लिए वरदान साबित होंगे।

तृतीय आयाम

अब यदि शास्त्रीय संगीत के आयाम के बारे में विचार किया जाए तो मेरा यह विचार है कि शास्त्रीय संगीत से संबंधित कलाकारों को जो मंच प्रदान किए जाते हैं उनका आयोजन बड़े बड़े शहरों व नगरों में ही होता है परंतु अनेक ऐसे क्षेत्र हैं जहां इन संगीतकारों का लोग नाम तक नहीं जानते हैं। न ही शास्त्रीय संगीत को विधिवत जानने के लिए इन मंच तक पहुंच पाए हैं। रुहेलखंड क्षेत्र के शास्त्रीय संगीत का अत्यंत प्राचीन घराना रामपुर सहसवान घराने के पद्म भूषण पद्म विभूषण प्राप्त कलाकार शास्त्रीय संगीत गायक उस्ताद गुलाम मुस्तफा खान को इस क्षेत्र के संगीत प्रेमी भी नहीं जानते हैं। कारण मात्र यही है कि हर कलाकार को उचित मंच ना मिले तो उसकी कला का अस्तित्व क्या है? रोजगार के अभाव में नामी कलाकार अपनी जन्मभूमि तक छोड़ने के लिए आमादा हैं। आवश्यकता है इन कलाकारों को कस्बों व शहरों में भी मंच उपलब्ध कराने की ताकि संगीत छात्र उनसे प्रेरणा ले सकें और शास्त्रीय संगीत के प्रति अपनी भावनाओं को व्यक्त करने का सशक्त माध्यम उन्हें मंच के रूप में प्राप्त हो सके। नामी कलाकारों को रुहेलखंड क्षेत्र

की शास्त्रीय संगीत में सुधारात्मक परिवर्तन की दृष्टि से मंच प्रदान किए जाएं ताकि शास्त्रीय संगीत प्रेमियों का मार्ग प्रशस्त हो सके।

चतुर्थ आयाम

शास्त्रीय संगीत की शैक्षिक उन्नति में बाधक बनती है छात्र छात्राओं की आर्थिक परिस्थिति। शास्त्रीय संगीत के वे छात्र और छात्राएं जो आर्थिक रूप से कमजोर है तथा वे इस कला की उच्च शिक्षा लेना चाहते हैं उन्हें एक विशेष स्थिति में छात्रवृत्ति की सुविधा उपलब्ध कराई जानी चाहिए या आर्थिक रूप से सरकार द्वारा सहायता धनराशि की व्यवस्था की जानी चाहिए। विश्वविद्यालयों में संगीत शिक्षा अत्यंत महंगी है जो साधारण परिवार के छात्र को आर्थिक स्थिति के कारण इस कला से दूर करने का प्रयास करती है। अतः शास्त्रीय संगीत के छात्रों को प्राथमिक स्तर पर मानसिक रूप से तैयार करने के साथ ही उनकी आर्थिक रूप से भी उनकी आर्थिक स्थिति के अनुरूप भी तैयार किया जाना चाहिए ताकि उच्च शिक्षा में बाधक आर्थिक तंगी के चलते वे प्राथमिक शिक्षा के रूप में ही शास्त्रीय संगीत शिक्षा का तिरस्कार न करने लगे।सरकार को इस दिशा में भी ठोस कदम उठाने होंगे।सरकार अन्य कलाओं के उत्थान के लिए भी वार्षिक खर्च करती है तो इस कला का क्रियान्वयन भी सरकार को अपनी प्राथमिकता में शामिल करना होगा। यदि विचार किया जाए तो वाद्यों की मरम्मत कार्य का भी व्यापक विस्तार इस क्षेत्र में किया जा सकता है। बड़े-बड़े शहरों में वाद्यों का निर्माण का मरम्मत कार्य पीढ़ी दर पीढ़ी चल रहा है और संगीत कला के क्षेत्र में यह एक सफल व्यवसायए भी है। रुहेलखंड क्षेत्र में निर्माण व मरम्मत कला का विशेष रूप से अभाव है। यहां दूर-दूर तक इस क्षेत्र में खास विस्तार नहीं है। यदि संगीत को समझने और जानने वाले लोग इस दिशा में प्रयासरत होंगे तो निश्चित रूप से सफल होंगे और रोजगार के साधन उपलब्ध हो सकेंगे।

निष्कर्ष-

अतः इस शोधपत्र का उद्देश्य उन नवीन आयामों को संगीत विद्यार्थियों व सरकार तक पहुँचाना है जो शास्त्रीय संगीत जगत को नवीन ऊंचाइयों पर स्थापित करने के लिए प्रयासरत हैं। ये आयाम हमे समर्पित भावों द्वारा 21वीं सदी के संभावित तनावों से मुक्ति दिलाने में सहायक सिद्ध होंगे।

सन्दर्भ सूची-

1. डॉ. श्रीमती रेणु राजन, भारति, शास्त्रीय संगीत के विविध आयाम, अंकित पब्लिकेशन दिल्ली, 2010
2. अलकनंदा पलनितकर, शास्त्रीय संगीत समस्याएं एवं समाधान, अर्जुन पब्लिकेशन हाउस, 2010

Music sites

3. www.sangeetgalaxy.co.in
4. shodhganga.inflibnet.ac.in

उत्तर प्रदेश की संगीत पत्रिकाएँ : ऐतिहासिक अभिज्ञान

विनोद कुमार

शोधार्थी

मंचकला विभाग (संगीत गायन), महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

नियमित रूप से प्रकाशित होने वाली पुस्तिका को पत्रिका कहा जाता है। यह विभिन्न विद्वानों के चिन्तनपरक प्रामाणिक लेखों का संग्रह होती है। अधिकांशतः पत्रिकाएँ किसी विशेष विधा पर केन्द्रित होती है। "संगीत" विधा को केन्द्र में रखकर उत्तर प्रदेश से प्रकाशित "संगीत", "छायानट", "ध्रुपद वार्षिकी", "नादार्चन", "कलावसुधा", "अनहदलोक" व "नादरंग" प्रमुख संगीत पत्रिकाएँ हैं। इन पत्रिकाओं के पृष्ठ सांगीतिक ज्ञान से भरे पडे है।

"भारत में सबसे पहली संगीत पत्रिका 'एन्युअल रिपोर्ट ऑफ द बंगाली म्यूजिक स्कूल' के नाम से वर्ष 1871 में प्रकाशित हुई।"[1] 1935 में प्रभूलाल गर्ग 'काका हाथरसी' ने मात्र अस्सी रूपये की पूँजी से 'संगीत' मासिक पत्रिका का प्रकाशन हाथरस उत्तर प्रदेश से प्रारम्भ किया। 86 वर्षों में अबतक 'संगीत' मासिक पत्रिका ने संगीत जगत को एक लाख से अधिक पृष्ठों की संख्या प्रदान किया है। "'संगीत' के स्थाई पाठक आज भले ही हजारों में हों, लेकिन उसे पढ़ने व लाभ उठाने वालों की संख्या लाखों में है ऐसा मेरा विश्वास है।"[2]

18 सितम्बर 1906 ई. को हाथरस, उत्तर प्रदेश के एक बर्तन व्यवसायी परिवार में प्रभूलाल गर्ग 'काका हाथरसी का जन्म हुआ। बचपन में ही इनके सिर से पिता शिवलाल का साया उठ गया। इनका लालन-पालन माता बर्फी देवी ने किया। प्रभूलाल गर्ग का प्रारम्भिक जीवन कठिनाइयों भरा रहा। इन्होंने अपने मित्र पं. नंदलाल शर्मा के साथ मिलकर संगीत सिखाने वाली पुस्तक 'म्यूजिक मास्टर' लिखी और प्रकाशित कराई। "'म्यूजिक मास्टर' ही 'संगीत कार्यालय' हाथरस की आधार शिला बनी।"[3] इस पुस्तक की सफलता से प्रोत्साहित हो प्रभूलाल गर्ग ने 'संगीत' मासिक पत्रिका के निकालनें का निर्णय किया। "हिन्दुस्तानी संगीत के उपवन में एक नन्हें से बिरवे का प्रस्फुटन हुआ, जिसका नाम था 'संगीत'।"[4] 'संगीत' मासिक के प्रारम्भिक दिनों में प्रभूलाल गर्ग 'काका हाथरसी' 'संगीत' पत्रिका के सभी कार्य एक छोटी सी मेज पर 'संगीत कार्यालय' में किया करते थे। इस पत्रिका को पाठकों तक पहुँचाने के लिए डाकखानें में डालने तक का कार्य भी स्वयं करते थे। बाद में अनेक संगीतज्ञ व विद्वान 'संगीत कार्यालय' से जुड़े और अपना योगदान दिया। जैसे- श्री विश्वनाथ गुप्ता, कुँवर महेश प्रताप, बहादुर सिंह वी.ए., विश्वम्भर नाथ भट्ट, जयदेव पत्की, शशि मोहन भट्ट, महेश नारायण सक्सेना, बालकृष्ण गर्ग, मुकेश गर्ग व लक्ष्मीनारायण गर्ग आदि। प्रभूलाल गर्ग 'काका हाथरसी' के उत्तराधिकारी डॉ. लक्ष्मी नारायण गर्ग ने लगभग 50 वर्षो तक, बालकृष्ण गर्ग ने लगभग 30 वर्षो तक व डॉ. मुकेश गर्ग ने लगभग 36 वर्षो तक 'संगीत' मासिक का कुशल सम्पादन किया।

श्री कृष्ण नारायण रातांजनकर, आचार्य वृहस्पति, पं. रविशंकर आदि महान संगीतज्ञों ने 'संगीत' के सम्पादकीय सलाहकार मण्डल में थे। प्रत्येक वर्ष इसके विविध विषयों पर विशेषांक भी निकलते रहे हैं। लेखक के रूप में श्री घनश्याम दास संगीताचार्य, नंद लाल शर्मा, ठाकुर जयदेव सिंह, शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे, प्रेमलता शर्मा व सुभद्रा चौधरी जैसे मूर्धन्य

संगीत विद्वानों का योगदान इस पत्रिका को मिलता रहा है। 'संगीत कार्यालय' से 1975 में 'म्यूजिक मिरर' (अँग्रेजी मासिक) संगीत पत्रिका भी कुछ अंकों में निकाली गयी।

वराणसी में 1961 में 'नादरूप' संगीत पत्रिका का प्रकाशन प्रो. प्रेमलता शर्मा के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ। इसके मात्र दो अंक 1961 और 1963 में प्रकाशित हुए। "1960 में, जब श्री कला संगीत भारती का- हि. वि. वि. (संगीत का कालिज जिसमें आप पढ़ी थी तथा फिर बाद में उसी में प्राध्यापक बनी थीं) की स्थापना के दस वर्ष पूरे हुए तो उस समय एक पत्रिका के प्रकाशन का निश्चय किया गया। पत्रिका के सम्पादन का पूर्ण उत्तरदायित्व डॉ. प्रेमलता शर्मा पर था। एक वर्ष के परिश्रम के बाद 1961 में, 'नादरूप' नामक इस पत्रिका का प्रकाशन हुआ।"[5]

1970 में 'संगीत सदन प्रकाशन' इलाहाबाद (प्रयागराज) ने 'संगीतिका' त्रैमासिक संगीत पत्रिका का प्रकाशन कुछ वर्षों तक किया। 1973 में इलाहाबाद से ही 'गीत संगीत' पत्रिका के भी कुछ अंक निकले।

उत्तर प्रदेश संस्कृति विभाग द्वारा 13 नवम्बर 1963 को 'उ. प्र. संगीत नाटक अकादमी' की स्थापना की गई। अकादमी संगीत व नाट्य की परम्पराओं के प्रचार-प्रसार, संवर्धन एवं परिरक्षण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दे रही है। अकादमी के पूर्व सचिव डॉ. समर बहादुर सिंह के कार्यकाल में 1977 में 'छायानट' पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। इसके प्रवेशांक का सम्पादन वरिष्ठ साहित्यकार मुद्राराक्षस द्वारा किया गया। संगीत जगत की लोकप्रिय पत्रिका 'छायानट' बजट के अभाव में बीच-बीच में अप्रकाशित रही। अभी तक इसके कुल 162 अंक निकल चुके हैं।

अकादमी के अध्यक्षों ठाकुर जयदेव सिंह, डॉ. प्रेमलता शर्मा, डॉ. एन. राजम व पं. बिरजू महाराज के सहयोग से 'छायानट' अखिल भारतीय स्तर पर पहचान बनाने में सफल रही। "ठाकुर जयदेव सिंह, कुवर नारायण, श्री लाल शुक्ल और डॉ. सुरेश अवस्थी आदि इससे सम्पादकीय सलाहकार के रूप में जुड़े थे।"[6]

1975 में ध्रुपद के पुनर्जागरण हेतु 'ध्रुपद मेला का आयोजन वाराणसी के तुलसी घाट पर 'महाराजा बनारस विद्या मंदिर ट्रस्ट' द्वारा प्रारम्भ हुआ। हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की प्राचीन गायन शैली ध्रुपद को समर्पित 'ध्रुपद वार्षिकी' संगीत पत्रिका के प्रकाशन का निर्णय इस ट्रस्ट द्वारा लिया गया और 1986 में प्रो. प्रेमलता शर्मा के सम्पादकत्व में इस पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। 1986 से 1995 तक कुल दस अंक इसके निकले। "इस पत्रिका का प्रकाशनोद्घाटन इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय की कुलपति डॉ. प्रेमलता शर्मा ने किया। यह पत्रिका विश्व में अपने प्रकार की अकेली है जो एक मात्र ध्रुपद के ही विविध पक्षों के उद्घाटन में समर्पित है।"[7]

'धुपद' सम्बन्धीा अध्ययन के लिए निकलने वाली यह पत्रिका हिन्दी और अँग्रेजी द्विभाषामय स्वरूप में 'तारा प्रिंटिंग वर्क्स' कमच्छा, वाराणसी से मुद्रित होती थी। ध्रुपद सम्बन्धी लिखित और वाचिक सामग्री की समन्वित प्रस्तुति और उसका समीक्षात्मक अध्ययन इस पत्रिका का उद्देश्य रहा है। इसके अवलोकन से पता चलता है कि यह संगीत पत्रिका प्रो. प्रेमलता शर्मा की सुव्यवस्थित कार्यप्रणाली का उत्कृष्ट नमूना है। 'ध्रुपद वार्षिकी' ध्रुपद परम्परा की प्रतिनिधि पत्रिका रही।

शिव-काली मंदिर संगीत समिति डी. रे. का. वाराणसी में 1988 में श्री लक्षू महाराज की अध्यक्षता में शारदीय नौरात्र में शास्त्रीय संगीत के द्विदिवसीय कार्यक्रम का आयोजन प्रारम्भ हुआ। शिव काली मंदिर संगीत समिति ने 1991 में 'नादार्चन' संगीत वार्षिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किय। डॉ. आदिनाथ उपाध्याय के कुशल सम्पादन में इसके कुल आठ अंक 1991 से 1998 तक अनवरत प्रकाशित हुए। इसके परामर्श मण्डल में उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ, डॉ.(कुमारी) प्रेमलता शर्मा, डॉ. (श्रीमती) एन. राजम, डॉ. गजानन शास्त्री मुसलगाँवकर, प्रो. रवीन्द्रनाथ ओझा व डॉ. सुभद्रा चौधरी शामिल थे। सांस्कृतिक राजधानी वाराणसी संगीत का केन्द्र है। वाराणसी से प्रकाशित संगीत

पत्रिकाओं का हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान है। अर्वाचीन संगीत जगत को इस प्रकार की संगीत पत्रिकाओं की आवश्यकता ळें

बहुआयामी दृष्टिकोण रखने वाली प्रदर्शकारी कलाओं की पत्रिका 'कला वसुधा' संगीत जगत में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे रही है। यह संगीत पत्रिका तेलीबाग, लखनऊ से निकलती है। इसका प्ैछ संख्या-2348-3660 है। इसके प्रधान सम्पादक शाशा बन्धोपाध्याय व सम्पादिका प्रो. उषा बनर्जी है। 'कला वसुधा' के विभिन्न अंकों में हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत से सम्बन्धित सामग्री छपी है। इसके अधिकांश अंक विशेषांक प्रकाशित हुए है। अंक 5-6 अक्टूबर 2002-मार्च 2003 (संयुक्तांक) 'संगीत प्रसंग' और अप्रैल-सितम्बर2019 (संयुक्तांक) 'संगीत शास्त्र प्रसंग' संगीत विशेषांक प्रकाशित हुए हैं।

2003 से 'कलाकुंज भारती' सांगीतिक पत्रिका का प्रकाशन लखनऊ से अनवरत हो रहा है। इस मासिक पत्रिका का पुर्व नाम 'कलाकुंज' था। मई 2010 से कलानुरागी, कवि एवं कला समीक्षक पद्मकान्त शर्मा 'प्रभात' इसके सम्पादन का कार्य कर रहे हैं।

'व्यंजना आर्ट एण्ड कल्चर सोसायटी 109 डी/4, अबुबकपुर, प्रीतमनगर, सुलेमसराय, इलाहाबाद (प्रयागराज) द्वारा 2014 से 'अनहद लोक' संगीत पत्रिका का प्रकाशन हो रहा है। कला एवं संस्कृति की प्रतिनिधि 'अनहद लोक' डॉ. मधुरानी शुक्ला के कुशल सम्पादन में अपना महत्वपूर्ण सांगीतिक योगदान हिन्दुस्तानी संगीत जगत को दे रही है। इसका प्ैछ संख्या- 2349-137ग है। इसके सम्पादक मण्डल में डॉ. राजेश मिश्रा, डॉ. मनीश कुमार मिश्रा व सुश्री शाम्भवी शुक्ला सम्मिलित हैं।इसको डॉ. सोनलमान सिंह, प्रो. चितरंजन ज्योतिशि, डॉ. कमलेश दत्त त्रिपाठी, पं. विश्वमोहन भट्ट, पं. भजन सपोरी, पं. रोनू मजूमदार, प्रो. ऋत्विक सान्याल, प्रो. दीप्ति ओमचारी भल्ला, पं. विजय शंकर मिश्र व विद्वानों संगीतज्ञों-कलाकारों का मार्ग दर्शन प्राप्त है। इसके सहयोगी मण्डल में प्रो. के. शशिकुमार, डॉ. रामशंकर, प्रो. लावण्य कीर्ति सिंह काव्या, प्रो. निशा झा, प्रो. रश्मि दीक्षित व डॉ शांति महेश सम्मिलित है।

कलास्रोत फाउण्डेशन, अलीगंज, लखनऊ द्वारा 2016 में 'कलास्रोत' संगीत पत्रिका के कुछ अंक आलोक पराड़कर के सम्पादन में प्रकाशित हुए। जुलाई 2017 से 'नाद रंग' संगीत पत्रिका गोमती नगर, नखनऊ से प्रकाशित हो रही है। इसका प्ैछ संख्या-2582-709ग है। इसके सम्पादक हैं, कला समीक्षक आलोक पराड़कर।

उत्तर प्रदेश में संगीत पत्रिकाओं की समृद्ध परम्परा रही है। इन पत्रिकाओं ने संगीत में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। बहुत सी संगीत पत्रिकाओं जैसे- 'नादरूप', 'संगीतिका', 'गीत संगीत', 'ध्रुपद वार्षिकी' व 'नादार्चन'का निकलना असमय में ही बन्द हो गया। उत्तर प्रदेश से निकलने वाली संगीत पत्रिकाओं ने अनेक उतार- चढ़ाव का सामना करते हुए अपनी सशक्त उपस्थिति से संगीत जगत में योगदान दे रही है। इनके पाठकों की संख्या पर्याप्त है। 'संगीत', 'छायानट', 'कला वसुधा', 'कलाकुंज भारती', 'अनहद लोक' व 'नादरंग' उत्तर-प्रदेश से वर्तमान में प्रकाशित हो रही संगीत पत्रिकाएँ है।

संदर्भ सूची-

1. भारतीय संगीत की लोकप्रियता में मीडिया प्रिंट मीडिया व इन्टरनेट की भूमिका : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन, डॉ. दीपा वार्ष्णेय, पारम्परिक संगीत शिक्षा और आजीविका के अवसर, पृ. सं.-19
2. संगीत पत्रिका, जनवरी 2015, सम्पादकीय पृष्ठ,
3. संगीत पत्रिका, जनवरी 2015, पृ.सं.-13,
4. संगीत पत्रिका, जनवरी 2015, पृ.सं.-14,
5. विविध विषय विदुशी प्रो. प्रेमलता शर्मा : व्यक्तित्व एवं कृतिव, डॉ. (श्रीमती) अर्चना दीक्षित, पृ.सं.-48,
6. छायानट पत्रिका, अंक-81, अप्रैल-जून 1997, पृ. सं-03,
7. ध्रुपद वार्षिकी पत्रिका, 1987 पृ.सं.-133,
8. संगीत पत्रिका, छायानट पत्रिका, ध्रुपद वार्षिकी पत्रिका, नादार्चन पत्रिका, कला वसुधा पत्रिका, अनहद लोक पत्रिका, कलाकुंज भारती पत्रिका, कला स्रोत पत्रिका व नादरंग पत्रिका।

सौन्दर्य

लोक संगीत में सौन्दर्य

डॉ. रश्मि गुप्ता

(असिस्टेन्ट प्रोफेसर) संगीत विभागाध्यक्षा,
सी.एम.पी., पी.जी., कॉलेज, प्रयागराज।

सारांश

भारतीय अर्मूत कला चिन्तन में संगीत का सर्वोत्कृष्ट स्थान माना गया है। संगीत ईश्वरीय सुन्दरतम सृष्टि की मधुरतम अभिव्यक्ति है। लोक कलाएँ मानव समाज की एक सहज कलात्मक उपलब्धि है जो कि सांस्कृतिक परम्पराओं का मूर्तिमान प्रतीक भी मानी गई है।

'कला सौन्दर्य की प्रतीक एवं आत्मा की सच्ची पुकार है। कला आत्माभिव्यक्ति है'- रविन्द्रनाथ टैगोर लोक संगीत मनुष्य के ह्रदय के भावों को अभिव्यक्त करने का सरलतम और सुगम माध्यम रहा है। इसमें लोक जीवन का सुन्दरतम प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। इन गीतों में स्वर, लय का अत्यधिक महत्व होता है। उसके अभाव में लोक गीत के सौन्दर्य के स्वरूप की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

अतः कला के क्षेत्र में सौन्दर्य कलाकार के ह्रदय में उदय होता है पलता है और पुष्ट होता हुआ अनेक माध्यमों के द्वारा अभिव्यक्त होता है और इसी कला की निर्मिति में कलाकार को विशिष्ट सौन्दर्यानुभूति होती है।

संकेत शब्द (Keywords) - लोक संगीत, सौन्दर्य, अभिव्यक्ति, कला, सौन्दर्यानुभूति, लयात्मकता, रस।

मनुष्य जब अपने विकास काल के आरम्भ में वर्णात्मक वाक् तथा अन्य साधनों से परिचित नहीं था, तभी से ही उसके पास अभिव्यक्ति के सशक्त साधन भिन्न-भिन्न आंगिक संकेत और नादात्मक वाक् रहे है। इन्ही अभिव्यक्तियों को प्रस्तुत करने का एक सबल माध्यम है-संगीत ।संगीत भारतीय सभ्यता और संस्कृति का प्रतीक है। वैदिक काल से ही इसमें समय-समय पर अनेक परम्परओं का विकास होता रहा है। इन परम्पराओं का पालन करने से व नवीन सौन्दर्य दृष्टि को अपनाने से ही कला की नींव सुदृढ़ होती है और विकास का क्रम सहज रूप से बना रहता है। इस परम्परा को अक्षुण्य रखते हुए गान और वादन में मौलिकता की अभिव्यक्ति ही हिन्दुस्तानी संगीत का वैशिष्टय है। कहने का तात्पर्य है कि 'जब कोई कला विद्या विकसित व परिष्कृत होते-होते सुसंस्कृत और समृद्ध हो जाती है, तब उसकी एक परम्परा चल पड़ती है।'[1]

वैदिक काल के अन्त में गान्धर्व वेद बना। यह समकालीन लोक संगीत का शास्त्रबद्ध नवीन प्रयास था। नाट्यशास्त्र के रचनाकाल में भरत का ध्यान भले ही संगीत की ओर कम गया लेकिन संगीत की परम्परा स्वाभाविक रूप से गतिशील हैं।

''मेरी जातियाँ इतनी व्यापक है कि लोक संगीत में कुछ भी व्यवहार में आता है। वे सब मेरी जातियों के अन्तर्गत आ सकता है।''(भरत)[2]

नाट्यशास्त्र में सामगान से भिन्न गान के दो शब्दों का वर्णन हुआ है- गान्धर्व एवं गान। तत्पश्चात् मतंग मुनि कृत 'वृहद्देशीय' ग्रन्थ में मार्ग संगीत के साथ देसी संगीत का भी उल्लेख प्राप्त होता है। इनके उपरान्त 13 वी. शताब्दी में शारंगदेव द्वारा रचित ग्रन्थ संगीत रत्नाकार में गान्धर्व-गान, मार्ग-देसी इनका वर्णन किया गया है। इस प्रकार मार्ग उसे कहते है। जिसे ब्रह्मदि ने खोजा और उसे गान्धर्व की

संज्ञा दी व लोगों की रूचि के अनुसार जो ह्रदय रंजक होता है उसे देसी कहा गया और गान की संज्ञा दी।

''मार्गो देशी ति तद्द्वेद्या तत्र मार्ग से उच्चयते।
यो मार्गितो विरिच्याधै प्रयुक्तो भरतादिभिः।।
देवरू पुरव राभिनिर्यताम्रदयाप्रदः।
देशदेश जनानां यद्रुच्यां ह्रदयरंजकम्।।
गानं च वादनं नृत्यं तद्देशीत्य भद्यीयते।''[3]
(संगीत रत्नाकर)

वैदिक ग्रन्थों में गीत, वाद्य और नृत्य से सम्बन्धित अनेक सामग्री मिली है। जिससे यह स्पष्ट होता है कि वैदिक युग से ही संगीत की दो धाराएँ समान रूप से विकसित होती चली आ रही है। जिसे मार्गी संगीत ओर देसी संगीत के नाम से जाना जाता रहा है।

कालान्तर में मार्गी संगीत का लोप हो गया और देसी संगीत दो रूपों में विकसित हुआ पहला जो कि शास्त्र पर आधारित था और विद्वानों, गुणियों एवं कलाकारों के अध्ययन तथा साधना का विषय बना जिसे आज शास्त्रीय संगीत के नाम से जाना जाता है, और दूसरा वह था जो काल और देश के अनुरूप प्रकृति के स्वच्छन्द वातावरण में स्वाभाविक रूप से पलता हुए विकसित होता रहा जिसे लोक संगीत के नाम से जाना गया।

डॉ. सदाशिव फड़के के अनुसार- 'शास्त्रीय नियमों की विशेष परवाह न करके सामान्य लोक व्यवहार के उपयोग में लाने के लिए मानव अपने आनन्द तरंग में जो छन्दोबद्ध वाणी सहज उद्भव करता है, वही लोकगीत है।'[4]

कहने का तात्पर्य है कि किसी भी राष्ट्र का लोक संगीत उस देश के रहने वाले जनमानस के द्वारा ही प्रस्फरित अन्तरात्मा की आवाज है। अर्थात् आनन्द एवं विषाद के अतिरेक में जन साधारण स्वर तथा लाय के द्वारा जब अपने मन के भावों की अभिव्यक्ति करता है तो वह लोक संगीत कहलता है।

एनसाइक्लोपिडिया ब्रिटानिका में लिखा है-

`This folk music is like a forest tree with its roots deeply buried in the part but which continually puts forth new branches, new leaves, new fruits.'[5]

इस प्राकृत कला को सीखने हेतु किसी विशिष्ट शिक्षा-दीक्षा, साधना आदि की आवश्यकता नहीं होती है। जन साधारण के मनोरंजन की प्रतीक लोक संगीत की भाषा सरल, धुने सहज और ह्रदय ग्राहिणी होती है। मन में उमंग भरकर जन-साधारण कुछ गा उठता है अथवा नृत्य करता है तो उस समय वह संगीत में आए विराम ताल, शास्त्र अथवा किसी आलंकारिक वैशिष्ट्य से अनभिज्ञ होता है। यह सब अनजाने में ही उसमें स्वाभाविक रूप से आ जाते है।

मतंग के अनुसार- 'अपनी-अपनी इच्छा से अपनी-अपनी बोली में अनुराग सहित गाने तथा अपने-अपने ढंग से बजाने-नाचने की परम्परा अनियंत्रित रूप से चलती है यही लोक संगीत है।'[6]

लोक संगीत के अन्तर्गत ही लोक गीत के प्रकारों का समावेश होता है। गुणीयों ने शास्त्रीय संगीत की उत्पत्ति का स्त्रोत लोकगीतों को ही माना है। लोक संगीत का रंजक तत्व तभी उभर कर सामने आता है जब मधुर ध्वनि, स्वरों का रूप धारण कर सुकोमल कंठ के माध्यम से मुखारित होती है। ढोल, ताशा, बांसुरी, बीन आदि लोक वाद्य इस रंजकता को और अधिक सौन्दर्यात्मकता प्रदान करते है। लोक धुनो के स्वरात्मक सौन्दर्य में बहुत से प्राकृतिक लोक वाद्यों का निर्माण करके उनके माध्यम से मधुर ध्वनियों को उत्पन्न करना भी अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि प्राकृतिक सौन्दर्य का जुड़ा रहना भी लोक संगीत की अपनी विशेषता रही है।

डॉ. गौतम शर्मा व्यथित के मतानुसार- 'लोक गीत जनमानस के भावपुत्र है। यह युग की सांस्कृतिक धरोहर और भावलोक का आगामी युगों में प्रतिनिधित्व करते है। इनमें सहज जीवन की सच्ची, अनूठी तथा सहज छाया मिलती है। वास्तविकता इनकी आत्मा है। लोक की तीनों मूल पूरक अभिव्यक्तियाँ-गीत,

संगीत तथा नृत्य इनके सहज सौन्दर्य एवं सरसता को बढ़ाती है। इनमें यथार्थ की मिट्टी की गंध, सामान्य जन के पसीने की महक एवं जनमानस का स्पन्दन गतिमान रहता है। प्रणय की सिन्दूरी आभा, उनकी ऊष्मा तथा मिठास गुनगुनी धूप में महकती है।'[7]

लोक गीतों का वास्तविक सौन्दर्य उनके संगीत के कारण होता है क्योंकि इनमें भाव पक्ष का प्रभाव अधिक देखा जा सकता है। साहित्य समाज में और वैदिक युग में मानव की सौन्दर्यानुभूति के जो आदर्श थे उनका धीरे-धीरे स्वरूप बदलता गया और हर युग की कला, साहित्य, सौन्दर्य आदि की छाप अंकित होती गई। किसी भी राष्ट्र की लोक कला वहाँ की सांस्कृतिक मर्यादा का प्रतीक होती है।

इस प्रकार ध्वनि से उत्पन्न व्यंजन शब्द को जन्म देता है, शब्द अर्थ को जन्म देता है, अर्थ से स्पन्दन उत्पन्न होता है, स्पन्दन से पुनः स्वर का जन्म होता है औ उसी स्वर से ही सौन्दर्य की सृष्टि होती है। भावुक ह्रदय समस्त सृष्टि को काव्यमय देखता है। क्योंकि प्राणी के ह्रदय में स्थायी भाव सदैव विद्यमान होते है। उन भावों के उद्दीपन से ही रस की उत्पत्ति होती है और उसी रस से कला-जन्म सौन्दर्य की अभिव्यक्ति होती है। इसी को 'एस्थेटिक वेल्यू ऑफ आर्ट' कहते है।

अतः कला व सौन्दर्य का सम्बन्ध बहुत प्राचीन है। कला रूप है तो सौन्दर्य उसका प्राण है। सौन्दर्य के माध्यम से ही कलाएं आनन्ददायिनी बन जाती है।

सन्दर्भ सूची

1. संगीत शिक्षण के विविध आयाम, 'डॉ. कुमार ऋषितोष', (नई दिल्ली-कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स) पृश्ठ संख्या-98
2. लोक गीतों में नाद-सौन्दर्य, डॉ. पुष्पा शर्मा, (नई दिल्ली-सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस) पृष्ठ संख्या-67
3. संगीत मीमांसा, डॉ. मृदुला पुरी (नई दिल्ली-सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस) पृष्ठ संख्या-22
4. लोक गीतों में समाज, पूर्णिमा श्रीवास्तव (जयपुर-मंगल प्रकाशन) पृष्ठ संख्या-12
5. सौन्दर्य, रस एवं संगीत, 'प्रो. स्वतन्त्र शर्मा (दिल्ली-प्रतिभा प्रकाशन) पृष्ठ संख्या-268
6. कुमाऊँनी लोक गीत तथा संगीत-शास्त्रीय परिवेश, डॉ. ज्योति तिवारी (नई दिल्ली-कनिष्का पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स) पृष्ठ संख्या-2
7. भारतीय संगीत के अन्तः विषयक दृष्टिकोण, डॉ. भारती शर्मा (गाजियाबाद नैतिक प्रकाशन) पृ.सं. -96

व्यक्तित्व

राहुलसांकृत्यायनः - साहित्य का महापण्डित

शंकर लाल माहेश्वरी

पूर्व जिला शिक्षा अधिकारी, पोस्ट- आगूंचा, जिला-भीलवाड़ा, राजस्थान

आषाढ़ी अमावस्या की बरसाती बयार जब विश्राम की शीतल छाया में जगत शिशु को सुला देती है, और अपने रहस्यमय मोहक कुहुकजाल में तमसाछन्न भैरव गगन को निष्पन्द कर देती हैं तब इस सुनसान निस्तब्ध नीरव निशा में भारत की नारी अपने श्रद्धा दीपकों को सुकुमार आंचल में छुपाये तटिनी के तट पर पहुंचती हैं और चुपके से उसकी लहरों पर एक एक दीप प्रवाहित करते हुए प्रार्थना करती हैं। हे अदृश्य देव इस भयावही निशा में भटके बटोही को प्रकाश देना देवी भगवती ने ममता मयी माँ कुलवन्ती देवी की मनोकामना पूर्ण कर साहित्य शिल्पी महापण्डित राहुल सांकृत्यायन को 09 अप्रेल 1893 को अपने ननिहाल पंदपा जिला आजमगढ में जन्म दिया। बाद में पिता गोवर्धन पाण्डेय की छाया तले कनैला (आजमगढ़) उत्तरप्रदेश में अपना जीवन परिपोशित कर धन्य हुए।

बचपन का नाम केदारनाथ था, प्रारम्भ ही से अपने फूफा के संरक्षण में रहकर सारस्वत व्याकरण का गहन अध्ययन किया।यात्राओं का बड़ा शौक होने के कारण वह रेल द्वारा बनारस आया और इन्हे साहसिक यात्राएं करने का निरन्तर अवसर मिलता रहा। बालक केदारनाथ जब तीसरी कक्षा में थे तभी उन्होने उर्दू भाशा सीखना प्रारम्भ कर दिया। जब उर्दू की पाठ्य पुस्तक में एक शेर पढ़ा तो उन्हे बड़ी प्रेरणा मिली

''सैर कर दुनियाँ का गाफिल जिन्दगानी फिर कहाँ?''

जिन्दगी गर कुछ रही तो नौजवानी फिर कहाँ?

इस शेर ने बालक केदार को यात्राओं के लिए प्रेरित किया। यद्यपि बालक केदार को नियमित शिक्षा प्राप्त करने का अवसर नही मिला फिर भी स्वाध्याय द्वारा ही इतिहास, संस्कृत, वेद, दर्शन, उपनिशद के साथ ही कई भाशाओं का ज्ञान भी प्राप्त कर लिया।

राहुल सांकृत्यायन को अपने बचपन से ही यात्रा करने का ऐसा शौक लगा कि जीवन पर्यन्त भ्रमण करते रहे और अपनी यात्रा काल में बहुविध संस्कृतियों का ज्ञान अर्जित किया। भारत देश के प्रत्येक भू भाग की यात्रा करने के साथ ही हर क्षेत्र की भाशा संस्कृति तथा विविध प्रकार की जानकारियाँ प्राप्त कर ज्ञानकोश को समृद्ध बनाया जो आगे जाकर उनके लिए उनकी विशिष्ट साहित्य सामग्री के रुप में प्रस्तुत हुआ।

पर्यटन की दृष्टि से श्री राहुल जी ने नेपाल, तिब्बत, लंका, रुस, इंग्लैण्ड, कोरिया, जापान, ईरान और चीन की यात्रा की तथा प्रत्येक देश में वहाँ के सांस्कृतिक परिवेश का गंभीर अध्ययन करने के साथ ही वहाँ के धर्म गुरुओं और साहित्यकारों से साक्षात्कार करते हुए साहित्य सृजन की प्रेरणा प्राप्त की, कई देशों की यात्राएं तो एकाधिक बार भी हुई। रुस, तिब्बत, ईरान कीयात्राओं से उनके जीवन में विशेश परिवर्तन हुआ।

देशभक्त सांकृत्यायन को लोग गरीबों का मसीहा कहा करते थे। किसान और मजदूरों के हित के लिए 1938 से 1944 तक निरन्तर आन्दोलनों में भाग लेते रहे तथा श्रमिक संगठनों का नेतृत्व भी किया।

कई बार भूख हड़ताले की। सत्याग्रह आन्दोलन में सक्रिय रहने के कारण इन्हें जेल भी जाना पड़ा। सन् 1940 से 1942 में निरन्तर जेल की यातनाएं सहन करते हुए मजदूर और किसानों के सहयोगी बने रहे। इन्ही दिनों कम्यूनिस्ट पार्टी के भी आप सदस्य बने। जेल से मुक्त होने के बाद भी आपने सोवियत रूस और चीन व लंका की यात्रा की। सन् 1942 के भारत छोड़ों आन्दोलन में भी आपने अपनी प्रमुख भूमिका का निर्वहन किया। उस समय सहजानन्द सरस्वती द्वारा प्रकाशित साप्ताहिक पत्र ''हुँकार'' के भी आप सम्पादक रहे। मजदूरों की सेवा के कारण जमीदारों द्वारा इन्हे आतंकित किया गया। उस समय भी राहुल जी निर्भीक होकर जन सेवा में संलग्न रहे।

यात्राएं करते रहने से प. सांकृत्यायन जी का जीवन ही बदल गया। उन्हें यात्राओं के कारण देश विदेश की प्राचीनतम और नवीनतम गतिविधियों का पूरा आंकलन करते हुए विभिन्न विशयों का ज्ञान हो गया और देश देशान्तरों की प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त करने में सफल रहे। पर्यटन का अनुभव प्राप्त करने के साथ ही आप विभिन्न प्रकार के साहित्य का निरन्तर स्वाध्याय करते रहे। इससे श्री राहुल जी का अन्दर का साहित्यकार जाग उठा और एक उच्च कोटि के साहित्यकार के रूप में आपकी पहचान बन गई। साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित रहते हुए गरीब, असहाय और मजदूर तथा किसानों की सेवा में सदा संलग्न रहे। इसीलिए साहित्य भी इन प्रवृत्तियों से प्रभावित रहा।

अध्यात्म की दृष्टि से सांकृत्यायन ने कट्टर सनातनी होते हुए भी सनातन धर्म में व्याप्त रुढ़ियों और अंध विश्वासों को प्रभावी नही होने दिया। धार्मिक तथा समाजगत कुप्रथाओं के उन्मूलन के लिए सदैव तत्पर रहे और तर्कशील रहते हुए शास्त्रोक्त तथ्यों को अंगीकार कर धर्माचरण हेतु कटिबद्ध रहे। आर्य समाज की विचारधारा तथा बौद्धधर्म की शिक्षाओं से आप प्रभावित रहते हुए आडम्बरों से ऊपर उठकर कर्मरत रहे। उन्होंने वेदान्त का गंभीर अध्ययन करने के बाद मंदिरों में बलि चढ़ाने की प्रथा के विरोध में अपनी आवाज बुलन्द करते हुए जन चेतना का सतत प्रयास किया। समाजवाद से प्रभावित होकर सुविधा परस्तों के खिलाफ आवाज उठायी। उन्होने मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित होकर एक पुस्तक भी लिखी ''वैज्ञानिक भौतिकवाद एवं दर्शन दिग्दर्शन'' ।

राहुल जी की सदैव से पर्यटन की वृत्ति रही है। इसी को आपने अध्ययन का आधार बनाते हुए बहुविज्ञ बने। बचपन ही से राहुल जी प्रतिभाषाली और प्रखर बुद्धि के धनी रहे। छोटी आयु में ही साहित्य सृजन की प्रेरणा प्राप्त कर ली। जहाँ से जो भी मिलता उसका आद्योपान्त अध्ययन, मनन व चिन्तन कर अपने ज्ञान कोश को समृद्ध बनाने का सदैव इनका प्रयास रहा। वाराणसी में रहते हुए अंग्रेजी तथा संस्कृत का गहन अध्ययन किया। आर्य समाज से संबद्ध होने के बाद समस्त वेद पुराणों और उपनिशदों का विशद् अध्ययन किया। बौद्ध धर्म से संबंद्ध साहित्य का पारायण करने के लिए पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, चीनी, जापानी, तिब्बती एवं सिहली भाशाओं की जानकारी कर ली और समस्त बौद्ध ग्रंथों का अध्ययन कर लिया। आपको बोद्ध साहित्य का गहन गंभीर अध्ययन होने के कारण ''त्रिपिटिकाचार्य'' की उपाधि से विभूषित किया गया। साम्यवादी विचारधारा के कारण कार्लमार्क्स, लेनिन तथा स्टालीन के जीवन दर्शन का परिचय प्राप्त किया।

इस प्रकार सांकृत्यायन ने पर्यटन, राजनीति, इतिहास, पुरातत्व, स्थापत्य और भाशा शास्त्र का विशिष्ट ज्ञान अर्जित कर लिया और बहुआयामी विशयों के अध्येता बन गये।पर्यटन की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए राहुल जी का कथन है कि ''कमर बाँध लो, घुमक्कड़ो! संसार तुम्हारे स्वागत के लिए बेकरार है'' इस दिशा में अग्रसर होते हुए उन्होने घुमक्कड़ शास्त्र की रचना भी कर ड़ाली। अपने लम्बे अनुभवों से उत्प्रेरित होकर उन्होंने अन्तर्विरोधों का सामना भी किया वे कहते थे ''बड़े की भाँति मैंने तुम्हे उपदेश दिया है वह पार उतरने के लिए है, सिर पर ढ़ोये ढोये फिरने के लिए नहीं

जो मालूम हुआ कि जिस चीज को मैं इतने दिनों से ढूंढ रहा हूँ, वह मिल गई।''

साहित्य शिल्पी श्री सांकृत्यायन ने सन् 1927 से ही अपने साहित्यिक जीवन का शुभारम्भ किया। वस्तुतः इन्होने अपनी किशोरावस्था से ही लेखन कार्य प्रारम्भ कर दिया था। वे निरन्तर लिखते रहे। उनके द्वारा विविध विशयों पर 150 से अधिक ग्रंथों की रचना हुई है। लेख, वृतान्त तथा निबंध आदि की संख्या तो हजारों में है। इनकी प्रमुख रचनाएं इस प्रकार है—कहानियाँ- सतमी के बच्चे, वोल्गा से गंगा, बहुरंगी मधुपुरी, कनैला की कथा। उपन्यास- बाईसवीं सदी, जीने के लिए, सिंह सेनापति, जय यौधेय, भागो नहीं, दुनिया को बदलो, मधुर स्वप्न, राजस्थानी रनिवास, विस्मृत यात्री, दिवोदास। आत्मकथा—मेरी जीवन यात्रा।

जीवनियाँ—सरदार पृथ्वीसिंह, नए भारत के नए नेता, बचपन की स्मृतियाँ, अतीत से वर्तमान, स्तालिन, लेनिन कार्ल मार्क्स, माओ-त्से-तुंग, घुमक्कड़ स्वामी, मेरे असहयोग के साथी, जिनका मैं कृतज्ञ, वीर चन्द्रसिंह, गढ़वाली, सिंहल घुमक्कड़ जयवर्धन, कप्तान लाल, सिंहल के वीर पुरुष, महामानव बुद्ध।

यात्रा साहित्य-लंका, जापान, इरान, किन्नर देश की ओर, चीन में क्या देखा, मेरी लद्दाख यात्रा, मेरी तिब्बत यात्रा, तिब्बत में सवा बर्ष, रूस में पच्चीस मास।

अन्य महत्त्वपूर्ण साहित्यिक कार्य—मज्झिम निकाय - हिंदी अनुवाद, दिघ निकाय - हिंदी अनुवाद

संयुत्त निकाय - हिंदी अनुवाद, ऋग्वैदिक आर्य, दर्शन दिग्दर्शन, तुम्हारी क्षय - भारतीय जाती व्यवस्था, चल चलन पर व्यंग, मध्य एसिया का इतिहास, दक्खिनी हिन्दी का व्याकरण।

राहुल सांकृत्यायन जी ने हिन्दी साहित्य के अलावा धर्म, दर्शन, लोक साहित्य, यात्रा वर्णन, जीवनी लेखन तथा सम्पादन कार्य आदि क्षेत्रों में कुशलता पूर्वक कार्य किया। इन्होंने संस्कृत एवं पाली के अनेक बौद्ध ग्रंथों का जो 2000 वर्ष पहले लुप्त हो गये थे उनका पता लगाकर धर्मकीर्ति, सुधाकर गुप्त, ज्ञानश्री, नागार्जुन (प्राचीन नालन्दा विश्वविद्यालय के अधिष्ठाता असंग, रत्नाकर, वसुबन्धु, शांतिरक्षित, रत्नकीर्ति और गुण प्रभु जैसे विद्वानो के यश को अमर कर दिया। राहुल जी की जीवन यात्रा पाँच खण्डों में कुल 2770 पृष्ठों में प्रकाशित हुई। हिन्दी भाषा और साहित्य के क्षेत्र में श्री सांकृत्यायन जी ने ''अपभ्रंश काव्य साहित्य'' तथा ''दक्षिणी हिन्दी साहित्य'' ग्रंथों की रचना के साथ ही हिन्दी कहानियाँ भी प्रस्तुत की। इन रचनाओं में पुरातन के प्रति प्रेम तथा इतिहास के प्रति गौरव गरिमा का दर्शन होता है। कई रचनाएं क्षेत्र व स्थानीयता को प्रकट करने वाली है। सांकृत्यायन जी के साहित्य में भाशा की सरलता, रोचकता तथा सर्वहारा वर्ग के प्रति संवेदनात्मक अभिव्यक्ति हैइसीलिए वे पाठकों के कण्ठहार बन गये।

पुरस्कार प्राप्ति की दृष्टि से निम्नांकित पुरस्कारों से विभूषित किया गया-

- महापण्डित- काशी पडिंत सभा।
- त्रिपिटकाचार्य- विद्यालंकार परिवेण, श्रीलंका।
- साहित्य वाचस्पति- हिन्दी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद।
- डी. लिट. (मानद) - विद्यालंकार यूनिवर्सिटी श्रीलंका।
- पद्मभूषण - भारत सरकार।

श्री राहुल सांकृत्यायन 14 अप्रैल 1963 में इस जरा धाम को छोड़ परलोक सिधार गये।

संगीत गुरु स्वामी हरिदास की संगीत चेतना

डॉ. संगीता घोष

सीनियर असिस्टेण्ट प्रोफेसर, मंचकला विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

विक्रम की सोलहवी शती ब्रजमण्डल के पुनरुत्थान का महत्वपूर्ण काल है। उस समय तक ब्रज ने ऐसे अनेक महापुरुष हुए जिनकी अपूर्व देन ने वहाँ के धर्म, साहित्य और कला कौशल को समुन्नत रूप प्रदान किया था। ब्रज के उन महापुरुषों में स्वामी हरिदास का नाम उल्लेखनीय है। वृन्दावन के महान सन्त स्वामी हरिदास जी संगीत शिरोमणि और सुविख्यात धर्माचार्य थे। स्वामी हरिदास जी मुगल सम्राट अकबर के काल में विद्यमान थे। उन्हें अकबरी दरबार के विख्यात गायक संगीत सम्राट तानसेन का संगीत गुरु भी कहा जाता है। मिराते सिकन्दरी व मिराते अकबरी नामक एक प्राचीन फारसी ग्रन्थ का नामोल्लेख किया जाता है जिसमें श्री सुदर्शन सिंह चक्र ने स्वामी जी के जीवन चरित्र का उल्लेख करते हुए लिखा है कि ''मिराते सिकन्दरी व मिराते अकबरी'' इस ग्रन्थ का कुछ भाग विक्रम संवत 1526 में लिखा गया था और शेष भाग सम्राट अकबर के समय में पूरा हुआ था। इसमें विस्तार से तत्कालीन इतिहास का वर्णन हुआ है, यह कई जिल्दों में है। इसमें श्री हरिदास जी तथा उनके जन्म संवत, जन्म स्थान, जाति, पिता आदि का वर्णन ग्रन्थ के छठवें जिल्द में पाया जाता है। कोई कारण नहीं कि इस ग्रन्थ को प्रमाणिक न माना जाय। इस ग्रन्थ के अनुसार स्वामी जी का जन्म पौष शुक्ला 13 भृगुवार संवत 1569 में हुआ। ऐतिहासिक घटनाओं का विवेचन करने से भी यह काल ठीक जान पड़ता है।[1]

मोहम्मद करम इमान ने अपने ग्रन्थ मअदनउलमुसिकी में तानसेन को हरिदास स्वामी नामक फकीर का शिष्य बताया है।[2] नागरीदास ने अपनी रचना पदप्रसंग माला में वृन्दावन वासी स्वामी हरिदास को ही तानसेन का गुरु घोषित किया है। उन्होंने लिखा है कि

एक समै अकबर पातसाह तानसेन सौं बुझि
जूं तैं कौन सौं गाइबो सीख्यो :
कोउ तोहू तै अधिक गावे है? तब वानैं कही
जू मैं कौन गनती में हूँ।
श्रीवृन्दावन में हरिदास जी नामै वैष्णव है,
तिनके गाइबे कौ हव शिष्य हूँ।[3]

स्वामी जी द्वारा गाये हुए पदों को नागरीदास जी विष्णु पद कहा है। यद्यपि स्वामी जी की रचनाओं को साधारणतः ध्रुपद ही कहा जाता है।

निजमत सिद्धान्त मध्यखण्ड के अनुसार -

संवत पंद्रहसं सैतींसा।
भावों शुक्ल अष्टमी दीसा।।
बुधवार मध्यात्न बिचारयौ।
श्री हरिदास प्रगट तनु वारयौ।।
गृह में वर्ष पच्चीस बिताये।
फिर वैराग्य त्याग उपजाये।।
सत्तर वर्ष तीन बनवासा।
गुप्त भाव कीनो परकासा।।[4]

स्वामी हरिदास जी की संगीत साधना

स्वामी हरिदास जी महान् सन्त होने के साथ-साथ उनके द्वारा रचित रचनाओं का अपना एक अलग

योगदान है जो उनकी परम्परा के भक्तों में वेदों के सामान मान्य रही है। स्वामी जी की प्रमाणिक रचनाओं में से 128 ध्रुपद माने जाते हैं इनमें से 18 सिद्धान्त के पद और 108 या 110 केलिमाल के नाम से प्रसिद्ध हैं। सिद्धान्त के पदों में किसी विशिष्ट दार्शनिक मत के निरूपण का प्रयास नहीं है वरन् उनमें ज्ञान, वैराग्य और भक्ति की सामान्य बातों का उल्लेख मिलता है तथा केलिमाल में स्वामी जी के उपास श्री श्यामाकुंज बिहारी के नित्य बिहार का श्रृंगारिक वर्णन मिलता है। स्वामी जी की रचनाएँ अन्य भक्त कवियों की भाँति ही गायन के साथ-साथ पठन-पाठन के लिए उपयुक्त पद के रूप में न होकर संगीत की विशिष्ट शास्त्रोक्त शैली ध्रुपद गायन के रूप में प्राप्त होती रही है। पदावलियों की रचनात्मक शैली, ध्रुपद तथा धमार शब्दों का प्रयोग, पाटाक्षरों व तालों की उपयोगिता के आधार पर ही 128 पदों की रचना की गयी। कविवर गोपाल कवि ने छन्दों के विशेषज्ञ कवियों का नामोल्लेख करते हुए पद और ध्रुपद में भेद माना है तथा हरिदास जी के समकालीन विशिष्ट रचयिताओं के रूप में क्रमशः सूरदास और हरिदास के नाम भी दिये हैं।

चंद जू की छंद छप्पै नाभा औ बेताल जू की।
कैसौ कौ कवित्त दोहा बिहारी के सुगाँस कौ।।
वल्लभरसिक की माँझ गिरधर कवि कुण्डलिया।
वाजिद अरिल्ल जो है अतिसै प्रकास कौ।।
रसरास रेखता और बात बीरबल जू की।
तुलसी की चौपाई और सलीक वेदव्यास कौ।।
भनत गुपाल ये जहान बीच जाहर हैं।
सूर कौ पद और ध्रुपद हरिदास कौ।।[5]

स्वामी हरिदास जी के ध्रुपद साधारण पाठक के लिए नहीं है वरन् संगीतज्ञों और साधकों के लिए है। लम्बी शब्द योजना, यति की विषमता और पंक्तियों का आकार गत न्यूनाधिकता से वे पढ़ने में अटपटे से मालूम होते हैं किन्तु ताल में ठीक होने से वे गायन के लिए सर्वथा उपयुक्त हैं। ध्रुपद शैली का अभ्यस्त गायक स्वामी हरिदास जी के पदों को भली प्रकार से गा सकता है। स्वामी हरिदास जी संगीत के महान आचार्य थे। संगीत के तीनों अंगों का बोध स्वामी हरिदास जी को होने के कारण गायन के साथ ही वादन और नृत्य की कलाओं में भी पारंगत थे। स्वामी जी संगीत के ध्रुपद शैली के आचार्य तो थे ही साथ ही जीवनपर्यन्त संगीत की साधना करते हुए संगीत के लौकिक मनोविनोद को निम्न धरातल से उठाकर उपासना के उच्च मंच पर प्रतिष्ठित किया।

कतिपय संगीतज्ञों की यह धारणा है कि स्वामी हरिदास और हरिदास गागू दोनों एक ही व्यक्ति थे। संगीतज्ञों के अतिरिक्त कुछ साहित्यिक विद्वानों का भी ऐसा ही मत है। श्री हरिहर निवास द्विवेदी स्वामी हरिदास जी को हरिदास गागू तो मानते हैं साथ ही उनकी डागुरी बानी का रहस्य बताते हुए उन्हें ग्वालियर के राजा डुंगरेन्द्र सिंह से सम्बन्धित भी सिद्ध करते हैं।[6] श्री नमर्देश्वर चतुर्वेदी जी ने स्वामी जी की कतिपय रचनाओं के साथ हरिदास गागू तथा अन्य हरिदासों की रचनाओं का सम्मिश्रण कर उन सबको एक ही व्यक्ति की कृतिया समझा है।[7]

ध्रुपद की चार बानी कही जाती है। तानसेन के एक ध्रुपद में स्वामी हरिदास जी के नाम और महत्व का इस प्रकार उल्लेख मिलता है-

बानी चारौं के व्यौहार सुनि लीजै हो गुनी जन,
तव पावै यह विद्या सार।
राजा गुवरहार, फौज खण्डहार, दीवान डागुर, बक्सी, नौहार।[8]

कुछ लोग उक्त बानियों के नाम क्रमशः डागुरी, पागुरी, डुण्डहारी और खण्डहारी कहते हैं जिनका कोई प्राचीन और विश्वसनीय आधार नहीं है। श्री शिवहरित में हरिदास डागुर और उनकी डागुरी बानी की परम्परा बतलाते हुए उल्लिखित किया है डागुरी बानी के सबसे पहले गायक हरिदास डागुर थे। वे स्वामी हरिदास के समकालीन और उन्हीं की तरह उच्च कोटि के गायक और भक्त थे। कृष्ण की लीला भूमि वृन्दावन में ही उनका निवास स्थान था। ध्रुपद में बँधे हुए उनके बहुत से पद भी हैं।[9]

डागुरी बानी के प्रचारक बाबा हरिदास डागुर का स्वामी हरिदास जी से सम्बन्ध नहीं है। स्वामी

हरिदास की रचनाओं में जहाँ उनके उपास्य श्यामाकुंज बिहारी की नित्य विहार लीलाओं का गायन दिखायी पड़ता है वहीं हरिदास डागुर की रचनाओं में विभिन्न देवी-देवताओं की स्तुति, नादगण के विचित्र रूपक और साधारण नायिकाओं का कथन मिलता है। श्री वी.एन. निगम ने संगीत पत्रिका के हरिदास अंक में शाहजहाँ के दरबारी गायक जगन्नाथ कविराय का एक ध्रुपद उद्धृत किया है जिसमें कतिपय विख्यात संगीतज्ञों का क्रमानुसार नामोल्लेख मिलता है। यदि यह क्रम कालानुसार है तो स्वामी हरिदास जी के समकालीन तानसेन से ही नहीं वरन् धौधीं से भी हरिदास डागुर परवर्ती सिद्ध होते हैं।

सर्व कला सम्पूरन, अति अपार विस्तार
नाद कौ नायक बैजू गौपाल।
ता पाछै बक्सू बिहंसि बस कीन्हौ महमू महि मंडल में
उदोत चहुँचक भरौ, डिढ़ विद्या निधान
सरस धरु करन डिढ़ ताल।।
भगवंत सुर भरन, रामदास जसु पायौ
तानसेन जगतगुरु कहायौ धौंधी बानी रसाल।
सुरति विलास हरिदास डागुर जगन्नाथ कविराय
तिनके पग परसिवे कौं स्याम राम रंग लाल।।[10]

स्वामी हरिदास जी और हरिदास डागुर एक ही व्यक्ति थे, इसमें संशय है। स्वामी हरिदास जी की प्रमाणिक रचनाओं की मुख्य कसौटी साम्प्रदायिक मान्यता है। सम्प्रदाय में स्वामी जी की प्रमाणिक कृतियों के रूप में केवल 128 ध्रुपद मान्य हैं जो सिद्धान्त और केलिमाल नामक रचनाओं में संकलित मिलते हैं जिनमें श्री हरिदास के स्वामी श्यामाकुंज बिहारी की छाप मिलती है। अनेक ध्रुपद उक्त रचनाओं में प्राप्त होते हैं। रागक्रम के अनुसार सिद्धान्त के 18 ध्रुपदों के राग क्रमशः इस प्रकार हैं-

विभास के 4,
बिलावल का 1,
आसावरी के 7,
कल्याण के 6 मिलाकर कुल 18 ध्रुपद प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार केलिमाल के 110 ध्रुपदों के राग क्रमशः इस प्रकार प्राप्त होते हैं -
कान्हणा के 30,
केदारा के 22,
कल्याण के 12,
सारंग के 11,
विभास के 1,
बिलावल के 2,
मल्लार के 8,
गौण के 2,
बसन्त के 5,

गौरी के 6, नट के 2 मिलाकर कुल 110 ध्रुपदों का प्रमाणिक विवरण मिलता है। इस राग विभाजन की प्रामाणकता के समर्थन में रचे हुए कवित्त इस प्रकार हैं-

अनन्य नृपति स्वामी हरिदास जू के पद,
रस अमल बीज बकुला न जासु में।
प्रथम राग कान्हरा में तीस (30) सुख-ईस बने,
बाईस (22) केदारा मांझ सरस रस रास में।।
बारह (12) कल्यान, ग्यारह (11) सारंग में सुर-बंधान,
दस (10) हैं विभास, द्वै(2) बिलावल प्रकास में।
आठ (8) है मलार, द्वै (2) गौड़, पाँच (5) हैं बसन्त
गौरी छह (6), नट जुग (2) छवि-पास में।। पद 1

इन राग-रागिनी में पद महा भीने रस,
है समरस के श्री बिहारिन-बिहारी जू।
स्वामी हरिदास जू विलास राग-रस ही के,
भाव लै दिखाई रीति, अति ही न्यारी जू।।
पढ़ें-सुनें विचारें भाव-सागर में डूबि
मरजीवा पैठ लावें, बिहारै प्यारी जू।।
और कोऊ पद होय, ताहि भेंट जानि लीजै,
जोजै पावें पद जुग नागरि बिहारी जू।। पद 2[11]

स्वामी हरिदास जी के अनुगामी भक्तों की एक सुव्यवस्थित परम्परा रही है जिसे हरिदासी या सखी सम्प्रदाय कहा जाता है। उनके शिष्यों में विट्ठलविपुल जी के अतिरिक्त 8 शिष्यों का भी उल्लेख श्री किशोरदास कृत निजमत सिद्धान्त में प्राप्त होता है। 1. दयालदास, 2. मनोहरदास, 3. मधुकरदास, 4. गोविन्ददास, 5. केशवदास, 6. श्री अनन्य, 7. मोहनदास और 8. बलदाउदास। सभी शिष्य स्वामी

के भक्ति मार्ग के अनुयायी तो थे ही इसके अतिरिक्त संगीत विषय के कतिपय शिष्य माने जाते हैं, जिनमें अकबरी दरबार के सुप्रसिद्ध गायक तानसेन का नाम भी उल्लेखनीय है। निजमत सिद्धान्त में तानसेन के शिष्यत्व और अकबर हरिदास मिलन की प्रचलित अनुश्रुतियों का विस्तार पूर्वक वर्णन मिलता है।[12]

स्वामी जी के प्रभावशाली व्यक्तित्व, उत्कट वैराग्य, अलौकिक संगीत और विशिष्ट भक्ति भाव के कारण उनके अनेक भक्त हो गए थे। स्वामी जी देहावसान के पश्चात् उनकी भक्त मण्डली ने एक सम्प्रदाय का रूप धारण कर लिया जिसमें विरक्त सन्तों तथा गृहस्थ गोस्वामियों के दो वर्ग हो गए। स्वामी जी के उपास्य श्री बिहारी जी की सेवा पूजा गृहस्थ गोस्वामी ही करते थे। उनके अधिकार में श्री बिहारी जी का मन्दिर और निधुबन का अधिकांश भाग रहता था। स्वामी हरिदास जी के अनुगामी भक्तों में श्री विट्ठल विपुल अपनी भक्तिभावना और वैराग्य वृत्ति के कारण अधिक प्रसिद्ध थे। स्वामी जी देहावसान के पश्चात् उनके श्रद्धालु भक्तों ने विट्ठल विपुल जी को ही स्वामी जी का उत्तराधिकारी बनाया। इसी क्रम में विट्ठल जी के शिष्य बिहारिनदास उत्तराधिकारी हुए हरिदासी सम्प्रदाय की विरक्त गद्दी की गुरु-शिष्य परम्परा वस्तुतः उनके समय से ही प्रचालित हुई जिसके अन्तर्गत अनेक विख्यात सन्त, रसिक भक्त और रस सिद्ध कवि हुए। स्वामी जी के विरक्त शिष्यों की परम्परा में अनेक तपस्वी और वाणीकार हुए हैं और उनकी वाणियाँ ब्रजभाषा भक्ति साहित्य की अमूलनिधि रही हैं। स्वामी हरिदास के शिष्यों में तानसेन द्वारा रचित पदों में अपने गुरु का प्रभाव दिखाई पड़ता है जिसमें उन्होंने स्वामी जी के उपास्य बांके बिहारी जी की स्तुति की पुष्टि की है। इससे यह प्रमाणित होता है कि तानसेन ने अवश्य ही स्वामी हरिदास जी दीक्षा ग्रहण की थी। तानसेन द्वारा रचित पद रागिनी भैरव तथा ताल-चौताल में इस प्रकार है-

अंतकाल कृपा करौ। हिया पर ठाढ़ी हरि नैन। कंवलापति मुरली अधर, ललित मधुर, बंकित भई बंक बिहारी। बदनखीन इन्द्रियहीन पाप सुवंरि अस्थिर प्रान, निराला प्रवर, विश्व अंधार, गेह छोड़ प्रान जात हरि।[13]

स्वामी जी संगीत साधना में संगीतात्मकता के साथ तन्मयता और आनन्द की अनुभूति संगीत उपासना का प्रमुख अंग बनी। सांगीतिक चेतना का दर्शन उनकी वाणी से अनेक स्थानों पर प्राप्त होता रहा ताताथई, औधरताल ताण्डवलास्य, राग-रागिनी जैसे अनेक सांगीतिक शब्दों का प्रयोग उनकी रचनाओं में दिखाई पड़ता है। गायन शैली की परम्परा ने ध्रुपद धमार, वाद्य यन्त्रों में बीन रवाब, झांझ, डफ इत्यादि तथा संगीत से सम्बन्धित सैद्धान्तिक और प्रयोगात्मक पक्ष के सौन्दर्य का सूक्ष्म भेद प्रकट करते हुए श्रुति, आलाप, ताल, सुर, तान, उरप-तिरप, लाग-डाँट, अंगहार का प्रयोग मिलता है। नाभादास जी ने तो स्वामी जी को गानकला गन्धर की संज्ञा से विभूषित किया था।

स्वामी हरिदास जी के केलिमाल में वर्णित सांगीतिक शब्दावलियों के दर्शन को कई पदों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

परस्पर राग जम्यौ, समेत किन्नरी मृदंग सुर तार
तीन हूँ सुरन के तान-बंधान, धुर-धुरपद अपार।
बिरस लेत धीरज न रहयौ, तिरप-लाग-डाट सुर मोरनि सार
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा जे-जे अंग की गति लेति,
अति निपुन अंग अंगहार।। पद 67 राग सारंग
कुजबिहारी नाँचत नीके, लाड़िली नँचावति नीके।
औघर ताल धरे श्री स्यामा, ताताथेई-ताताथेई, बोलत संग पीके।
ताण्डवलास और अंग को गनें, जे-जे रुचि उपजति जी के।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कौ मैरु सरस बन्यौ,
और रसगुनी परे फीके। पद 60 राग कल्याण
दिन डफ ताल बजावत गावत, भरत परस्पर छिन-छिन होरी।
अति सुकुमार बदन स्रम बरसत, भल मिले रसिक किसोर-किसोरी।

बातनि बतबतात, राग-रंग रमि रह्यौ, इत-उत चाह चलत तकि खोरी।
सुनि हरिदास तमाल स्याम सों, तला लपटि कंचन की थोरी। पद 19 राग कान्हरौ
राधे लि री हरि बोलत, कोकिला अलापत, सुर देत पंछी राग बन्यो।
जहाँ मोर काछ बांधे नृत करत, मेघ मृदंग बजावत बंधान गन्यो।
प्रकृति की कोऊ नाँही, यातै सुरति के उनमान गहि हौं आई मैं जन्यौ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबहारी की अटपटी बानि औरै कहत, कछू औरै भन्यो। पद 14 राग कान्हरौ

सन्दर्भ

1. श्री केलिमाल में प्रकाशित जीवन चरित्र, पृ. 20
2. ध्रुपद और उसका विकास, आचार्य बृहस्पति, पृ. 194
3. नागरी दास, पद प्रसंग लीला, पृ. 385
4. श्री वासुदेव गोस्वामी कृत भक्त कवि व्यास जी, पृ. 33
5. स्वामी हरिदास जी, प्रभुदयाल मीतल, पृ. 16
6. मध्यदेशीय भाषा (ग्वालियरीय), हरिहर निवास द्विवेदी, पृ. 86-87
7. संगीतज्ञ कवियों की हिन्दी रचनाएँ, नर्मदेश्वर चतुर्वेदी, पृ. 51-57
8. संगीत सम्राट तानसेन, ध्रुपद संख्या 133, पृ. 94
9. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 22 सितम्बर 1957 में प्रकाशित श्री शिवहरित का लेख 'ध्रुपद के डागुर वाणी के गायक'
10. संगीत फरवरी 1959 हरिदास अंक, पृ.30
11. श्री केलिमाल की फलस्तुति
12. निजमत सिद्धान्त, मध्यखण्ड, पृ. 89-95
13. डॉ. सुनीति कुमार चाटुर्ज्या, कविवरु तानसेन, विश्ववाणी, 1946, पृ. 373,

कभी हार न मानने वाला कलाकार (आरा)

अरविन्द कुमार

सहायक अध्यापक (कला), लोनी इंटर कॉलेज, लोनी, गाज़ियाबाद

हमारी इच्छाशक्ति हमें मज़बूत बनाती है हर मुश्किल से लड़ना सिखाती है, यह जितनी दृढ़ होगी हम उतने ही मज़बूत होंगे। दृढ़ इच्छा-शक्ति से, नाक़ामियों से, पैदा हुआ अवसाद ज्यादा देर नहीं ठहर पाता। कुछ ऐसी ही दृढ़ इच्छा शक्ति लेकर पैदा हुए थे प्रसिद्ध भारतीय चित्रकार कृष्णजी हवलाजी आरा (चित्र 1.), जिन्हे लोग 'के. एच. आरा' अथवा 'आरा' के नाम से भी जानते हैं। आरा का जन्म ही विपन्नावस्था में हुआ था। लगभग तीन वर्ष की आयु में ही इनकी माता का देहांत हो गया। कुछ समय तक इनकी नानी नें इनका पालन पोषण किया। इनके पिता ड्राईवर थे। घर की माली हालत इतनी ख़राब थी कि मात्र सात वर्ष की आयु में ही रोजी-रोटी की तलाश में ये भागकर मुंबई आ गए थे।

आरा तब शायद दस वर्ष के ही रहे होंगे जब पिता का साया भी इनके सर से उठ गया। आरा अनाथ हो गए। एक अबोध बालक के लिए इससे बड़ी विपत्ति और क्या हो सकती थी? लेकिन बालक आरा नें हर विपत्ति का डटकर सामना किया। हार नहीं मानी। मुंबई आकर इनके सामने सबसे बड़ी समस्या रहने की थी, अतः ये लोगों के घरों में नौकर बनकर रहे। झाड़ू-पौछा, साफ-सफ़ाई से लेकर घर के तमाम छोटे-मोटे काम किए पर कभी गर्दिशों में डूबे नहीं। किसी भी मुसीबत में टूटे नहीं। सारे काम करने के बाद अगर वक़्त मिलता, तो चित्रांकन भी किया करते। कई ठिकाने बदले, कई मालिक बदले पर चित्रांकन नहीं छोड़ा।

विधाता सब देखता है, किसी की मेहनत बेकार नहीं जाने देता। आख़िरकार ईश्वर की दया दृष्टि से इनके चित्रों पर एक दिन 'द टाइम्स ऑफ इंडिया' के कला समीक्षक 'रूड़ी वॉन लीडेन' तथा 'इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इंडिया' के संपादक 'वाल्टर लैंगहैमर' की नज़र पड़ गई। इन दो लोगों के सहयोग से, आरा को कला के क्षेत्र में आगे बढ़ने की और हिम्मत मिली। लीडेन और लैंगहैमर नें न केवल इन्हे कला की बारीकियों से अवगत कराया बल्कि इनकी कला शिक्षा की व्यवस्था भी की।

इन्ही दिनों आरा को एक जापानी फर्म में कार सफाई का काम भी मिल गया। कंपनी की ओर से ही इनके रहने की व्यवस्था भी की गई थी। यह लगभग दस बाई दस का एक छोटा सा कमरा था। हालांकि यह फर्म तो द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान बंद हो गई लेकिन कंपनी नें आरा को रहने के लिए, आवास के रूप में, जो छोटा सा कमरा दिया था उसमें आरा तमाम उम्र रहे।

ईश्वर मदद करने कभी खुद नहीं आता। लेकिन आपकी तपस्या से प्रभावित होकर वह आपकी मदद के लिए किसी न किसी को अवश्य भेजता है। आरा के काम पर भी शायद लीडेन की नज़र यूं ही नहीं पड़ी थी। लीडेन ही इनके काम को घर की चार-दीवारी से बाहर लेकर आए। वे समय-समय पर आरा को चित्रांकन के लिए प्रोत्साहित करते और उनकी आर्थिक मदद भी करते। साथ ही उनके विषय में लेख भी लिखते। आरा भी भरपूर मेहनत करते।

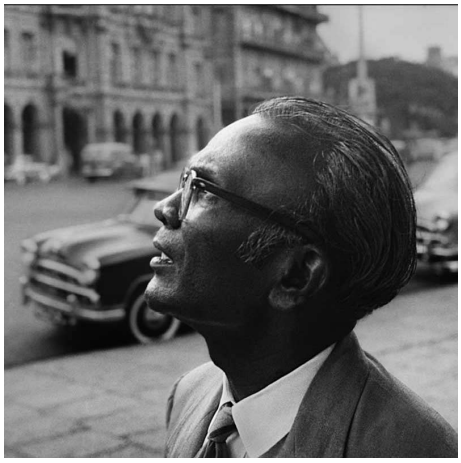

(चित्र 1. चित्रकार के. एच. आरा)

धीरे-धीरे इन्होंनें प्रदर्शनियों में शिरकत करना आरंभ किया और खुद के 'सोलो शो' भी आयोजित किए। अपनी लगन और जीतोड़ मेहनत एवं दृढ़ इच्छा-शक्ति से वे जल्दी ही मुंबई के कलाकारों के बीच अपनी पहचान बनाने में सफल रहे। अपने 'वस्तु-चित्रों' एवं 'नग्न-महिला' चित्रों के लिए इन्हे अपूर्व ख्याति प्राप्त हुई। वाद-विवाद हुए, आरोप-प्रत्यारोप लगे, निंदा हुई, यहाँ तक कि इनको अशिक्षित, अपरिपक्व और 'अनाड़ी कलाकार' तक कहा गया किन्तु आलोचनाओं को दरकिनार करके आरा शान्त भाव से कला साधना में लगे रहे।

1944 में अपने चित्र 'मराठा बैटल' पर इन्हे 'गवर्नर का पुरस्कार' प्राप्त हुआ तथा 1946 में ये यूनेस्को के प्रतिष्ठित 'सर हेनरी नाइट पुरस्कार' से भी सम्मानित हुए। अनेक पुरस्कार एवं सम्मान प्राप्त करने के बाद इनका चयन 1961 के भारत एवं बुल्गारिया सरकार के 'आर्टिस्ट एक्स्चेंज प्रोग्राम' में भारत के प्रतिनिधि कलाकार के रूप में हुआ। यही नहीं, 1984 में इन्हे भारत के सर्वोच्च कला सम्मान 'ललित कला अकादमी रत्न' से सम्मानित भी किया गया। किन्तु दुर्भाग्य से एक वर्ष पश्चात ही, 1985 में हार्ट अटैक से इनका निधन हो गया।

लेकिन आरा जाते-जाते यह एहसास करा गये कि अगर हौसलें बुलंद हों, इच्छा-शक्ति प्रबल हो और हृदय में लगन हो तो ऐसा कोई आसमान नहीं जिसे छुआ न जा सके। आरा का जीवन उन संघर्षरत युवाओं के लिए एक मिशाल है जो थोड़ी सी परेशानियाँ आते ही विचलित हो जाते हैं, टूट जाते हैं, बिखर जाते हैं और कभी-कभी तो अवसाद-ग्रस्त होकर मृत्यु को भी गले लगा लेते हैं।

विपरीत परिस्थितियों में आरा दूसरों के घरों में नौकर बनकर काम करते हैं पर 'वान गॉग' की तरह खुद को गोली नहीं मारते, 'मार्क रोथको' की तरह अपने हाथ की नस नहीं काटते न ही 'रिचर्ड गेर्स्टल' की तरह फांसी के फंदे पर झूलते हैं। वह 'थॉमस फोस्टर', 'हरमन ब्रूड', 'ई. डेविस', 'विलियम कोफिन', 'हेनरी अलेक्जेंडर', 'आर्शी गोर्की', 'रोनाल्ड ब्रूट किटाज', 'एडमंड थॉमस कुइन' 'एजरा विंटर', 'लुडविग क्रिशनर', 'मैक्स कुर्जवेल', 'विल्हो हेनरिक लम्पी' तथा 'फोक्को' जैसे कलाकारों की तरह मौत को गले नहीं लगाते बल्कि संघर्ष का रास्ता चुनते हैं।

अल्प आयु में ही अनाथ हो जाने के बावजूद आरा विपरीत परिस्थितियों की अग्नि में स्वयं को तपाते हैं और फिर कुन्दन की तरह चमक उठते हैं। संभवतः इसीलिए दुनिया नें आरा को सलाम किया। 'सी. एम. सी. आर्ट गैलरी, नई दिल्ली' नें श्रद्धांजलि स्वरूप इनके चित्रों की एक एकल प्रदर्शनी का आयोजन किया। वर्ष 1996 में जब 'राष्ट्रीय आधुनिक कला वीथिका' नें अपनी द्वितीय शाखा, मुंबई में खोली तो उद्घाटन समारोह में आरा के चित्रों की एकल प्रदर्शनी का भी आयोजन किया गया। इसके बाद से मुख्य रूप से 'दिल्ली आर्ट गैलरी, नई दिल्ली' तथा 'किरण नाड़ार म्यूज़ियम ऑफ आर्ट' जैसी अनेक कला दीर्घाए देश-विदेश में इनके चित्रों का लगातार प्रदर्शन कर रहीं हैं। अनेक संस्थाए इन पर पुस्तकें और मोनोग्राम प्रकाशित कर चुकी हैं। आरा की प्रदर्शनियाँ और उन पर लेखन उनकी मृत्यु के वर्षों बाद, बा-दस्तूर आज भी जारी है।

त्रिलोचन की सामाजिक सचेतनता और वैश्विकरण

पुष्पा मल्ला

एपीएचडी शोधार्थी, पश्चिम बंगाल

समाज एक ऐसा शब्द है जिसकी संरचना सदियों से होती आ रही है। इसके संदर्भ में संपूर्णता जैसे शब्द का प्रयोग करना अपने वर्तमान समय के साथ बईमानी करने जैसा होगा। यह हर पल प्रति-पल खुद को सवांरती हैए अपने रूप सौंदर्य के मापदंड को बदलती रहती है। समय के अनुसार बदलते रूप ही इसकी जीवंतता व गतिशीलता का आधार है और इसी समाज की व्यापकता का आकलन केवल साहित्य अध्ययन द्वारा संभव है। साहित्यए जिस युग का होता है एउसी युग समाज के नब्ज को महसूस किया जा सकता है। इस प्रकार यह प्रमाणित सत्य है कि साहित्य केवल तथ्यों का विवरण नहीं है अपितु उन तथ्यों की आधारशिला का अध्ययन है। अतः यह मानकर आगे बढ़ सकते हैं कि साहित्य सृजन के दाता उस रचना संसार को रचते हैं जिसमें एक विशेष युग की साँसे स्वरक्षा की स्थिति में उपस्थित रहती है। स्वरक्षा इस अर्थ में कि जब किसी विशेष कृति की प्रासंगिकता पर सवाल उठाए जाते हैं या उसे विचार विमर्श के घेरे में लिया जाता है ए तो उसकी वकालत करने के लिए उसका रचयिता उसके बगल में बैठा हुआ नहीं रहता है। स्वयं कृति को ही अपनी वकालत करनी होती है।

रचना की महत्ता इस बात पर तय की जाती है कि वह किस हद तक तथा कितनी गंभीरता से जन-जीवन को प्रभावित करने में सक्षम रही। साहित्य और समाज के अन्तर्सम्बन्धों का आधार मानवीय चेतना तथा उससे संबंधित विचारधाराएं हैं। इन्हीं विचारधारों का परिणाम है हिंदी का साहित्य इतिहास तथा उसके विभिन्न वाद। जिनमें प्रगतिवाद प्रमुख वादों में से एक है जिसने प्रगतिशील विचारधाराओं को अपनाते हुए अपने सृजन संसार का विस्तार किया हैए जिसके मूल में साधारण मानस है। यह समता की मांग को लेकर आगे बढ़ता है। यह इस सोच को लेकर आगे बढ़ता है कि भारतीय समाज मुख्यतः दो वर्गों में बटा है । पहला शोषित और दूजा शोषक तथा वर्ग भेद की वजह से इनका श्रम भी बट गया है। इनमें से एक वर्ग कमजोर है और दूसरा ताकतवर। प्रगतिशील लेखक इन्हीं दो वर्गों के बीच समता को लाना चाहता है जिससे कि कोई किसी पर अपना मालिकाना हक जताकरए पारिश्रमिक हक का हनन न कर सके और समाज में संतुलन बना रहे। इस तरह की विचारधारा को मार्क्सवादी विचारधारा कहकर भी संबोधित किया गया है। त्रिलोचन इसी विचारधारा के कवि हैं। जिनका जन्म 20अगस्त 1917 में उत्तर प्रदेश हुआ। इन्होंने आधुनिक हिंदी कविता में प्रगतिशील त्रयी के प्रमुख स्तंभ तथा हिंदी सॉनेट के साधक के रूप में अपनी खास पहचान बनाई है।

20वीं सदी के इस कवि की रचनाओं में वैश्वीकरण की भोगवादी संस्कृति तथा पूंजीवाद से आयातित बाजारवाद के अंधे कुएँ से अपने समाज की सामाजिक व सांस्कृतिक पहचान को बचाए रखने की तत्परता परिलक्षित होती है। यह साधारण सी बात है कि हर युग का रचनाकार अपने युग निर्माण के तत्वों से अछूता नहीं रहता। अतः युग चित्रण का होना कोई नई बात नहीं है पर हां

त्रिलोचन इस संदर्भ में खास थे कि उन्होंने अपनी जातीय अस्मिता को वैश्वीकरण के हवाले होने नहीं दिया तथा अपनी जातीय अस्मिता के नाम पर सम्पूर्ण हिंदी जाती की सामाजिकता की रक्षा की। ताप के ताये हुए दिन में संकलित विरोधाभास कविता में कवि की सामाजिकता अभिव्यंजित हुई है। यथा,

एक विरोधाभास त्रिलोचन है/...- मेरी और तमाशे मैं देखुंगा। मेरी छाती वज्र की बनी हैए प्रहार होए फिर प्रहार हो/... औरों के दुख दर्द वह नहीं सह पाता है / यथाशक्ति जितना बनता है कर जाता है।

त्रिलोचन की सामाजिक प्रतिबद्धता, उनके सामाजिक सचेतनता के प्रमाण हैं। वह अपने वर्तमान परिस्थितियों के प्रति सजग थे तथा कविता की विषय-वस्तु का चयन भी वर्तमान युग से करते थे। उनके नजरों में ज्ञानी और जागरूक वही थे जो अपने वर्तमान से वाकिफ हो। वे स्वयं कहते हैं कि ''पुरानी पोथियाँ उगलना ज्ञान नहीं है, वर्तमान जीवन को समझना ज्ञान है, इसी को मैं कहता हूँ कि आप जो प्रश्न सुन रहे हैं, उसका कुछ जवाब है आपके पास? और कितने अधिक प्रश्न आप सुन पाते हैं? अपने युग के अधिक से अधिक प्रश्न जो सुन पता हैए वही बड़ा हो सकता है।''[2] (त्रिलोचन, मेरे साक्षात्कार, प्रतिबद्धता जनजीवन से होनी चाहिए, रामजी राय के साथ बातचीत, प्रथम संस्करण 2004, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 105)

वैश्वीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत पूरे विश्व की आर्थिक, वैज्ञानिक, राजनीतिक, सामाजिक आदि ताकते एकजुट होकर संयोजित हो जाती है। भूमंडलीकरण शब्द को परिभाषित करते हुए प्रभा खेतान लिखती हैं कि ''भूमंडलीकरण तो वह बिजली है जिससे आपका घर रौशन भी हो सकता है और आपके घर में आग भी लग सकती है'' (पृ.14)...''भूमंडलीकरण वह प्रक्रिया है जो वित्त-पूंजी के निवेशए उत्पादन और बाजार द्वारा राष्ट्रीय सीमा में ही वर्चस्व नहीं, बल्कि राष्ट्रीय सीमा से परे भूमंडलीय आधार पर निरंतर अपना प्रसार करना चाहती है। इसका निर्णय-क्षेत्र सारी दुनिया है।'' पृ. 15 (खेतान, प्रभा, भूमंडलीकरण : धार्मिक समाज, पूंजीवाद समाज और राष्ट्र, सामयिक प्रकाशन, संस्करण 2014, नई दिल्ली, पृ. 14 और 15)

प्रभा खेतान ने अपनी किताब में भूमंडलीकरण के तीन चरण का उल्लेख करते हुए यह कहा है कि फिलहाल हम तीसरे चरण में हैं। यथा, ''पहला चरण अन्तर्राष्ट्रीयकरण का था, जो 1870 से 1914 के बीच का समय घेरता है।...1950 से 1960 तक मात्र एक दशक की अवधि वाला दूसरा दौर बहुराष्ट्रीयकरण का रहा।... भूमंडलीकरण की एक और भी विशिष्टता है—उत्पादन-व्यवस्था के ढांचे का परा-राष्ट्रीय नेटवर्क। कोई भी कंपनी भूगोल में सीमित नहीं है 'सर्विस सेंटर' (पृ. 15, 16 और 17) (उपरोक्त)

वैश्वीकरण में वैश्विक भाव बोध की प्रबलता रहती है। यह राष्ट्रीयता, क्षेत्रीयता और स्थानीयता को निष्कासित कर वैश्विकता को बढ़ावा देती है। पूरे विश्व को विश्व गांव में परिवर्तित कर हर एक देश के गांव में अपनी उपस्थिति कायम करना चाहती है। 'विश्व गांव' शब्द के सम्मोहन से जरा बचके! यह शब्द जितना मोहक और अपनत्व लिए हुआ है उसका असर उतना ही घातक है। वैश्वीकरण या भूमंडलीकरण के नाम पर ताकतवर देश कमजोर देशों को अपने अधीन करना चाहते हैं। कहते हैं नएकि इतिहास दोहराता है। वर्तमान स्थिति को देखते हुए उक्त कथन सच-सा प्रतीत हो रहा है।

भूमंडलीकरण के प्रभावस्वरूप 21वीं सदी की सामाजिक स्थिति का जिक्र त्रिलोचन ने बहुत पहले ही कर दिया था। सबको यह उम्मीद थी कि स्वतंत्र प्राप्ति के बाद सबको रोटी, कपड़ा और मकान मिलेगा पर दुर्भाग्यवश आज भी हमारा समाज रोटी, कपड़ा और मकान के लिए दर-दर की ठोकरे खा रहा है बल्कि बाजारवाद के चलते स्थिति और ज्यादा गंभीर हो गई है। सांस्कृतिक अस्तित्व तक बिकने को तैयार बैठी है। उम्मीद, जहां समस्या के समाधान की थी वहां समस्याओं के न सुलझने पर आत्महत्या की स्थिति आ पड़ी है। जिस औपनिवेशिकता से बचने के लिए न जाने कितने सालों तक संघर्ष किया गया आज उसी औपनिवेशिकता के बंधन को सहर्ष

विकास के नाम पर अपनाया जा रहा है। प्रभा खेतान का सही कहना है, ''भूमंडलीय सिंथेसिस का दावा एक प्रकार से पश्चिमी सभ्यता में दूसरे की संस्कृति को सोखने और सुखाने के मायावी दावा है. ..भूमंडलीकरण के नाम पर वस्तुतः यह नव-पश्चिमीकरण है, जिसमें हम सबको रंगा जा रहा है।'' (पृ.11) अतः वैश्वीकरण एक वर्चस्ववादी संस्कृति को प्रसारित करने की चाल है। जिससे विकास तो दूर गरीब और गरीब होता जा रहा है और किसान आत्महत्या करने को मजबूर। त्रिलोचन की कर्मठता देखिए वे फिर भी हार नहीं मानते और लगे हुए हैं, उस जनपद को जिलाये रखने के लिए जो समय की मार से बेहाल हो अपने ही समाज से कट गया है। यथा,

उस जनपद का कवि हूँ जो भूखा दूखा है,/ नंगा है, अनजान है, कला नहीं जानता / कैसी होती है क्या है, वह नहीं मानता / कविता कुछ भी दे सकती है।/ कब सुख है / उसके जीवन का सोता,/ इतिहास ही बता सकता है,/वह उदासीन बिल्कुल अपने से / अपने समाज से है। (उस जनपद के कवि हूँ)

कवि ने कविताओं में विचारधारा की अपेक्षा अंतर्मन के भावों को प्रमुखता दी है। भले ही उन्हें प्रगतिशील या मार्क्सवादी कवि के कोटे में रखा गया हो। वे इस बात के पक्ष में कभी न थे कि विचारधारा का समर्थन या प्रचार-प्रसार करने के लिए कविता लिखी जाए। कवि की प्रतिबद्धता उनके स्वयं के विचारों से था ना कि किसी विचारधारा के विचारों से। मेरे साक्षात्कार में वे कहते हैं कि ''... और किसी विचारधारा का समर्थन करने के लिए अगर आप कविता लिखें, तो याद रखिए, आप कवि कम हैं, उस विचारधारा के अनुवर्ती हैं, भले ही यह विचारधारा आपकी बुद्धि को स्वीकार्य हो गई हो। इसीलिए जब लोगों ने अपने को प्रतिबद्ध कहना शुरू किया तो मैंने कहा कि प्रतिबद्धता जो है, मेरे वे विचार हैं जो मेरे अंदर हैं, उनके लिए किसी घोषणा की जरूरत नहीं है। मेरी कविता लोग पढ़ेंगे तो कविता के बतौर पढ़ेंगे, मेरे विचारों के लिए नहीं।''[3] (पृ. 59)

समाज को लेकर उनकी चिंतन धारा की गहनता इस बात से लगाई जा सकती है कि उन्होंने अपनी कविताओं में जिस किसी पात्र का उल्लेख किया हैए उसके जगह पर खुद को रखकर देखा है। निःसंदेह उनका काव्य लोक कल्पना निर्मित नहीं है ए वह तो तत्कालीन समाज का यथार्थ धरातल है। यथा, कवि के ही कलम से, ''मैं जो भी जीवन पकड़ता हूँ- चाहे गांव का हो, चाहे शहर का—उसमें अपने को रखकर देखता हूँ।''[4] (त्रिलोचन मेरे साक्षात्कार, हमारे अपने जनपद के कवि ए मंगलेश डबराल के साथ बातचीत, 2004, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.59, पृ. 61)

भूमंडलीकरण की वजह से समाज में विकल्पों की भरमार है और हर कोई एक स्वतंत्र चेता बनकर अपने जीवन शैली का चुनाव कर रहा है पर फिर भी अकेले रहने को विवश। यथा,

आज मैं अकेला हूँ / अकेले रहा नहीं जाता। (संग्रह धरती, कविता - आज मैं अकेला हूँ)

कवि स्पष्तः कहते हैं कि यदि मुक्ति चाहते हो तो स्वयं आगे बढ़ो ''दीवारें दीवारें दीवारें दीवारें/ चारों ओर खड़ी हैं।/ तुम चुपचाप खड़े हो/ हाथ धरे छाती पर, मानो वहीं गड़े हो। /मुक्ति चाहते हो तो आओ धक्के मारें/ और ढ़हा दें/ उद्यम करते कभी न हारें/ ऐसे वैसे आघातों से/ स्तब्ध पड़े हो। (उस जनपद का कवि हूँ, कविता- दीवारें दीवारें दीवारें दीवारें)

निष्कर्षतः प्रगतिशील धारा के त्रयी त्रिलोचन का काव्य लोक उस लोक को लेकर उपस्थित हुआ है जो राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक आपा-धापी के चलते खुद को अविश्वसनीय दृष्टि से देखने को विवश हो रहा है और कवि सांस्कृतिक स्वायत्तता को के बल पर बुनियाद की तलाश कर उनके जीने की जिजीविषा को बचाये रखना चाहते हैं। इनकी कविताओं में वर्तमान सामज के भूमंडलीय वातारण के संभावित संकट का भी चित्रण हुआ है। अतः इनकी कविताओं में सामाजिक सचेतनता स्पष्टतः

परिलक्षित हुई है। राजेश जोशी सही कहते हैं, ''त्रिलोचन हिन्दीभाषी अंचल की जातीय चेतना के कवि है।'' (स. प्रसाद, गोविंद, त्रिलोचन के बारे में, जोशी, राजेश, जब देखा तब जीवन देखा, वाणी प्रकाशन, प्रथम प्रकाशन 1994, नई दिल्ली, पृ. 189) सामाजिकता, सामूहिकता और मानवीय चेतना की आधारभूमि पर रचित कविताएं समाज के उस सौंदर्य को व्यक्त करती हुई नजर आती है जिसके सौंदर्य को देख मन कभी अघाता नहीं है। यथा,

मैं
तुम्हें निहारता
अघाता नहीं (संग्रह अघान, कविया सौंदर्य)

सन्दर्भ रू

1. त्रिलोचन, मेरे साक्षात्कार, किताबघर प्रकाशन, प्रथम संस्करण 22004, नई दिल्ली।
2. स. प्रसाद, गोबिन्द, त्रिलोचन के बारे में, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1994, नई दिल्ली।
3. खेतान, प्रभा, भूमंडलीकरण : ब्रांड संस्कृति और राष्ट्र, संस्करण 2014, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. दुबे, श्यामाचरण, परंपरा इतिहास-बोध और संस्कृति, पांचवीं आवृत्ति 2014, प्रथम संस्करण 1991, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, हिंदी साहित्य : उद्‌भव और विकास, दसवीं आवृत्ति 2010, प्रथम संस्करण 1952, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. डॉ. नगेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास तैतीसवां संस्करण 2007, प्रथम संस्करण 1973, मयूर पेपरबैक्स, नई दिल्ली।
7. स. त्रिपाठी, आशीष, सिंह, नामवर, कविता की जमीन और जमीन की कविता, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2010, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

पत्रिकाः

1. स. धूमकेतु, जयप्रकाश, अभिनव कदम 36-37 (संयुक्तांक), ISSN: 2229-4767, RNI NO. 72297/99, राहुल सांकृत्यायन सृजन पीठ, उत्तर

अनुभूति

विरल अनुभवों की सूक्ष्म ज्यामिति का काव्य संसार

डॉ. मुकेश कुमार मिरोठा

सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
जामिया मिल्लिया इस्लामिया

कविता विविधरूपण होती है। दृश्य जगत में हम जितना देख पाते है, उतना प्रकाश हमारे अन्तर्मन में भर जाता है। शेष स्याह जगत का हिस्सा बना रह जाता है। इस स्याह जगत को कविताई के माध्यम से हमारे सामने लाने में असंघोष जी के काव्य संग्रह उल्लेखनीय है, समीचीन है। वस्तुतः परम्परा, संस्कृति और साहित्य का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होता है। इनमें निरन्तरता और सहज गतिशीलता का सातत्य विद्यमान रहता है। कविता और ईश्वर की मौत वैचारिक और आलोचकीय संसार में बहुत पहले ही घोषित हो चुकी थी यद्यपि समुदाय विशेष के लिए उसके मायने पहले भी रहस्यात्मक ही रहे हैं। साहित्य की दुनिया भद्रलोक की दुनिया थी और ईश्वरीय अवधारणा या संकल्पना अस्पृश्यता तक सीमित था। दोनों जगह उसके लिए निषिद्ध क्षेत्र थे। सामाजिक जीवन के झंझावातों से अहर्निश जूझता समुदाय उजाले के लिए लगातार प्रतिरोध करता रहा। ऐसे समुदाय के लिए सक्रियता, समरसता, समता, चेतना के अन्तः वाहक बने। संवेदना सम्पृक्त उसका यथार्थ, साहित्य के माध्यम से सामने आने लगा। अस्मिता के लिए लड़ने का संकल्प, सम्मान हेतु प्रतिबद्ध, उपेक्षा-अपमान का प्रतिरोध, तमाम विसंगतियों का बेबाक चित्रण, युगीन बोध को शब्दबद्ध करना और सौन्दर्यशास्त्र के नवीन प्रतिमानों पर आधारित लेखन ने समुदाय विशेष की पीड़ा को अधिक सशक्त और वैश्वीकृत बनाया है। वरिष्ठ कवि असंग घोष का काव्य लोक भी इस दृष्टि पर खरा उतरता है।

असंग घोष अपने पहले काव्य संग्रह 'खामोश नहीं हूँ मैं' से ही दलित कविता में उपस्थिति दर्ज कराने में सफल होते हैं। अब तक के समस्त प्रकाशित काव्य संग्रह उनके अनुभवों की दास्तान सामने रखते हैं। 'खामोश नहीं हूँ मैं' उनकी दृढ़ आवाज़ को दर्शाता है तो 'हम गवाही देंगे' काव्य संग्रह समय की अदालत में उनकी वैचारिक प्रतिबद्धता को स्पष्ट करता है। 'समय को इतिहास लिखने दो' काव्य संकलन स्वयं द्वारा नवीन इतिहास लेखन का मार्ग प्रशस्त करता है। इस कार्य में आने वाले व्यवधानों को 'हम ही हटायेंगे कोहरा' काव्य संग्रह उल्लेखित, संकेतित करता है। अपने काव्य संग्रह 'ईश्वर की मौत' में समुदाय हित, सम्मान और समता के लिए 'ईश्वर की मौत' की बात करते हैं। उनका नवीनतम काव्य संग्रह 'अब मैं साँस ले रहा हूँ' व्यवस्था परिवर्तन का परिचायक है। अपनी धरती, अपने लोग, ससम्मान, वैचारिकी के अन्तर्जाल से मुक्त होकर श्वास ले सकें। कवि की यह उद्देश्यात्मक भावना समानता के सिद्धान्तों के अनुकूल हैं। वे गजबजाती दुनिया में आत्मसम्मान, आत्मसंघर्ष की बात करते हैं। यही तथ्य उनकी व्यष्टि में समष्टि भावना का सूचक भी है। उनके सभी काव्य संग्रह मनुष्यता के विकसित राग की बात करते हैं। उनके यहाँ पीड़ा का रूदन है वो संयमित बेशक है लेकिन भाव और अर्थव्याप्ति में सर्वश्रेष्ठ है। वे अपनी कविताओं में इतिहास के स्याह पन्नों से निकलते उजास और उसकी प्राप्ति के किए सतत संघर्ष की बात करते हैं। वे वर्तमान वक्त की हाशियाकृत

व्यवस्था की व्याख्या करते हैं। इसमें उनकी भाषा सहायक होती है। कविता की प्रभावशाली और जीवंत दुनिया उनके उठाए सवालों से दो-चार होती है तो और सशक्त होकर साहित्य में नए तेवर प्रस्तुत करने लगती है।इस प्रकार हम कह सकते हैं कि असंग घोष केवल कवि मात्रा नहीं है। उनके पास वैचारिकी की समझ, समृद्ध ज्ञान भण्डार और इतिहास का विशद अधययन भी है।

असंगघोष की कविता क्रान्तिधर्मी कविता है। परम्परा, धर्म के तमाम प्रतिमानों को नकारता कवि विद्रोह, विरोध की बात करता है। उसकी नज़र में एक वर्ग विशेष की कुटिलता के कारण ईश्वर केन्द्र बिन्दु बना है, जिसकी आड़ में सभी दुष्कृत्य मान्य है। कवि ईश्वर की मौत की बात करता हुआ लिखता है, ''तुम्हारे हाथों प्राण प्रतिष्ठा पा, पुजता हुआ, वह क्यों भकोसता है, छप्पन भोग! जबकि करोड़ों को नसीब नहीं, एक जून की रोटी भी, यह भी उस पेटू को दिखाई नहीं देता,

अरे वह तो
कभी का मर गया है।

यहॉ कवि भूख और भाषा के अटूट रिश्ते को भी पूरी शिद्दत से उकेरते हैं। ईश्वर के प्रति अपना प्रतिरोध दर्ज करवाते वक्त यह भी बताते चलते हैं कि वास्तविक दोषी कौन है? प्रताड़ना, अत्याचार की भयावहता के मध्य अपने प्रतिरोध को कवि खोना नहीं चाहता—

किन्तु याद रखो, मैं डर कर तुम्हारे विरुद्ध अपना प्रतिरोध कभी खत्म नहीं होने दूँगा।

यही प्रतिरोध
ताकत है मेरी।

प्रतिरोधीरूपी ताकत से वह कुत्सित मानसिकता और कुटिल लोगों के लिए कब्र खोदने की बात करता है। इसमें उसके हथियार लाल क्रान्ति की याद दिलाते हैं-

मेरे हाथ में गेती, कुदाल और फावड़ा है
तुम्हारी कब्र मुझे ही खादनी है।
इसलिए अपने सारे औज़ार लिए आता ही रहूँगा
तुम्हारे सपनों में लगातार तुम्हारी कब्र खोदने।

असंगघोष की निगाह उस पीड़ा को प्रमुखता देती है जो मेहनत के बावजूद आधारभूत आवश्यकताओं के लिए भी तरसा दिया जाता है। उनकी कविताएँ समय, इतिहास, धर्म, राजनीति आदि से ज्वलंत सवाल करती है-

गर्भगृह छोड़, सीढ़ियाँ उतर नीचे, जमीन पर आना
अपने हालातों पर करने हैं तुझसे चन्द सवाल! अंत में यह भी पूछना है आखिर
मुफ्त की खाई-कमाई का स्वाद कैसा होता है??
और
हमारी छोड़, तू अपनी सोच
क्या मरी गाय का चमड़ा उतारेगा?
गाय के चमड़े को पकाएगा।

कवि वास्तविक आज़ादी की वकालत करते हैं। इसलिए जयपुर की अदालत में लगी हुई 'मनु' की मूर्ति को बाहर करने की माँग करते हैं।

इसलिए हे प्रिय न्यायमूर्तियों
इसे अपने परिसर से बाहर करो! या बताओ
क्या सचमुच तुमने अन्तर्मन से
संविधान की शपथ ली है।

अपने प्रतिरोध को न्याय व्यवस्था के समक्ष उठाती हुई समकालीन दौर की गिनी-चुनी कविताओं में से असंगघोष की कविता रेखांकित करने योग्य है। उनकी इस तरह की कविताओं से समकालीन भारतीय राजनीति से साक्षात्कार करने की उनकी कोशिश दिखती है। उनका समय बोध, इतिहास बोध और नवीन वैचारिकी उन्हें विशिष्ट कवि बनाती है। गंभीरता के साथ-साथ उनमें सम्प्रेषणीयता का गुण भी मौजूद है। जीवन की त्रासद स्थितियों के मध्य कवि अधिक चिन्तित नज़र आता है। उनकी ज्यादातर कविताएँ मानवीयता, संघर्ष, प्रतिरोध, मानवीय एषणा के अन्तर्द्वन्द्व से उत्पन्न जीवन-संघर्ष का यथार्थ रूप हैं। इनमें प्रतिरोध, प्रतिकार की शक्ति भी विद्यमान है और समय से संघर्ष करने में

उनके सभी संग्रह सक्षम भी है। इसमें कवि की स्पष्टवादिता और सामाजिक विश्लेषण के नवीन आयाम भी शामिल हैं।

उनकी कविताओं के अध्ययनोपरांत कहा जा सकता है कि कवि की सामाजिक चेतना में गहरी पैठ है। उनकी कविताएँ जन-समुदाय से सार्थक संवाद कायम करती है। कविताओं में मन की व्यथा, दुविधा गहरी संवेदना के साथ अभिव्यक्त होती है। दलित कविता का परिष्कृत रूप भी इन कविताओं में सहज प्राप्य है। अपने इतिहास और वर्तमान से समय-समाज को सचेत करती कविताएँ सामाजिक संकट का जीवंत दस्तावेज़ मानी जा सकती है। कवि की चिन्ता समुचित है और युगबोध के अनुरूप भी है। इन कविताओं को पढ़ते वक्त वर्तमान, इतिहास की पुनर्व्याख्या की माँग करता है और व्यवस्था सवालों के कटघरे में है। उम्मीद बस भविष्य से है-

बस एक कोशिश तो करो।
फेंको जोर से पत्थर इस दिवार पर,
ढहाओ दीवार, बढ़ो दीवार के पार
इसे धराशायी कर, रास्ता खुला हुआ है आगे।

मानवीय संवदेनाओं को मथती, व्याकुल करती, झकझोरती उनकी कविताएँ शोषण और अन्याय के विरुद्ध प्रतिरोध की चेतना जाग्रत करती है। समकालीन स्थितियों पर चिन्ता करते हुए वे सनातनी शोषण की परम्परा का खोल हटाकर उसके भेदभाव परक रूप को सामने ले आते हैं। 'दाना माँझी' कविता उनके सामाजिक सरोकारो को बयान करने के लिए पर्याप्त है। एक ग्रामीण व्यक्ति सरकारी उदासीनता और व्यवस्था का शिकार होकर अपनी मृत पत्नी की लाश अपने कंधों पर ढोने को मजबूर है और हम 'डिजीटल' का राग अलाप रहे हैं- ''संवेदनशून्य निष्ठुर लोग कैमरा खोले शॉट ले रहे हैं

सरकार हैं
कि बहरी, अन्धी हो चली है।''

संवेदना को सामने लाती उनकी कविता इस शोषण की जनक व्यवस्था को भी नकारती है। धार्मिकता का ढोंग उनके यहाँ स्थान च्यूत हुआ है। ऐसे मिथकों को कवि कठोर भाषा में दुत्कारता है- ''मेरा एक यही सवाल तेरे सारे मिथकों को, सिरे से नकारता है

तेरी नीयत पर, जी भर थूकता है
आ.....क थू।''

कवि वर्जनाओं से मुक्ति चाहता है। समानता का पक्षधर है। जातिगत अस्पृश्यता और उसकी पोषक व्यवस्था पर वे तीक्ष्ण चोट करते हैं। आक्रोश उनकी कविताओं का प्रधान स्वर माना जा सकता है। व्यंग्य उसे और मारक बनाता है।

असंगघोष की कविता तमाम प्रतिमानों को सिरे से खारिज तो करती ही है, एक नए वक्त का उदय भी उनमें मिलता है। भाषा और भाव के सौन्दर्यबोधी प्रतिमान उनकी कविता में अस्पृश्य समाज के उत्पीड़न को दर्शाते हैं। वहाँ वायवीय प्रवाह न होकर यथार्थ की कठोर भाव-भूमि है। लोकतंत्र और संविधान प्रदत्त अधिकारों ने तमाम प्रतिगामी शक्तियों को शिकस्त दी है। तंत्र-मंत्र और ज्योतिष जैसे कर्मकाण्डों में उलझे आम व्यक्ति की पीड़ा का मुखर रूप उनकी कविता है। श्रेष्ठता का झूठा दंभ या झूठी शान का त्याग कर के 'भड़वी श्रेष्ठता' को जूते पॉलिश की करारी बात करते हैं- ''पन्ना देख, बता दुनिया कहाँ जाएगी तेरे बिना, तू नहीं रहेगा तो भी, वह नहीं थमेगी छोड़ अपनी श्रेष्ठता, आ बराबरी में बैठ,

जूता पॉलिश करते हैं।'' कवि अपनी पूरी चेतना के साथ समकालीन चुनौतियों से मुठभेड़ करता है। हताशा, निराशा, अवसाद या संत्रास से भरी दमित व्यक्ति की दुनिया अब सांस ले पा रही है। अन्याय और पाखण्ड को कवि की कविताएँ अपने तरीके से नाप रही हैं। वे जीवनपर्यन्त अमानवीयता के खिलाफ संघर्ष, लड़ाई जारी रखने का एलान करते हैं वो भी अपने ही अन्दाज में- ''हाँ, सचमुच अब मैं डाकू हूँ, उसकी हर चाल पर, उसकी नियत पर, डाल-डाल मैं उसे सरे आम नंगा करूँगा।''

कवि में यह साहस अनायास नहीं है। दबाव आधारित परिस्थितियाँ इसकी जनक हैं और वे उनसे

ही जवाब-तलब करना चाहते हैं, जवाब लेना वे जानते भी हैं।

समाज में व्याप्त संघर्ष, आक्रोश एवं विद्रोह सदृश कठोर वास्तविकताओं का प्रतिबिम्बन उनके काव्य में हुआ है। समाज के शोषण को रेखांकित करते हुए वे लिखते हैं- ''जन्म से ही मजबूत अदृश्य धागों में बँधा, मैं आज तक बंधुआ हूँ, और तुम! कहाँ चले गए हो, मुक्तिदाता? मुक्तिदाता से वे चाहते हैं कि मनभेद न रखे। साफ-साफ कहे कि वह आखिर चाहते क्या हैं-

''अपनी नियमित पूजा-पाठ,
आडम्बरयुक्त आराधना-अर्चन
पाखण्डपूर्ण सेवा-समर्पण,
भोग-विलासी जीवन.....
भेदभाव-दुराचार,
छुआछूत वाली वर्ण व्यवस्था, या कुछ और,
तुम जो भी चाहते हो, मनभेद मत रखो।''

समतामूलक समाज के मुक्तिदाता के मन का भेदभाव कवि ने संघर्ष के संगीत और पूजा-पद्धति के ढोंग के मध्य चित्रित कर दिया है। मर्मभेदी विचारों से लैस उनकी कविताएँ अपने समय की प्रहरी भी हैं। मनुष्यता के पद पर सम्मानपूर्वक प्रस्थापित होने के लिए कवि सशक्त प्रतिरोध के बुलन्द स्वर का घोष करता है- ''अब समझ गया हूँ तेरी करतूत, अब तू तैयार रह, मैं रौदूँगा, तुझे अब अपने पैरों तले।''

वे निरन्तर लड़ते रहने का जुझारूपन दिखाते हैं। उनकी कविताएँ अम्बेडकारवादी विचारों की प्रतिनिधि हैं। वे आह्वान के कवि है। समता, संघर्ष, विरोध उनकी कविताओं के मूल तत्व है। इसमें अम्बेडकरवादी चेतना नए भाव शामिल करती है। जिनकी प्रस्तुति उनकी कविताओं में विशिष्ट तरीके से हुई है। वे ज्ञान की मशाल लेकर हाशिए के समाज के लोगों के घर और विचारों के अन्धेरेपन को दूर करने का महती उद्देश्य लेकर काव्य-रचना कर रहे हैं। व्यवस्था के प्रति आक्रोश इसकी बानगी भर है। ऐसी असमानतापूर्ण व्यवस्था को वे जवाब देना जानते हैं-

''समय के साथ इसका, मैं दूँगा माकूल जवाब,
मेरी जगह, पढ़ेंगे मेरे बच्चे,
जरूर।''

हीन मानसिकता से इतर कवि संघर्षकामी चेतना सम्पन्न होकर षड्यंत्रों के खात्मे का उद्घोष करता है। उनकी कविताएँ तमाम विसंगतियों पर करारी चोट है। उनके शब्द प्रहार से अस्पृश्यता बच नहीं पाती है। वे अपना इतिहास स्वयं लिखने की बात करते हैं-

''समय को अपना काम कर लेने दो।
उसे अब हमारा भी,
इतिहास लिखना है।''

जाति के ज़हर के खिलाफ वे एकजुट हो संघर्ष करने की प्रेरणा देते हैं। कवि अपनी कविता-यात्रा में शोषणकारी परम्परा और सुप्त जीवन-बोध के सम्बंधों को व्याख्यायित करता है। उनके यहाँ उदात्त जीवन-रस न होकर विवशता का महाकाव्य मौजूद है। भमण्डलीकृत व्यवस्था में अब बस अंतर इतना है कि यह महाकाव्य अब शोषित स्वयं लिख रहा है। विचारों के समानांतर वह अपनी दुनिया का निर्माण कर रहा है जिसका मूल आधार समानता पर अवलम्बित है। समकालीन दौर की भयावह सच्चाई और इतिहास का कुत्सित रूप उनके यहाँ उजागर हुआ है। इसके साथ कवि असंगघोष उस शोषित रूप का पर्दाफाश भी करते चलते हैं। जड़ीभूत पतनोन्मुख समसामयिक प्रश्नों से उनकी कविताएँ लगातार टकराती हैं। कवि की दृष्टि एकांगी न होकर समदर्शी है। अनुभव का व्यापक संसार समेटे उनकी कविताएँ आम व्यक्ति की चिन्ता से रूबरू कराती है।

शोषण, अन्याय के खिलाफ शोषक वर्ग का विरोध उनके काव्य में विशिष्ट भाषा-शैली का भी द्योतक है। समय की मूर्त सच्चाई और निरंतर शोषित वर्गों की वास्तविक जीवन-स्थितियों को पहचान कर कवि उनकी ही भाषा में उन्हें प्रस्तुत भी करता है। भाषा की कठोरता, शब्दों के व्याकरण में न उलझ कर मर्म को भेदती चली जाती है। वैचारिकता,

समाज-चिन्तन और अम्बेडकरवादी वैज्ञानिक समझ से ओत-प्रोत उनकी कविता दुरूह नहीं है, न बोझिल है। वह तो सरल शब्दों में व्यवस्था परिवर्तन की आकांक्षी है। यांत्रिकता से परे है। किताबी किस्म की साहित्यिकता से परे असंगघोष जी की कवितओं में लोक का सहज वर्जन हैं। देशज मुहावरों और आम जीवन की शोषित परिस्थितियों को वे संवदेनापूर्ण बना देते हैं। कलाबोध की श्रेष्ठता शोषण की मूल जड़ों को उभारने में सहायक नहीं है। अतः वे तीखी एवं सीधी-सीधी बात करते हैं। किताबी कलावाद और सौन्दर्य उनके यहाँ जगह बनाने में असमर्थ हैं। जीवंत संघर्ष परम्परा को वैसे भी इन तथाकथित प्रतिमानों की आवश्यकता नहीं है। वह तो डंके की चोट और सरकण्डे की कलम से भी सच कहने का साहस रखती है। इसलिए कवि की भाषा जन-चेतना की पक्षधर है। वे समकालीन कविता को अपनी विशिष्ट अर्थगर्भित भाषा रखने से एक नया और सार्थक आयाम, रूप देते हैं। उनकी भाषा कवि और समाज के मधय बनते रिश्ते को समझने के लिए पर्याप्त अवसर देती है। विरल अनुभवों की सूक्ष्म ज्यामिति उनकी काव्य प्रतिभा का दिग्दर्शन कराती है। उनकी कविताएँ पठनीय होने के साथ-साथ जीवन दर्शन का जीवंत दस्तावेज़ भी है। यह कवि की भाषा की ताकत को प्रस्तुत करती है। कविता की भाषा कहीं-कहीं गद्यात्मक होने के बावजूद अतिशयोक्ति या आत्मश्लाघा का शिकार नहीं है। बहते नीर की भाँति कवि अपनी सहज वाणी से सबको झकझोरते चला जाता है। कविताएँ उद्देश्य की ओर धावित होती हैं और कवि आपके हृदय की ओर।

विसंगतियों एवं घटनाओं से उपजे हुए आक्रोश का आह्वान उनकी कविता करती है। सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक पहलुओं पर कवि की दृष्टि अन्वेष्णात्मक और विश्लेषणात्मक रही है। समता का संपोषण प्रदान करती कविताओं एवं समय, युग का कवि हिमायती है और पक्षधर भी। वह विपरीत स्थितियों एवं असमानता के प्रति असहमति प्रकट करता है तो प्रतिरोध के लिए सदैव उद्यत भी रहता है। जब कविता के समक्ष अनेक चुनौतियाँ हों, समुदाय के सरोकारों को बेदखली का सामना करना पड़ रहा हो, बाज़ार का आकर्षण संवेदना को नष्ट कर रहा हो, आत्ममुग्ध और अपने-अपने मठ और गढ़ बने हुए हों, ऐसे में असंगघोष की कविताएँ हिन्दी कविता और समय का संवेदनात्मक यथार्थ, समता और समानता की संकल्पना को मूर्त करने में कृतसंकल्प बना हो। हम सब साहित्य-प्रेमियों के लिए संतोष का विषय तो है ही। समय से प्रत्यक्ष और सीधा संवाद करती इनकी कविताएँ प्रासंगिक और चेतना सम्पन्न दृष्टियुक्त है। अक्षय चेतनामयी ऊर्जा का भण्डार लिए उक्त कविताएँ हिन्दी कविता संसार की अमूल्य निधि समान हैं। उनकी कविताएँ जितनी जीवन्त हैं उनमें जीवटता का उतना पुट विद्यमान भी है। विषम वक्त में उनकी कविताएँ राह दिखाती हैं।

साहित्यिकी

अमृतलाल नागर की सिने-पटकथा

कुमार नीरज

मूर्द्धन्य साहित्यकार अमृतलाल नागर जी का रचना संसार सागर के समान विस्तृत और इंद्रधनुष के समान विभिन्न रंगों से समृद्ध है। नगर जी ने साहित्य की प्रत्येक विधा में अपनी लेखनी का कमाल दिखाया है चाहे वो कहानी हो, उपन्यास हो, निबंध होएव्यंग हो या फिर नाटक। सभी विधाओं में उनकी रचनात्मकता सर्वश्रेष्ठ रही है। नागर जी प्रेमचंद के बाद हिंदी उपन्यास और कहानी की परम्परा को शिखर पर ले जाने वाले उन गिने चुने साहित्यकारों में शामिल है जिन्होंने हिंदी साहित्य लेखन की दशा और दिशा दोनों को ही बदल दिया। नगर जी का साहित्यिक जीवन काफी उतार चढ़ाव वाला रहा है। उन्होंने अपने रचनात्मक जीवन के विभिन्न पड़ावों में पारिवारिक जिम्मेदारियों को निभाने के लिए साहित्य से इतर भी अनेक वैतनिक तथा अवैतनिक कार्य किए ताकि घर संसार सकुशल चलता रहे। इसमे नागर जी द्वारा बीमा कम्पनी में अकाउंटेंट की नौकरी से लेकर रेडीओ स्टेशन की नौकरी और सिनेमा के लिए लेखन शामिल है।

17 अगस्त 1947 को आगरा में जन्मे अमृतलाल नागर जी साहित्य-सृजन के लिए अवतार के रूप में आए थे! बीसवीं शताब्दी में नागर जी हिंदी साहित्य के सृजनकर्ताओं में विशिष्ट स्थान रखते है! नागर जी ने अपने जीवन की शुरुआत एक लेखक और पत्रकार के रूप में की! आगे चल कर जीवन-यापन और पारिवारिक जरूरतों के कारण नागर जी ने साहित्य की विभिन्न विधाओं के अलावा रेडीओ, मंच और सिनेमा लेखन में भी अपना अहम योगदान दिया है! नागर जी ने सन 1940 से लेकर सन 1948 तक मुंबई में सिनेमा लेखन का कार्य सफलतापूर्वक किया! इस दौरान उन्होंने फिल्मों के लिए गीत, पटकथा और संवाद के अलावा अनेक गैर हिंदी भाषी फिल्मों की हिंदी में डबिंग के लिए हिंदी संवाद लेखन का भी काम किया! सन १९४७-४८ में नागर जी ने सिनेमा के मायावी संसार को अलविदा कह दिया! उसके बाद एक बार फिर उन्होंने दिसम्बर १९५३ से मई १९५६ तक के बीच में ऑल इंडिया रेडीओ में ड्रामा प्रोड्यूसर के रूप में भी कार्य किया परंतु इसी दौरान उन्होंने इस बात को महसूस किया की कोई भी नियमित नौकरी उनके साहित्यिक जीवन को आगे बढ़ने में बाधक बन रही है, अंततः उन्होंने रेडीओ स्टेशन की नौकरी को तिलांजलि दे दी और स्वयं को पूर्णरूप से स्वतंत्र लेखन के लिए समर्पित कर दिया! बहुमुखी प्रतिभा के धनी नागर जी ने अपने कठिन श्रम, निष्ठा, लगन और अनवरत संघर्ष के द्वारा जो सृजन हिंदी साहित्य के लिए किया वह अमूल्य और अद्वितीय है लेकिन नागर जी के जिस सृजनात्मक कार्य की चर्चा बिलकुल नगण्य के बराबर होती है वह है उनका फिल्मों में योगदान! हालाँकि नागर जी द्वारा रेडीओ के लिए किए गए नाट्य लेखन और निर्माण की चर्चा मिलती है, रेडीओ के लिए किए गए कार्यों को उनके साहित्यिक रचनाओं के साथ भी शामिल किया गया है! जब भी नागर जी द्वारा लिखित नाटकों की चर्चा होती है तो मंच के लिए लिखे गए नाटक 'युगावतार' और 'नुक्कड़ पर' के साथ-साथ रेडीओ के लिए लिखे गए अनेक

नाटको जैसे 'बात की बात', 'चंदन वन', 'चक्करदार सीढ़ियाँ और अँधेरा', 'उतार चढ़ाव', को भी साहित्यिक कृतियों के अंतर्गत ही शामिल किया जाता रहा है जबकि रेडीओ नाटक की अपनी प्रवृति होती है, उनके अपने गुण-दोष होते है! हम उनको मंचीय नाटकों के संग तुलना नहीं कर सकते, बिलकुल वैसे ही जैसे की फिल्म लेखन को हम साहित्यिक रचनाओं से अलग-थलग रखते है और तुलना की बात तो दूर है, फिल्म लेखन को दोयम दर्जे का लेखन घोषित कर चुके है! जबकि सिनेमा में भी कहानी ही कही जाती है, अंतर बस इतना है की साहित्य में शब्दों का जाल बुन कर और सिनेमा में दृश्यों का जाल बुन कर कहानी कही जाती है और यही वस्तु इन दोनो के बीच के अंतर को स्पष्ट करती है!

नागर जी के फिल्मी लेखन की बात करे तो नागर जी ने सन १९४६ से लेकर १९४७-४८ के बीच सिनेमा लेखन का कार्य किया! हम कह सकते है की लगभग एक दसक का समय नागर जी ने मायानगरी में व्यतीत किया! इस दौरान नागर जी ने कोल्हापुर, मुंबई और चेन्नई की यात्राएँ की और फिल्मों के लिए कहानी, गीत, पटकथा और संवाद लेखन का कार्य किया!नागर जी ने जिन फिल्मों के लिए लेखन किया उनमे प्रमुख है–'बहुरानी' (१९४१), 'संगम' (१९४१)' 'कुँवारा बाप' (१९४२), 'पराया धन', 'किसी से ना कहना', 'कल्पना' (१९४६), 'गुँजन' (१९४७), 'चोर' (१९५0) आदि!

सिने पटकथा, संवाद, गीत लेखन और अभिनय!

मशहूर अभिनेता और फिल्मकार किशोर साहू ने अमृतलाल नागर जी को सबसे पहले फिल्मों में लेखन का काम दिया! किशोर साहू निर्मित और निर्देशित फिल्म 'बहुरानी' नागर जी द्वारा लिखी गई पहली फिल्म थी! इस फिल्म की पटकथा और संवाद को नागर जी ने लिखा था! इस फिल्म में संगीत दिया था रफीक गजनवी ने और गीत लिखे थे जे एस कश्यप और आजाद ने! इस फिल्म का एक गीत 'जरा मुस्कुराकर मिलाओं नजर' दर्शकों के बीच बहुत सफल गीत साबित हुआ था! सामाजिक ताने-बाने से सजी यह फिल्म अपने समय की सफल फिल्मों में शुमार है! किशोर साहू के लिए १९४२ में नागर जी ने एक और फिल्म लिखी जिसका नाम था 'कुँवारा बाप'! इस फिल्म की पटकथा और संवाद तो नागर जी ने लिखे ही थे, साथ में फिल्म के कुछ गाने भी लिखे थे! हालाँकि बालम परदेसी और सत्यकाम शर्मा जैसे गीतकारो ने भी इस फिल्म के लिए गीत लिखे थे! हास्य-व्यंग से भरे संवाद का सुंदर और मनोरंजक जाल नागर जी ने इस फिल्म के लिए बुन था! फिल्म के संवादो में आज की कॉमेडी फिल्मों के संवादो की तरह किसी भी प्रकार का फुहरपन नहीं था! हास्य और मनोरंजन से भरपूर इस फिल्म में मुख्य भूमिका में थे स्वयं किशोर साहू, प्रोतिमा दासगुप्ता, बेबी लाल, अंजलि देवी, मनोहर घटवानी, नाना पलसिकर और अमृतलाल नागर! नागर जी ने इस फिल्म में अपने अभिनय का जादू भी बिखेरा था! 'कुँवारा बाप' को १९४३ में बीएफजेए. बेस्ट इंडीयन फिल्म अवार्ड से भी पुरस्कृत किया गया था! नागर जी ने किशोर साहू के लिए सन १९४३ में 'राजा' नामक फिल्म के लिए लेखन किया! इस फिल्म में भगवती चरण शर्मा और राममूर्ति चतुर्वेदी के साथ मिलकर नागर जी ने गीत लिखे थे! फिल्म में संगीत था खान मस्तान का! यह एक सोशल ड्रामा फिल्म थी! फिल्म में किशोर साहू, प्रोतिमा दास गुप्ता, रानीबाला, मोनी चटर्जी, रमेश गुप्ता आदि कलाकार मुख्य भूमिका में थे! फिल्म में कुल आठ गाने थे!

सन १९४१ की नवयुग चित्रपट की फिल्म 'संगम्' जिसका निर्देशन आर एस जुन्नारकर ने किया था और मुख्य भूमिका में थे मास्टर विनायक, कामिनी कौशल, दादा साल्वे, मालती गपटे जैसे प्रसिद्ध कलाकार! इस फिल्म के लिए गीत लेखन का कार्य नागर जी ने किया था और संगीत दिया था दादा चाँदेकर ने! इस फिल्म की एक खास बात यह थी कि फिल्म में नागर जी के साथ हिंदी जगत के प्रसिद्ध कवि और लेखक जयशंकर प्रसाद ने भी गीत लिखे थे! फिल्म में कुल चौदह गीत थे जिसमें तेरह गीत नागर जी ने और एक गीत जयशंकर प्रसाद ने लिखा था! सन १९४२ में आई फिल्म 'उलझन' में

नागर जी ने अभिनय किया था! फिल्म के अन्य कलाकार थे सरदार अखतर, मजहर खान, कृष्णकांत, अंजलिदेव आदि! इस फिल्म का निर्माण-निर्देशन एन आर आचार्य ने किया था! सन १९४२ में ही मशहूर अभिनेत्री और फिल्म निर्मात्रि लीला चिटनिस ने एक फिल्म बनाई थी 'किसी से न कहना'! इस फिल्म को भी नागर जी ने लिखा था! फिल्म में गीत भी नागर जी ने लिखा था और संगीत से सजाया था प्रताप मुखर्जी ने! इस फिल्म में लीला चिटनिस के अलावा मुख्य भूमिका में थे केशवराव दाते, उत्पल दत्त, पहाड़ी सान्याल, सुनेत्रा, हरी शिवदसानी आदि! फिल्म के निर्देशक थे कृष्णा गोपाल और केशवराव दाते! लीला चिटनिस के लिए नागर जी ने तीन फिल्मों का लेखन किया!

प्रसिद्ध नृत्य निर्देशक और आधुनिक भारतीय नृत्य के पिता उदय शंकर ने सन १९४६ में 'कल्पना' शीर्षक से एक फिल्म का निर्माण और निर्देशन किया था! यह फिल्म बैले डान्स पर आधारित थी और उस समय की एक प्रायोगिक फिल्म थी! सम्पूर्ण फिल्म की कहानी एक युवा नर्तक के एक नृत्य प्रशिक्षण संस्थान खोलने के लिए किए जा रहे संघर्ष की कहानी है! एक नृत्य और संगीत पर आधारित फिल्म के लिए लेखन अत्यंत ही चुनौतीपूर्ण कार्य होता है! इस चुनौती को नागर जी स्वीकार किया! इस फिल्म में पटकथा और संवाद लेखन को नागर जी ने बखूबी अंजाम दिया! फिल्म में गीत लिखा था देवीलाल समर और सुमित्रानंदन पंत ने और संगीत दिया था विष्णुदास शिराली ने! फिल्म में मुख्य भूमिका में थे उदय शंकर, उनकी पत्नी अमला शंकर लक्ष्मी कांता बीरेन्द्र बनर्जी आदि! मशहूर अभिनेत्री पद्मिनी की यह पहली फिल्म थी! फिल्म में छायाकार थे के रामनाथ और फिल्म सम्पादक थे एन के गोपाल! जेमिनी स्टूडीओ ने १ जनवरी १९४८ को इस फिल्म को रिलीज किया था! उदय शंकर द्वारा बनाई गई यह एक मात्र फिल्म है! इस फिल्म को 2008 में गोवा के अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोह में भी प्रदर्शित किया गया था!

बहुमुखी प्रतिभा के धनी फिल्मकार नितिन बोस ने ष्पराया धन' नाम से १९४३ में एक फिल्म का निर्देशन किया था जिसका लेखन का कार्य नागर जी ने किया था! लीला देसाई, बलवंत सिंह, जगदीश सेठी, माया बनर्जी, देव मुखर्जी आदि कलाकारो ने इसमें अभिनय किया था! फिल्म में संगीत दिया था ज्ञानप्रकाश घोष ने! सन 1948 में प्रदर्शित फिल्म 'गुँजन' के लिए भी पटकथा और संवाद लेखन का कार्य नागर जी ने किया था! फिल्म का निर्देशन विरेंद्र देसाई ने किया था! फिल्म में मुख्य भूमिका में थे नलिनी जयवंत, बलराज साहनी, त्रिलोक कपूर, डेविड, केशव पुरोहित आदि! फिल्म में कुल नौ गाने थे! यह एक सोशल ड्रामा पर केंद्रित फिल्म थी! १९५द्व में प्रदर्शित फिल्म ष्चोर' का लेखन भी नागर जी ने किया था! फिल्म का निर्देशन आनंद प्रसाद कपूर ने किया था! फिल्म में मुख्य भूमिका में थी मशहूर अभिनेत्री कूकूँ, श्यामा, शेखर, संकटा प्रसाद, सोना चटर्जी आदि! फिल्म में संगीत दिया था गोविंद राम ने! फिल्म में कुल १द्व गाने थे! इस प्रकार नागर जी ने दस-बारह फिल्मों की पटकथा, संवाद और गीत लिखे! कुछ फिल्मों में छोटे-छोटे किरदार भी निभाए!वैसे अभिनय के क्षेत्र में नागर जी का कार्य बहुत सीमित रहा!सुप्रसिद्ध फिल्मकार सत्यजीत राय ने जब प्रेमचंद की कालजयी रचना ष्शतरंज के खिलाड़ी' पर फिल्म निर्माण का कार्य आरंभ किया तो उन्होंने नागर जी को सलाहकार के लिए चुना! साहित्य और सिनेमा के प्रति समझ और दोनो के बीच अन्तर्सम्बंध को नागर जी से बेहतर भला और कौन जान सकता था और राय इस बात से भलीभाँति परिचित था तभी उन्होंने ने नागर जी को सलाहकार के लिए चुना और फिल्म के लिए शोध के दौरान नागर जी के साथ लम्बा समय व्यतीत किया!

अन्य भाषाओं से हिंदी में डबिंग के लिए संवाद लेखन

सिनेमा में आने के बाद आरम्भिक समय में अमृतलाल नागर जी ने अनेक दक्षिण भारतीय भाषा की फिल्मों के लिए हिंदी में डबिंग के लिए संवाद लेखन का कार्य किया! उन्होंने लगभग सात-आठ डब फिल्मे लिखी! इनमे प्रमुख फिल्म है- तमिल भाषा में बनी

फिल्म ष्मीरा' का हिंदी संवाद लेखन! इस फिल्म में मुख्य भूमिका में थी भारत रत्न से सम्मानित मशहूर शास्त्रीय गायिका एम एस सुब्बालक्ष्मी! नागर जी से फिल्म डबिंग लेखन से जुड़ा एक और रोचक तथ्य यह है कि उन्होंने सबसे पहले दो रशियन भाषा की फिल्मों का हिंदी में संवाद लेखन किया! ये फिल्मे थी- जोया और नसीरुद्दीन इन बुखारा! इस प्रकार हम देखते है की पटकथा और संवाद लेखन के अलावा नागर जी ने डबिंग के लिए भी निर्बाध लेखन किया और डबिंग का भी कार्य किया! डबिंग लेखन भी एक माहिर कला है जिसमें आपको होंठों के हिलने-डुलने की गति से मिलते जुलते शब्दों के माध्यम से संवाद लिखना पड़ता है ताकि दर्शक को ये ना लगे की अभिनेता किसी दूसरी भाषा के शब्द बोल रहा है या कुछ और बोल रहा है! इसके लिए आपका शब्द संसार और अन्य भाषाओं का ज्ञान काफी जरूरी होता है और नागर जी के पास ये दोनो ही गुण थे! एक सफल लेखक होने के कारण उनके पास शब्दों का शब्दकोश तो था ही साथ ही नागर जी कई भाषाओं के विद्वान भी थे! और इन्ही सभी गुणो ने डबिंग लेखन को नागर जी के लिए आसान कला बना दिया! लेखन की एक कठिन लेकिन एक महत्वपूर्ण कला में नागर जी ने अपनी महारत सिद्ध की!

नागर जी ने साहित्य और रेडीओ के अलावा सिनेमा के लिए भी लगभग एक दसक तक लेखन किया! एक दसक का समय किसी कार्य के लिए कम नहीं होता है लेकिन जैसा की नागर जी ने अपने अनेक साक्षात्कारों में कहा है कि वो कहीं भी रहते थे, कुछ भी करते था, उनका मन हमेशा हिंदी साहित्य सृजन के लिए बेचौन रहता था! नागर जी जब तक सिनेमा संसार में रहे लेखन, अभिनय और गीत लेखन आदि अनेक विधाओं में अपना योगदान देते रहे लेकिन अपने हिंदी साहित्य से अगाध प्रेम को नहीं छोड़ पाए! वह जहाँ भी रहे चाहे वैतनिक नौकरी हो या फिर सिनेमा उद्योग में स्वतंत्र लेखन या फिर रेडीओ में नाट्य निर्माण से जुड़ी जिम्मेदारी, समानन्तर हिंदी साहित्य सृजन का कार्य नागर जी अनवरत रूप से करते रहे! सिनेमा जैसे मायावी संसार के चंगुल से निकल जाना और वह भी लगभग एक दसक का सफल समय बिताने के बाद, ऐसा नागर जी जैसा साहित्य प्रेमी और सृजनकर्ता ही कर सकता है! जहाँ एक तरफ पूरी दुनिया धन-वैभव की चकाचौंध में डूबी हुई है, वहाँ पर इतना बड़ा त्याग कोई मजबूत इरादा रखनेवाला साहित्य का सच्चा सिपाही ही कर सकता हैं! १९४७ में जब देश आजाद हुआ और सम्पूर्ण देश में आजादी का महोत्सव मनाया जा रहा था, उसी समय काल में नागर जी ने भी सिनेमा संसार से आजादी ले ली और पूर्णरूप से साहित्य सृजन में रम गए लेकिन सिनेमा से विदा लेने से पहले नागर जी ने बहुरानी, चोर, संगम, गुँजन, कुँवारा बाप, कल्पना, उलझन, किसी से ना कहना, राजा, पराया धन जैसी यादगार फिल्मों को अपनी पटकथा, गीत और संवादो के द्वारा यादगार कर गए! नागर जी द्वारा लिखित फिल्मे उनकी सिनेमा के प्रति समझ, ज्ञान, समर्पण और प्रेम का जीवित उदाहरण है! साहित्य से जुड़े विद्वान, आलोचक, पाठक और बुद्धिजीवि वर्ग का जो कुछ भी विचार हो लेकिन हम नागर जी के सिनेमा में किए गए योगदान को नजर अंदाज नहीं कर सकते है!

संदर्भ सूची

हिंदी का गध-साहित्य, डॉ. रामचंद्र तिवारी

सिनेमा का इतिहास, मनमोहन चड्ढा

हिंदी सिनेमा का इतिहास. संजीव श्रीवास्तव

https://en.wikipedia.org/wiki/Amritlal_Nagar

https://en.wikipedia.org/wiki/Uday_Shankar

https://www.lyricsbogie.com/movies/sangam-1941

https://indiancine.ma/DOO/info

http://myswar.co/album/sangam-1941

https://en.wikipedia.org/wiki/Kunwara_Bap_;1942_film)

जैन साहित्य में रामकाव्य (विशेष संदर्भ स्वयंभू और पुष्पदंत)

शशिकला राय

जैन साहित्य की आधारशिला जैनधर्म है। अहिंसा अस्तेय, अपारिग्रह, सत्य चार सूत्र तीर्थकर पार्श्वनाथ ने स्थापित किए और ये ही चार सूत्र पूरे जैन धर्म में मान्य हुए। जैनधर्म को विद्वानों ने अत्यंत प्राचीन माना है। रामचंद्र जैन ने (दि मोस्ट ऐश्येंट आर्यन सोसायटी 1964) मिस्त्र से जैन मत के मिलते-जुलते प्रमाणों को प्रस्तुत किया है। जब कोई व्यक्ति 'ओसिरस' (जन्म और मृत्यु का देवता) के पास पहुँचता था तो उसे इस बात का दावा करना पडता था कि वह उनके बताए हुए ढंग से ही जीता रहा है। उनके 'दावे' की कुछ प्रमुख बातें इस तरह की थी -

- मैंने हत्या नहीं की और हत्या का आदेश नहीं दिया।
- मैंने पशुओं से क्रूरता नहीं की।
- मैंने पक्षियों का शिकार नहीं किया।
- मैंने किसी का आहार नहीं छीना।
- मैंने किसी को रूलाया नहीं।
- मैंने गरीबों को सताया नहीं।
- मैंने झगड़ा नहीं लगाया।
- मैंने ऐसी आग नहीं बुझाई जिसे जलते रहना चाहिए।

इस तरह की अनेक प्रतिज्ञाएँ सत्य अस्तेय अहिंसा, अपारिग्रह, आत्मनिग्रह और ज्ञान सदाचार के बारे में भी हैं। ये प्रतिज्ञाएँ जैनमत के सर्वथा अनुकूल है, यह बात और है कि, प्राचीन मिस्त्र और 'मेसोपोतामियाई' राजाओं के चरित्र इन वचनों से मेल नहीं खाते। पुरातत्वविद के.एस. रामचंद्रन ने हडप्पा में प्राप्त कुछ मूर्तियों की तुलना परवर्ती काल की कुछ जैन प्रतिमाओं से की और यह कहा कि हडप्पा सभ्यता में भी जैनमत प्रचलित था। प्रो. विश्वंभर शरण पाठक ऋग्वेद में श्रमण संस्कृति को बार-बार रेखांकित करते हैं। यह उन अनेक दार्शनिक धाराओं में से एक था जो ऋग्वेद के समय चल रहीं थी। अतः जैन मत विश्व की प्राचीनतम धार्मिक और दार्शनिक धाराओं में से एक है।

जैनमुनियों की अध्यात्म रहस्यवादी धारा की प्रमुख विशेषताएँ निम्न है -

उदारता -

जैनमुनियों की रचनाओं में किसी भी अन्य धर्म या सम्प्रदाय के प्रति विद्वेष और कटुता का भाव नहीं मिलता है।

चारित्रिक शुध्दता पर बल -

ये मुनि चारित्रिक शुध्दता पर बल देते हैं। चरित्र निर्माण में बाधक सभी रूढ़ियों परंपराओं का बड़ी निडरता से खुल कर विरोध करते हैं

समरस भाव की साधना -

आत्मानुभूति को इन साधकों ने बहुत महत्व दिया है। आत्मानंद ही समरसीभाव, सहजानंद मोक्ष निर्वाण है।

लक्ष्य की महानता -

समस्त प्राणियों में कल्याण की भावना इनका प्रमुख लक्ष्य रहा है। इस लक्ष्य का विकास आगे चल कर वैष्णव कवियों में दिखाई पड़ता है।

भाषा शैली -

इन मुनियों की भाषा में सहजता और प्रवाह देखा जा सकता है। नाद, ध्वनि, शब्द संगीत की लय पैदा करते है। भाषा की संप्रेषणधर्मिता ही इसे अधिक ग्राह्य बनाती है। जिनपद्म सूरि के एक उदाहरण में भाषा के विलक्षण सौन्दर्य को महसूस किया जा सकता है -

लहलह लहलह लहलह ए उरि मोतियाहारो
रणरण रणरण रणरणाएँ पगि नेउर सारो
गमग गमग गमग ए कानिहि वरकुंडल
झलझल झलझल झलझल ए आभरण हैं मंडल

जैन या यू कहूँ कि अपभ्रंश साहित्य के सिरमौर माने जाने वाले स्वयँभू और पुष्पदंत जैसे कवियों ने अपनी रचनाधर्मिता से न केवल अपभ्रंश को बल्कि समूची वैश्विक साहित्यिक परंपरा को समृध्द किया। दोनों ने ही राम काव्य लिखा और रामकाव्य लिखते समय दोनों ने ही जैनधर्म को दृष्टि में रखा। रामकाव्य लिखते समय दोनों ने ही भिन्न परंपराओं का अवगाहन किया। इससे एक बात तय है कि तत्समय राम काव्य की दो पंरपराएँ प्रचलित थी।

स्वयँभू कृत 'पउमचरिउ' पुष्पदंत विसट्ठि महापुरिस गुणालंकार' (महापुराण) ये कृतियाँ केवल धर्मग्रंथ नहीं है। हाँ यह धर्मग्रंथ भी है। इसे पूजा स्थल की पोथी नहीं माना जा सकता। मानवीय संवदेना से संपृक्त इन रचनाओं में मानव समाज, पितृसत्तात्मक सत्ता का निर्मम रूप सामंतवादी मनोवृति का बहुत सजीव रूप देखा जा सकता है। असाधारण होने और शिखरासीन होने की चाहतले न जाने कितनी स्त्रियों की सिसकियाँ, करूण चीत्कार, पीड़ा की अनुगूँज अब भी सुनी जा सकती है। बस आवश्यकता है, इन कृतियों के पुनर्पाठ की -

इन किताबों का हर हर्फ उलट है, साहब
पलट कर देखिए मानी भी समझ आयेगा।

तुलसीदास का कथन 'हरि अनंत हरि कथा अनंता।' राम के संदर्भ मे पूर्वापर परिदृश्य और परिप्रेक्ष्य उजागर कर जाता है। राम भारतीय मिथ, भारतीय संस्कृति, भारतीय धर्म का ऐसा संवाहक नाम जिसमें प्रत्येक पंथ अपने अनुसार छवि निर्मित कर लेता है। अपने-अपने राम। वाल्मिकि पश्चात रामकाव्य की परंपरा को अग्रसर करने का श्रेय जैनमुनियों को जाता है। 'मुनि विमल सूरि' जिन्होंने लगभग पहली शताब्दी के आस-पास प्राकृत में 'पउमचरिउ' की रचना की राम का एक नाम 'पद्म' भी था। यही नाम जैन कृतिकारों को सर्वाधिक प्रिय लगा और इसी नाम को आधार बनाकर उन्होंने प्राकृत, संस्कृत, और अपभ्रंश भाषा में रचना की। विमल सूरि का 'पउमचरिउ' राम काव्य की विशिष्ट कृति मानी जाती है। रविशेण कृत 'पद्मचरित' या 'पद्मपुराण' भी रामकाव्य की उत्कृष्ट कृति मानी जाती है।

अपभ्रंश भाषा में रामकाव्य परंपरा के आदि पुरूष अर्थात अपभ्रंश के वाल्मीकि 'स्वयँभू' माने जाते हैं। स्वयँभू ने विरासी सर्गों वाला विशाल महाकाव्य रचा। स्वयँभू ने आत्मनिवेदन में ही स्पष्ट कर दिया कि वे अपनी रचना जनसाधारण तक पहुँचाना चाहते है, इसीलिए आवश्यक है, कि उन्हीं की भाषा में कहा जाय। इतना ही नहीं इससे भी आगे जाकर स्वयँभू कहते हैं कि, जनभाषा अर्थात अपभ्रंश में कथा कहने के लिए वे सारा व्याकरण अलंकारशास्त्र और पिंगलशास्त्र निछावर करने के लिए तैयार है।

स्वयँभू का रामकाव्य (स्वयँभू का समय 8 वीं शताब्दी)

जैनधर्म के अनुरूप कथा कही गई है, पुराण काव्य परंपरानुसार प्रश्नोत्तर शैली में कथा विकसित हुई है। वास्तविक कथा अयोध्दाकांड से शुरू होती है। सभी प्रधान पात्र जैन धर्म में दीक्षित होते है।

वर्णन -

'पउमचरिउ' के राम अपने कर्मफल की सीमा में निरंतर कार्यरत रहनेवाले राम हैं, अपनी खूबियों और अपनी खामियों सहित। राम के रूप में ना तो स्वयँभू ने महान आदर्श की सृष्टि है ना ही अलौकिकता का कोई इंद्रजाल खड़ा किया है। 'पउमचरिउ' विशाल

प्रबंध काव्य है। नाना प्रकार के महाकाव्योचित वर्णनों से भरा पड़ा है। जिनमें कवि की प्रतिभा और कवित्त शक्ति का पूर्ण उन्मेष मिलता है। ये वर्णन अवसरोचित तथा कथा प्रवाह में सहायक बन कर आये हैं। अधिकांश वर्णन मार्मिक और प्रभावशाली बन पड़े है। पउमचरिउ पाँच कांडों में विभाजित है - विद्याधरकांड, अयोध्दाकांड, सुंदरकांड, युध्दकांड, उत्तरकांड।

चरित्र सृष्टि -

चरित्र निर्माण में स्वयँभू ने यथार्थ दृष्टिकोण अपनाया है। राम कहीं भी अलौकिक नहीं हैं, उनमें मानवीय कमजोरियाँ है। लक्ष्मण के आहत होने पर साधारण मनुष्य की तरह विलाप करते हैं। सीता के साथ अग्निपरीक्षा के समय राम ओछा व्यवहार भी करते हैं। स्त्रियों की स्थिति दारूण हैं। इस दारूण स्थिति को ढकने के लिए स्वयँभू राम के चारों ओर किसी तरह का प्रभामंडल नहीं तैयार करते है। रावण विजय के पश्चात सीता ससम्मान कौशल नगरी लाई गई। ऐश्वर्य से परिपूर्ण दिव्य और भव्य वातावरण में प्रजा और सामंतों के सामने सीता को अपमानित किया जाता है, उसे राजमहल में जगह नहीं दी जाती है। सुबह सीता के अग्निपरीक्षा की घोषणा की जाती है। उस समय सीता के प्रति राम का उद्‌गार राजा राम की प्रजावत्सलता पर चोट कर उनका श्याम पक्ष उजागर करता है। जो कुछ राम ने कहा वह किसी भी युग की किसी भी स्त्री के लिए वो चाहे रंक की हो चाहे राजा की स्वीकारणीय नहीं हैं -

महिलउ होती असुध्द णिलज्जउ
दस दाविय कडक्ख विक्खेउ
कुडिल मइउ वडढ़िय अवलेउ
बाहिर धिट्ठउ गुण परिहणउ
किह सय खडु न जति तिहीणउ
णउ गणंति णिय कुल मइलंतउ
तिहुअणे अयस पडउ वज्जंतउ
अंग समोडेवि धिध्दिक्कार हो
वयणि णियंति केम भतार हो

(महिलाएँ अशुध्द होती हैं, निर्ल्लज्ज होती हैं, मलिनमति होती है। त्रिभुवन में अपने कुल को मलिन करके ऐसी नारी का मुख उसका भतार कैसे देखे?) दूसरी तरफ सीता यह सुनकर अपन संयम नहीं खोती लेकिन वह अस्तित्वहीन सीता नहीं है, वे ये कहने से भी नहीं चूकती -

पुरिस णिहीण होंति गुणवंत वि
तियहे ण पत्तज्जंति मरंत वि

(पुरूष गुणवान होकर भी हीन होते है, यदि स्त्री प्राण भी त्याग दे तो वे विश्वास नहीं करते।) स्वयँभू की सीता की यही छवि हमें कालांतर में जगदीश गुप्त कृत शंबूकवध में दिखाई देती है। यह कहती हुई 'हाय रे, राजा हाय रे नीति।' भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872 की धारा 155 अनुच्छेद 4 में आज भी यह प्रावधान है कि अगर किसी पर बलात्कार का आरोप हो तो उस गवाह की विश्वसनीयता तोड़ने के लिए सिध्द करना चाहिए कि वह महिला अनैतिक चरित्र की है, इससे अभियुक्त को सजा में छूट मिल जायेगी। स्वयँभू का चरम लक्ष्य चाहे जैनधर्म का प्रतिपादन ही रहा हो, रामकाव्य के बहाने, परन्तु उनकी भूमिका एक सजग साहित्यकार की रही है। स्वयँभू अपने समय में हस्तक्षेप कर साझे चिंतन का पुल तैयार करते है।

वनगमन के समय सीता के राजमहल से बाहर निकलने की स्थिति का करूण चित्रण स्वयँभू ने किया है। स्वयँभू लिखते है -

णिय मंदिर हो विणिग्गय जाणई
णं हिमवंत हो गंग महाणई
णं णिग्गय गायत्ती
णं सद्दहो णीसरिय विहत्ती

(जानकी मंदिर से क्या निकली मानो हिमवान से गंगा निकल पड़ी। छंद से गायत्री निकल पड़ी। शब्द से विभक्ति निकल पड़ी) स्वयँभू संवदेनशील कवि है। विविध परिस्थितियों में मानव मन के उठते-गिरते भावों के सूक्ष्म पारखी। यही कारण है कि अपने वर्णित करुण प्रसंगों में पाठकों को दूर तक बहा ले जाने की क्षमता रखते हैं।

प्रकृतिवर्णन -

स्वयँभू का मन प्रकृति चित्रण में खूब रमा है। वे अपने संकेतों में भी पूरी तरह स्पष्ट हैं। हनुमान जब लंका जाते है तो उनके दृष्टिपथ में अनेक नदियाँ पड़ती है। स्वयँभू ने इन सभी के सौन्दर्य को निरुपित किया है। कावेरी प्रदेश का चित्रण -

जहि इंदणनील कर भिज्जी माणु
ससि थाइ जुण्ण दप्पणु समाणु

(वहाँ इंद्रनील की किरणों से भिद कर चंद्रमा जीर्ण दर्पण के समान हो गया है)

रस -

'पउमचरिउ' में प्रायः सभी रसों का समावेश है। वीर, श्रृंगार, करुण, शांत रसों की प्रधानता है। जैन कवि जीवन का पर्यवसान वैराग्य तथा शांति में ही देखना चाहता है। स्वयँभू काव्य में भी वैराग्य निर्वेद अर्थात शांत रस की प्रधानता है, परन्तु वे अन्य रसों की उपेक्षा नहीं करते। करुण रस में स्वयँभू को अद्‌भुत सफलता मिली है। माता का रुदन, भाई का रुदन, सीता की करुण स्थिति, मंदोदरी का विलाप प्रत्येक जगह कवि हृदय की संतप्तता दिखाई देती है।

भाषा -

स्वयँभू की भाषा भाषिक मानदण्डों पर खरी ही नहीं उतरती बल्कि स्वयँ मानदण्ड बन जाती है। ऐसी प्रवाहमयी लोकप्रचलित भाषा अन्य किसी से संभव नहीं हो पाई। शब्द संयोजन भावानुकूल है। भाषा में भावों का उच्छल आवेग, चित्रण की सादगी और भाषा का लोकप्रचलित प्रवाह है।

त्रिभुवन -

रामकाव्य की जो परंपरा स्वयँभू ने चलाई। उनके सबसे छोटे बेटे त्रिभुवन ने आगे बढ़ाया। त्रिभुवन ने स्वतंत्र रूप से कोई काव्य नहीं लिखा। पिता के ही काव्यग्रंथ में परिवर्धन किया। त्रिभुवन ने सात संधि जोड़ कर। तिरासी संधि से 'पउमचरिउ' को नब्बे तक पहुँचाया। स्वयँभू ने सीता को जैनधर्म में दीक्षित कराया था। त्रिभुवन ने रामकथा की परिसमाप्ति राम को जैनधर्म में दीक्षित करा के की। त्रिभुवन भाषा में पंडिताई की झलक दिखाई देती है।

पुष्पदंत (दसवीं शताब्दी ईस्वी)

पुष्पदंत अपभ्रंश के प्रखर, निर्भीक, विलक्षण मेधा के धनी साहित्यकार है। इन्होंने उत्तरपुराण की ग्यारह संधियों में रामकथा का वर्णन किया है। पुष्पदंत ने बहुत श्रध्दा के साथ स्वयँभू को याद किया है। पुष्पदंत में भी रामकथा का आरंभ पुराण परंपरानुसार ही होता है। प्रश्नोत्तर के माध्यम से। पुष्पदंत के काव्य में उठाए प्रश्न या शंका, मुकम्मल तर्क लिए हुए हैं। जिनकी आधार भूमि आस्थायुक्त होते हुए बौध्दिक है। शंकाओं की कुछ बानगी दृष्टव्य है -

- क्या रावण दस मुख के साथ पैदा हुआ था?
- रावण राक्षस था या मनुष्य?
- क्या रावण की बीस आँखें और बीस हाथ थे?
- क्या उसने अपने सिरों से शिव की अर्चना की थी?
- क्या रावण राम के शर से मारा गया था?
- क्या लक्ष्मण के हाथ बहुत लम्बे और स्थिर थे?
- सुग्रीवादि क्या सचमुच वानर थे?
- क्या कुंभकर्ण सचमुच छ महीने सोता था?
- क्या विभीषण आज भी जीवित है?

इन शंकाओं की पृष्ठभूमि पर पुष्पदंत रामकथा कहते हैं। पुष्पदंत की रामकथा व्यास और वाल्मीकि से भिन्न है। रामकथा संबंधी कुछ भिन्नताएँ दृष्टव्य हैं -

- राम लक्ष्मण भी अन्य राजकुमारों की तरह थे। भला-बुरा काम करने वाले यहाँ तक कि अपने पूर्वजन्म में लक्ष्मण ने एक वणिक स्त्री का अपहरण किया था।
- राम की माता का नाम कौशल्या नहीं सुबला है। लक्ष्मण की माता का नाम सुमित्रा नहीं बल्कि कैकयी है। इस प्रसंग मात्र से समूची कहानी एक नये मोड़ पर आ खड़ी होती है।

- राम लक्ष्मण का जन्म अयोध्दा में नहीं काशी में हुआ था। दशरथ काशी के नरेश थे। अयोध्दा बाद में गए।
- राजा जनक ने स्वयँ राम लक्ष्मण को विश्वामित्र के साथ यज्ञ की रक्षा करने के लिए आमंत्रित किया था।
- सीता के अतिरिक्त राम की सात पत्नियाँ थीं।
- सीता जनक तनया नहीं बल्कि मंदोदरी और रावण की पुत्री थी।
- सीता का अपहरण रावण ने नारद के उकसाने पर किया था ना कि शूपर्णनखा का बदला लेने के लिए।
- सीताहरण पंचवटी में नहीं बल्कि बनारस के पास किसी वन में हुआ था।
- वानर आदि विद्याधर थे। राम की सहायता के लिए उन्होंने ये रूप धारण किया था।
- हनुमान रूद्र के नहीं वस्तुतः कामदेव के अवतार थे।
- हनुमान सीता का पता नहीं लगा पाए थे। बालि और रावण को राम ने नहीं लक्ष्मण ने मारा था।
- लक्ष्मण की मृत्यु बीमारी से होती है। उनकी मृत्यु के पश्चात राम लक्ष्मण के पुत्र पृथ्वीचंद्र को राज्य देकर स्वयँ वैराग्य ले लेते हैं।
- दशरथ की मृत्यु राम के अयोध्दा लौटने के बाद होती है। राम श्यामवर्णी नहीं बल्कि पद्मवर्णी हैं। श्यामवर्ण के लक्ष्मण हैं।

उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि पुष्पदंत की रामकथा भिन्न परंपरा का अवगाहन करती है। यद्यपि ब्राह्मण परंपरा के रामकाव्य में जैन परंपरा के रामकाव्य स्वयँभू के रामकाव्य से भी पृथक है। विमलसूरि, रविषेण, स्वयँभू द्वारा वर्णित राम कथा के रहते हुए भी पुष्पदंत ने श्वेताम्बरी मतावलंबी कवि गुणभ्रद में वर्णित रामकथा का अनुसरण किया है। इससे ये तय है, कि उस समय रामकाव्य की दो भिन्न परंपराएँ रही होगी। स्वयँभू और पुष्पदंत दो भिन्न रामकाव्य परंपराओं का प्रतिनीधित्व करते हैं।

पुष्पदंत की भाषा एक खास किस्म की भंगिमा लिए हुए है। पुष्पदंत अलंकारों और छंदों के प्रयोग में निष्णात आचार्य है। मानव और प्रकृति दोनों के सौन्दर्य वर्णन में पुष्पदंत की प्रतिभा लक्षणीय है। डॉ. भयाणी स्वयँभू को अपभ्रंश का कालिदास और पुष्पदंत को भवभूति कहते हैं। दोनों कवियों का साहित्यिक प्रदेय वंदनीय है, जो प्रत्येक काल में नयी अर्थवत्ता के साथ अपने महत्व को स्थापित करता हुआ चलेगा। परवर्ती काल में भी रामकाव्य को आगे बढ़ाने वाले अनेक कवि हुए होगें। उनका साहित्य उपलब्ध नहीं हो पाया है। पंद्रहवी शताब्दी में ' रइधू' कवि की रचना को 'पउम चरउ' के नाम से जाना जाता है। संभवतः रामकथा का उल्लेख मिलता है।

मूलग्रंथ -

- पउमचरिउः महाकवि स्वयँभू भाग 1, प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ
- पउमचरिउ : महाकवि स्वयँभू भाग 2, प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली
- पउमचरिउ : महाकवि स्वयँभू भाग 3, प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली
- पउमचरिउ : महाकवि स्वयँभू भाग 4, प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली
- पउमचरिउ : महाकवि स्वयँभू भाग 5, प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली

सहायक ग्रंथ -

- अपभ्रंश और अवहट्ट एक अन्तर्यात्राः डॉ. शम्भूनाथ पाण्डेय, चौरवम्भा पब्लिशर्स वाराणसी
- हिंदी के विकास में उपभ्रंश का योगः डॉ. नामवर सिंह लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद
- भारतीय परंपरा की खोजः भगवान सिंह सस्ता साहित्य मंडल नई दिल्ली

गजल गायकी ने संगीत के क्षेत्र में अपना एक अलग

निलेष चन्द्र त्रिवेदी

शोधार्थी

विष्वविद्यालय संगीत विभाग, ति. मां. भा. वि. वि. भागलपुर, बिहार।

गजल गायकी ने संगीत के क्षेत्र में अपना एक अलग ही मुकाम हासिल की हुई है, चाहे वह बींसवी शताब्दी के पूवार्ध में हो या अद्यतन। मुख्यतः गजल अरबी साहित्य से शुरू हुई यह एक काव्य विद्या है जो समय के साथ-साथ फारसी, उर्दू एवं हिन्दी साहित्य में भी काफी लोकप्रिय हो चुकी है। यूँ तो गजल में मुख्यतः गम, जुदाई, एहसास, खामोषी इत्यादि मुख्य रुप से प्रथम संभाग में ही हुआ करता है, जिसे गजलगो या गजल गायक अपने-अपने घरानें, तालीम एवं गले की रंजकता के माध्यमों से खुद रु-ब-रु होकर अपने कुषल गायकी के माध्यमों से जनमानस को भावविभोर कराते रहते हैं।

गजल गायकी में शास्त्रीय पक्ष का समावेष होते ही एक अनोखा एहसास जिसमें प्यार की मासूम रुमानियत जो हमारे दिल की गहराईयों में उतरकर एक ऐसा एहसास पैदा करती है जो दिल को छू जाती है और श्रोताओं को एक मदभरी एहसास कराती रहती है। यूँ तो गजल की भाषाएँ उर्दू या फारसी भाषाओं में ही होती हैं, परंतु वर्त्तमान परिप्रेक्ष्य में बहुत सी गजलें हिन्दी साहित्य में लिखी जाने लगी हैं, जिसमें मुख्यतः आशिक-मासूक, हुस्नो-इश्क एवं विरह की व्यथा मुख्य रुप से होती है, जिसमें शास्त्रीय पक्ष जैसे ख्याल इत्यादि के कुछ चलन एवं रागों का सम्मिश्रण विभिन्न घरानों के गायकों के गले की मासूमियत भरी रंजकता से रु-ब-रु होकर गले की आवाज के माध्यम से प्रस्पुटित होती रहती है तभी तो बरबस एक ही स्वर श्रोताओं के मुख से निकलती है आह! वाह!

गजल मुख्यतः श्रृंगार रस प्रधान गायकी है तथा इसे उर्दू साहित्य की आबरु भी कही जाती है। मुख्य रुप से गजल गायकी में छोटा-छोटा आलाप गिटकरी, खटका, मुर्की, कण, आंदोलन, छोटी-छोटी तान, शब्दों की शुद्धता और स्पष्टता, स्वरों का ठहराव, एकल एवं सम्मिश्रित रागदारी और उसमें तबला, हारमोनियम, सितार, वायलिन, मेंडोलिन, सारंगी, तानपूरा इत्यादि वाद्य यंत्रों का प्रयोग कर-कराकर एक चौनदारी के साथ गजल पेश करना जिसमें एक अलग ही एहसास होती है। गजल गायक द्वारा अपने गले की तैयारी और गजल के शब्दों/बोल को भाव के अनुरुप शास्त्रीय पक्ष का प्रयोग कर गजल में प्रयुक्त शब्दों को चलन के माध्यम से पेश करने पर एक अद्‌भुत रुप नजर आती है। कारण है शब्दों की शुद्धता, स्वरों का ठहराव, सच्ची रागदारी, भावों की अभिव्यक्ति तथा ताल, ठेको इत्यादि का सरलतापूर्वक प्रयोग होने से शास्त्रीय संगीत के सूक्ष्म कणों, तत्वों जैसे मींड, खटका, मुर्की कण, स्वरों का लगाव, स्वरों पर ठहराव, बरबस शास्त्रीय तत्वों का परिचय कराते हुए गजल गायकी में चार चाँद लगा जाती है।

जब भी कोई गजल रागों पर आधारित होती है तो बरबस ही श्रोताओं के मुख पर एक अनोखा एहसास पैदा होती रहती हैं। वस्तुतः कई एक गजल गायक अपने गजल गायकी में रागों का विषेष ख्याल रखते थे, इतना ही नहीं उस्ताद मेंहदी हसन साहब तो ऐसे गजल गायक थे जो अपनी गजल

गायकी में शास्त्रीय पक्ष के हरेक रंग यथा ठुमरी, ख्याल ध्रुपद, दादरा और लोक संगीत के तत्वों को भी बखूबी समाहित किया करते थे जो काफी मनमोहक हुआ करती थी। गजल गायकी में मुख्यतः राग, झिझोटी, यमन (ईमन), काफी, किरवानी, खमाज, भीमपरासी, भैरव, केदार, कौषिकी ध्वनि, भूप कल्याण, दरबारी, मियाँ मल्हार गौड़, मल्हार इत्यादी रागों का प्रयोग अक्सर गजल गायक अपने सुविधानुसार गजल गायकी में किया करते हैं। राग भीमपलासी जो काफी थाट का राग है, जिसका वादी स्वर मध्यम एवं संवादी स्वर षड्ज है, इस राग में गंधार और निषाद स्वर कोमल और शेष स्वर शुद्ध लगते हैं। आरोह में ऋषभ और धैवत वर्जित स्वर है तथा अवरोह स ंपूर्ण है। अतः इसकी जाति औडव संपूर्ण है। गायन समय दिन का तृतीय प्रहर है।

आरोह !- नि सा ग म प नी सां ।

अवरोह- सां नि घ प म ग रे सा।

चलन- नि सा ग म प ग म ग रे सा।

इस राग में उस्ताद मेंहदी हसन साहब की गाई हुई प्रचलित गजल जो कहीं से भी राग (ख्याल) के चलन एवं बारिकियों से अलग नहीं दिखती है जो है-

जिंदगी में तो सभी प्यार किया करते हैं।
मैं तो मरकर भी मेरी जान तुझे चाहूँगा।।

राग-झिंझोटी आधारित ग़ज़ल

यह खमाज थाट का राग है। इसमें शुद्ध और कोमल निषाद लगता है बाकि सभी स्वर शुद्ध लगते हैं। आरोह में शुद्ध नी और अवरोह में कोमल नी लगता है। इसकी प्रकृति शुद्ध है इसमें ठुमरियां अधिकतर गाई जाती है। इसका वादी गंधार और संवादी धैवत है। गायन समय रात्रि का द्वितीय प्रहर है। इसकी जाति सम्पूर्ण है।

आरोह– सा रे ग म प ध नि सां
अवरोह– सां नि प म ग रे सा
चलन– ध सा रे म गं, प म ग रे, सा नि ध प
गजल– गुलों में रंग भरे, बाद-ए-नौ बहारे चले
चले भी आओ कि गुलशन का कारोबार चले।।

(1) कफस उदास है यारों, सबा से क ुछ कहो।
कहीं तो बहर-ए-खुदा आज जिक्र-ए-यार चले।।

(2) जो हम पे गुजरी सो गुजरी मगर शब-ए-हिज्राँ।
हमारे अष्क तेरे आकबत सँवार चले।।

(3) कभी तो सुबह तेरे कुंज-ए-लब्ज हो आगाज। कभी तो शब सर-ए-काकुल से मुष्क-ए-बार चले।।

(4) मक घम, फैज, कोई राह में जचा ही नहीं।
जो कू-ए-यार से निकले तो सू-ए-दार चले।।

(5) बड़ा है दर्द का रिश्ता, ये दिल गरीब सही
तुम्हारे नाम पे आयेंगे गम गुसार चले।।

राग-यमन आधारित ग़ज़ल

प्राचीन ग्रन्थों में केवल 'कल्याण' राग दिखता है 'यमन' नहीं। आधुनिक ग्रन्थों में यमन एक सम्पूर्ण राग बताया है। इसमें कई बार पंचम का अल्प प्रयोग अवष्य किया जाता है। अब तो पंचम का महत्वपूर्ण स्थान है यमन राग में। इसकी जाति सम्पूर्ण है ओर वादी गंधार और स ंवादी निषाद स्वर है। समय रात्रि का प्रथम प्रहर है।

आरोह– नि रे ग म प ध नि सां।
अवरोह– सां नि ध प म ग रे सां।
चलन– निरेग, रेसा, पमगरेसा, निरेगरे, निरेसा।
गजल– रंजिश ही सही दिल ही दुःखाने के लिए आ।
आ फिर से मुझे छोड़ के जाने के लिए आ।।

(1) पहले से मरासिम न सही फिर भी कभी तो।
रस्म-ओ-रह-ए-दुनिया ही निभाने के लिए आ।।

(2) किस-किस को बताएंगे जुदाई का सबब हम।
तू मुझ से खफा है तो जमाने के लिए आ।।

(3) कुछ तो मेरे पिन्दार-ए-मुहब्बत का भरम रख।
तू भी तो कभी मुझको मनाने के लिए आ।।

राग-खमाज आधारित ग़ज़ल

यह राग इसके नाम के ठाठ से ही उत्पन्न है। यह पाडव सम्पूर्ण जाति का राग है। इसमें सातों स्वर लगते हैं। इसके आरोह में रिशभ नहीं लगता है और अवरोह में लगता है। इसका वादी स्वर गंधार तथा संवादी स्वर निषाद है। गायन का समय रात्रि का द्वितीय प्रहर है। निषाद कोमल लगता है।

आरोह– सा, ग म, प, ध नि सां।
अवरोह– सां नि ध प, म ग, रे सा।
चलन– ग म ध नि सां, नि ध, म प ध, म ग।
गजल– मुहब्बत करने वाले कम ना होंगे।
तेरी महफिल में लेकिन हम न होंगे।।

(1) जमाने भर के गम या इक तेरा गम।।
ये गम होगा तो कितने गम ना होंगे।

(2) अगर तू इत्तफाकन मिल भी जाये
तेरी फुरकत के सदमें कम न होंगे।

विदित हो कि उस्ताद गुलाम अली खान साहब, मेंहदी हसन साहब, जगजीत सिंह साहब, बेगम अख्तर, पिनाज मषानी इत्यादि ऐसे-ऐसे कई एक संगीतज्ञ (गजल गायकों) ने गजल में शास्त्रीय पक्ष को बखूबी निभाया है जिसमें गजल के संगीत के स्वर प्राण एवं ताल आत्मा से आत्मसात कराती है।

दलित साहित्य और वैचारिकी का अन्तः सम्बंध

मुकेश कुमार मिरोठा

सहायक प्रोफेसर (हिन्दी विभाग),ज ामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली

जिस समाज के ऊर्जामयी जीवन को निचोड़कर रख देने वाला पीड़ादायक अनुभव साथी हो, निस्पंदन कर देने वाली गरीबी हो, दर्द में सिक्त अतीत हो, अपमान, अत्याचार का भीषण वर्तमान हो, उस समाज, समुदाय या वर्ग में किंचित चेतना का प्रस्फुटन अगर होता है तो वह दीर्घगामी, चेतना सम्पन्न, विरोध, विद्रोह की तीक्ष्ण धार लिए हुए होता है। संकटों के बवंडर में भी वह दृढ़ स्तम्भ की भांति स्थिर रहकर समुदाय में ज्ञान चेतना का निरंतर प्रचार-प्रसार करता रहता है। सामंतवाद, पुजीवाद का धुर विरोध करता हुआ वह चेतना के नए क्षैतिज की तरफ धावित रहता है। उसके अनुभवों की ताकत सामाजिक परिवर्तनों का स्वर बुलंद करती है। ऐसा कोई धीमा स्वर भी उसके पीड़ित अनुभवों को साहस का नया औजार देने में सक्षम होता है। ऐसे समाज का यथार्थवादी स्वरूप उसके प्रतिरूपों में झलकता रहता है। साहित्य, कला, संगीत, समाज, राजनीति, संस्कृति, आर्थिक और तो और धार्मिक स्तर पर भी ऐसा समाज नए सिरे से सोचना प्रारम्भ कर देता है। आधुनिकता, बाजारवाद, भूमंडलीकृत वैश्विक परिस्थितियों के मध्य तकनीक और साहित्य ज्क सहारा लेकर ऐसा समाज ग्लोबल बनता चला जाता है। अब उसकी परेशानी, दर्द और दिनचर्या एक 'क्लिक' या 'टच' भर की दूरी पर होती है। उसका एक 'टच' उसे ष्अनटच' से वैश्विक स्तर पर लोकप्रिय बना देने की ताकत रखता है। अतः ऐसे तकनीक और मीडिया के युग में लगभग सभी को निरंतर अपडेट बने रहने की आवश्यकता होती है। हमारा साहित्य इस मामले में सांस्कृतिक बोध से तो सम्पन्न होता है लेकिन नवीन वैचारिकी उसे भी सवालों के कटघरे में खड़ी तो करती ही है।

पस्त होते समाज को टॉनिक देने का कार्य साहित्य करता रहा है। साहित्य के अनेक उद्देश्यों में से एक यह भी है। लेकिन अस्मितामूलक विमर्श ने साहित्य को नई पहचान, नए तेवर, नए भाव, नया शिल्प और नवोन्मेषी चेतना से भरपूर साहित्यकारों की पूरी शृंखला का दर्शन कराया है। वस्तुतः कोई भी जन समुदाय जब सांस्कृतिक माध्यमों से अपनी अस्मिता खोजता है तब साहित्य में भी उसकी अभिव्यक्ति होती है। जनपदीय सांस्कृति अस्मिता, आदिवासी, दलित, स्त्री, जाति एवं सत्ता आधारित अस्मिता की परंपरा वर्तमान में ज्यादा प्रासंगिक नजर आती है। इन सब विमर्शों की साहित्यिक प्रदेयता भी अपने सर्वश्रेष्ठ रूप में मौजूद है। इनमें से साहित्य में दलित अस्मिता एवं विमर्श विशेष रुप से उल्लेखनीय है। व्यापक स्तर पर देखा जाए तो उक्त लिखित सभी अस्मिताएं दलित प्रश्नों के साथ खड़ी नजर आती हैं। तमाम अंतर्विरोधों को दरकिनार करते हुए हम कह सकते हैं कि दलित विमर्श अपने आप में पहचान है। वर्तमान हिंदी साहित्य में उस का महत्वपूर्ण स्थान है। मैं तो कहूंगा कि भारतीय साहित्य और विदेशी साहित्य में भी (उदाहरणस्वरूप तमिल, तेलुगू दलित आंदोलन और ब्लैक लिटरेचर) उसकी धमक मौजूद है। दलित साहित्य के पैरोकारों ने उसका अलग समाजशास्त्र, सौंदर्यशास्त्र, भाषाशास्त्र

विकसित कर दिया है, जो आने वाली पीढ़ी के लिए मार्गदर्शन का कार्य करेगी।

वैचारिकता के संप्रेषण के लिए अनुभव की सघनता आवश्यक है। अनुभव से विचार का गहरा संबंध होता है। यहां सवाल किया जा सकता है कि अनुभव और विचार भिन्न-भिन्न है और अनुभव को विचार की संज्ञा नहीं दी जा सकती है लेकिन हमें यह भी याद रखना चाहिए कि किसी भी विचार को अनुभव ही प्रमाणित करता है। हमारा भारतीय साहित्य इसका उदाहरण है। दलित साहित्य में तो अनुभव और विचार का समीकरण रचना को प्रौढ़ बनाता है। अनुभव उसमें जीवंतता प्रदान करते हैं। उसे यथार्थ के नजदीक ले जाते हैं। अतः दलित साहित्य और उसकी वैचारिकी वर्तमान समय में ज्यादा प्रासंगिक, सटीक, जनोपयोगी और उज्जवल चेतनायी भविष्य की सूचक मानी जा सकती है। स्व अनुभव और अंबेडकरवादी वैचारिकी मिलकर साहित्य को नया आयाम प्रदान कर रही हैं। भाषा की संश्लिष्टता उसे मर्मस्पर्शी बनाने में योगदान कर रही हैं। अब तो हमने स्वयं की भाषा और प्रतिमानों की भी भूमिका का चयन कर लिया है। अतः जनशक्ति से संपन्न लोकधर्मी, भ्रांतिधर्मी साहित्य के रूप में दलित साहित्य को देखा जाए तो वह ज्यादा सार्थक हो सकता है। साहित्य समाज की साधना है तो उसका समाज साहित्य की कसौटी। साहित्य में किसी समुदाय या वर्ग के काल विशेष की ऐतिहासिक स्थितियों, समस्याओं, जीवनानुभवों और विचारों की व्यंजना होती है। साहित्य सामाजिक परिवर्तन और विकास को प्रभावित करने वाली शक्ति भी है। वह सभी प्रकार की चेतना के निर्माण एवं विकास में भी सहायक होती है। साहित्य समाज से ही भाव संचयन, संग्रह का कार्य करता है, अतः दोनों एक दूसरे के पूरक भी हैं। दलित समाज और साहित्य भी इसी तरह के सामाजिक सरोकारों से उत्पन्न एवं जीवंत भावधारा है। इसमें समय, समाज, संस्कृति और दर्शन की समस्त चिंतन अवधारणाएं एक साथ प्रवाहित है। यथास्थितिवाद के विरोध में खड़ा दलित साहित्य एक रचनात्मक आंदोलन भी है जिसकी अपनी एक राष्ट्रीय-अंतराष्ट्रीय पहचान है।

दलित साहित्य की मुख्य चिंता हाशियाकृत समाज है। इसलिए इसके तेवर और अंदाज जुदा हैं। इसमें विद्रोही अनुभव, उत्पीड़न का अंत और सामाजिक समता की कामना है। अतः इसके तेवर नए हैं। इसके वैचारिकी में भी यह बात दृष्टिगत होती है। निजीकरण, उदारवाद, संचार क्रांति के वर्तमान दौर में दलित साहित्य और उसकी वैचारिकी का प्रस्तुतीकरण नवीनीकृत रूप में हो रहा है। उपयुक्त बिंदुओं के अलावा स्वास्थ्य, शिक्षा, बीमा, फिल्म एवं अन्य मनोरंजन के अंग, शिल्प एवं अन्य कलाएं, पत्रकारिता, व्यापार, विदेश, सांस्कृतिक कलात्मकता, आलोचना, राजनीतिक मुद्दों आदि अन्यान्य विषयों पर भी वैचारिकी नए टूल्स के साथ उपस्थित है। दलित साहित्य के बरक्स इन सभी कलागत क्षेत्रों में भी हमने पहचान बना ली है। जैसे दलित पत्रकारिता एवं मीडिया। दलित पत्रकारिता का सही अर्थ बताते हुए कंवल भारती लिखते हैं। ''दलित साहित्य की तरह दलित पत्रकारिता को भी अक्सर गलत अर्थ में समझा जाता है। दलित पत्रकारिता को 'दलित का दलित पर लेखन' माना जाता है, जो गलत है। वास्तव में दलित पत्रकारिता का अर्थ है, देश की समस्याओं पर राजनीति, समाज और जनतंत्र पर वह लेखन या चिंतन, जो निचले वर्ग से आया है।''[1] आदरणीय भारती जी का उक्त कथन दलित वैचारिकी की नवीन राहों का संकेतक भी है। दलित से इतर जो कुछ लिखा जाता है, आमतौर पर उसे ही मुख्यधारा का मान लिया जाता है। इस तरह की बातें समतासूचक नहीं है और लोकतंत्र के लिए बाधक भी हैं। अतः जो बातें हमें उद्वेलित करती हैं, परेशान करती हैं, मर्म पर चोट करती हैं, हमें पूरी बेबाकी और ईमानदारी से उस पर बात करनी चाहिए। रोहित वेमुला, नाट इज माय माय नेम, ळैज, सरकार की अन्य अलोककल्याणकारी योजनाओं, भ्रष्टाचार, आतंकवाद, महिला सशक्तिकरण, बजट, अल्पसंख्यक वर्गों की तकलीफों आदि पर हमारा रुख स्पष्ट हुआ है। इन सब में हमारी सहमति.असहमति को देखकर

दलित वैचारिकी की श्रेष्ठता का पता चलता है। हमारी टिप्पणियों से पता लगने लगा है कि गंभीर विमर्श क्या है। हमारी रचनात्मक सृजनात्मक और आंदोलन धर्मिकता निरंतर व वर्धित है और अब हमारा मत उपेक्षित न होकर ज्यादा सार्थक हो रहा है हमारी दृढ़ता इसके मूल में है।

आधुनिक दलित समाज संघर्षमयी चेतना से संपृक्त है। इसके पीछे दलित साहित्य की लंबी एवं सशक्त रचना श्रृंखला कारण के रूप में विद्यमान है। प्रारंभ से ही अनेक रचनाकार, संपादक, प्रकाशक, राजनेता, समाज सुधारक, वैचारिक प्रबुद्ध मानस इसके संवर्धन का हिस्सा बने हैं। सामाजिक विषमता के खिलाफ इनकी सम्मिलित आवाज बुलंद होकर परंपरा को तोड़ते हुए नवीन संदर्भो को उजागर उजागर कर रही हैं। वर्तमान का दलित साहित्य का प्रखर रुप इनकी मेहनत और क्रियाशीलता का ही परिणाम है। अतः हमें अपने इतिहास को विस्मृत, खंडित और विवादग्रस्त होने से बचाना चाहिए। सदियों से चली आ रही आर्य परंपरा के शोषित रूप को भूलाकर हम परस्पर विवादों में उलझा दिए जाते हैं। हमें इससे बचना चाहिए और समेकित रुप से समाज में व्याप्त विकृतियों को सामने लाने का कार्य करना चाहिए। हमें दलित समुदाय को और बेहतर, प्रबुद्ध और नैतिक बनाने के लिए मिलकर वैज्ञानिक दिशा में आगे बढ़ना होगा। इसके लिए अगर हमें विरोधी से निर्माण और परिष्कार के उपयोगी सूत्र हासिल करने पड़े तो भी हमें स्वीकार्य होना चाहिए। हम एक ऐसे समाज के विकास में सहभागी बने जिसमें तकनीकी का विकास चरम पर हो, मनुष्य का सहज बोध सौंदर्य और गहन इंद्रियानुभूति भी शिखर पर हो। अपने संघर्षों, दुरूखों, आपत्तियों, अत्याचारों से मुकाबला कर उन्हें पस्त करते हुए कला, साहित्य, संगीत, वैचारिकी और सौंदर्य की उच्चतम उपलब्धियों को हासिल कर सकें। हमारा भविष्य लक्ष्यहीन न हो। विज्ञान, प्रौद्योगिकी, सूचना तंत्र की असीमित संभावनाओं के द्वार पर हम भी साथ खड़े हों। इन सबमें हमारा मार्गदर्शन दलित साहित्य अपनी पुरजोर ताकत से करें। और वैचारिकी उसका सहयोग करे तो स्वप्न और यथार्थ का फासला खत्म हो सकता है। हिंदी पत्रकारिता की इस कमी की ओर संकेत करते हुए प्रो. श्यौराज सिंह 'बेचैन' लिखते हैं. ''वर्णभेद के प्रश्न पर हिंदी पत्रकारिता की भूमिका तो जगजाहिर हो ही चुकी है, अब क्या व्यवहार में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, अवसरों की समानता और इंसानी-बंधुता की बातें कोरी लफ्फाजी नहीं है? अन्यथा दलितों के लिए उसकी मूर्त व्यवहारिकता क्या है?''[2] भारतीय मीडिया का जातिवादी स्वरूप हमारे सामने नग्नरूप में आता है। सोशल मीडिया ने जरूर इसमें सेंध लगाई है। हमारी अनेक समस्याओं, आशा-आकांक्षाओं के विस्तृत संसार को सोशल मीडिया के जगह ने जगह दी है।

स्वतंत्रता के बाद उपलब्ध आरक्षण की ताकत शैक्षिक-अवसरों, जाति आधारित राजनीतिक व्यवस्था और भूमंडलीकरण ने हमारे मध्य भी नए-नए अभिजन वर्ग को उभारने का मौका दिया है। इन अभिजनों को निजी स्वार्थ की अपेक्षा हमारे दोस्त, चिंतक और मार्गदर्शक बन कर रहना चाहिए। गैर-दलित अपने चिंतन और जाति-पद का दुरुपयोग हमारे खिलाफ करते हैं। ऐसे अभिजन उनका मोहरा बन जाते हैं। गैर-दलितों का मानस बदले बिना संपक समाज की स्थापना मुश्किल है। समाजशास्त्रीय धीरूभाई सेठ इस प्रश्न पर गौर करते हुए लिखते हैं- ''जातिवादी विरोध और प्रगतिशीलता का दावा करने वाले गैर-दलित आज भी दलित समस्या को कमोबेश पुराने परिप्रेक्ष्य में रखकर ही पेश कर रहे हैं। इसके पीछे एक जाना बुझा रवैया है जो कथित आधुनिक, वैज्ञानिक व निरपेक्ष दृष्टि की आड़ में दलितों की समाज में सांस्कृतिक भागीदारी रोक देता है।''[3] सामाजिक और राजनीतिक भागीदारी पर भी इनकी चुप्पी संदेह के घेरे में है। जब तक हमारे मध्य रागात्मक संवाद, तदात्म्य, सत्ता व वर्चस्व के आवश्यक प्रश्न और समुचित हिस्सेदारी पर बात नहीं होगी, हमें भी संभल कर चलना होगा। आवास, भोजन, शिक्षा तथा रोजगार से संबंधित समस्याओं पर वैचारिकी भी चिंतन करें। हमारे अधूरे स्वप्नों और उज्ज्वल भविष्य के लिए वैचारिकी को बुलंद हौसलों के साथ

आगे आकर हम सबका प्रतिनिधित्व करना होगा। साहित्य, बाजार, तंत्र के साथ-साथ हम सब भी उचित मार्गदर्शन के इंतजार में हैं। कला, संगीत, संस्कृति की त्रयी भी वैचारिकी के स्पर्श हेतु प्रतीक्षारत है।

स्थापित व्यवस्था के विरुद्ध विचार की युद्ध के तौर पर अपनी पहचान बना चुका दलित साहित्य आज मुख्य विषय बन चुका है। दलित वर्ग को उसके शोषण का अहसास और सामाजिक समानता की प्राप्ति हेतु उसे संघर्षरत करना इसका उद्देश्य है। कलम को हथियार बनाकर अनेक लेखक आज पथ प्रदर्शक की भूमिका में है। दलित वर्ग से इतर अन्य लेखक भी इसमें अपनी लोकतांत्रिक उपस्थिति दर्ज करवा रहे हैं। दलितों की वेदना, व्यथा, पीड़ा, उपेक्षा, अपमान आदि में उनके विचार उपयोगी है। साहित्य के धरातल पर उनके संवेदनात्मक क्रिया-व्यापारों का हमें समर्थन करना चाहिए। साहित्य के भविष्य पर सवाल का जवाब देते हुए कथाकार उदय प्रकाश कहते हैं—''दलितों को अतीतजीवी नहीं भविष्यदर्शी होना चाहिए। सवर्णवादी सांस्कृतिककरण का शिकार होकर, सवर्णों द्वारा ही महिमामंडित होने और पुरस्कृत होने से, दलित लेखकों-बौद्धिकों को बचना होगा। वरना हमारे पास मायावती तो होंगी, अक्का महादेवी नहीं, रामविलास पासवान तो होंगे, कबीर नहीं।''[4] उदय प्रकाश जी का उक्त कथन प्रासंगिक है। हमारे कई साहित्यकार जिन मुद्दों, विचारों और धाराओं का विरोध करते हैं, अवसर मिलता ही ऐसी सरकारों से पुरस्कृत होते देर नहीं लगाते। यहां सम्मान वापसी जैसा आंदोलन भी दिखाई नहीं देता। योजनाबद्ध लेखन, अवसरवादी अनुकूलता में परिवर्तित होता चला जाता है। लोकतंत्र के नाम पर हम कुछ भी, किसी से भी स्वीकार करने को तैयार रहते हैं। जन सवाल उठते हैं तो पुरस्कार समानता की बात करने लगते हैं। हमें इस तरह की प्रवृति से बचना चाहिए। दलित साहित्य की वैचारिकी की धार तथाकथित सम्मानों से कुंद नहीं होनी चाहिए। ऐसा हमारा अनथक प्रयास होगा।

दलित साहित्य का अपना सौंदर्यशास्त्र है। वह निरंतर विकसनशील है। वैचारिकी का योग संकट अवश्य है लेकिन निरंतर बढ़ती दलित साहित्य की प्रसिद्धि थोड़ा आश्वस्त करती है। हमें आलोचकों की उदासीनता एवं कुटु आलोचना से व्यथित नहीं होना चाहिए। हिंदी आलोचना आज स्वयं गुटबाजी का शिकार है। हिंदी साहित्य के वर्तमान परिदृश्य में आपको ऐसे अनेक उदाहरण मिल जाएंगे, जहां गुटबाजी के कोष्ठ, निकृष्ट, निम्न, उच्च, नवोन्मेषी, नवोदित, राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय आदि अनेक उपाधियों से साहित्य का कल्याण किया है। तथाकथित आलोचना के अभाव में अनेक लेखक निराशा, अवसाद के शिकार हो जाते हैं। अतः इस तरह के आलोचक, आलोचना के मोह को त्याग कर नकारवादी मानसिकता के खिलाफ हमारी वैचारिकी को खड़ा होना होगा। सवर्णवादी आलोचना एक दिन स्वयं हमारी वैचारिकी का सम्मान करने को मजबूर हो जाएगी। जरूरत बस श्रेष्ठ लेखन की है। अनुभूति की प्रमाणिकता जैसे महत्वपूर्ण विशिष्टता हमारी वैचारिकी को उनसे ज्यादा आकर्षक बनाती है। हमारी यह प्रमाणिकता व्यक्तिगत न होकर सामूहिक और सामुदायिक है। अतः हम व्यष्टि की बात करके भी समष्टि के अनुभव-संदर्भों को ही व्यक्त कर रहे होते हैं। प्रसिद्ध साहित्यकार जयप्रकाश कर्दम के अनुसार लोकोपयोगी होना किसी भी साहित्य की अनिवार्य शर्त है दलित साहित्य और उसके वैचारिकी इस शर्त पर खरी उतरती भी है।

दलित साहित्य और उसकी वैचारिकी ने जनतांत्रिकता और उसके नवीन मूल्यों का विकास, विस्तार किया है शिल्पी स्तर पर भी यह परिवर्तन दिखाई देता है। न जाने कितने नवीन शब्दों, अर्थ, ध्वनियाँ, प्रतीक और कलागत उपमान दलित साहित्य की रचनात्मक देन है। वैचारिकी को भी परंपरागत प्रतिमानों का मोह त्यागकर अपना स्वयं का तंत्र विकसित करना होगा ताकि भाषायी स्तर पर भी साहित्य संवेदना और साहित्य भाषा का अनुभूतिपरक रूप सामने आ सके। दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र के बरक्स हमें उसके समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण पर

ज्यादा ध्यान देने की आवश्यकता है। दलित साहित्य के सौंदर्यशास्त्र और समाजशास्त्र के विभेद को भुलाकर सौंदर्यशास्त्रीय प्रभावों या समाजशास्त्रीय स्वरूप की व्याख्या भी जरूरी है। प्रसन्नता की बात है कि दोनों की स्तर पर दलित वैचारिकी सजग है और इन विषयों पर महत्वपूर्ण पुस्तकें सामने आई भी हैं। हालांकि मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र और दलित साहित्य के सौंदर्यशास्त्र के मध्य सामानांतर विकास की बात होती आई है लेकिन दलित वैचारिकी को विचारधारात्मक स्तर पर इसे स्वतंत्र मानना चाहिए। उसका दर्शन और विचार वर्णवादी व्यवस्था के प्रतीकार के रूप में होता है। दलित सौंदर्यशास्त्र सामाजिक-सांस्कृतिक आलोचना के केंद्र में रहता है। दलित साहित्य यातना से उत्पन्न एक आवाज का प्रतीक है। अतः इसके समाजशास्त्रीय और सौंदर्यशास्त्रीय पैमाने अलग एवं स्वतंत्र होंगे।

स्पष्ट है कि आज दलित साहित्य और उसकी वैचारिकी ने लंबा रास्ता तय कर लिया है। अपने समक्ष उठने वाली चुनौतियों, समस्याओं से निरंतर वह संघर्षरत भी है। वर्तमान में भी अनेक बाधाएं उसके मार्ग में हैं। हिंदुत्व, साम्प्रदायिकता, राष्ट्रवाद, नौकरीपेशा वर्ग की उपेक्षा, मध्यवर्ग का तनाव, भ्रष्ट पाखंडी राजनीति, सांप्रदायिकता, जातियों का आपसी संघर्ष, गुटबाजी, उदासीनता, सोशल मीडिया के दुष्प्रभावों, उत्तर आधुनिकता की जटिलताएं, पर्यावरण, भाषायी असमानता, लिंगभेद, अंतर्द्वंद, संत्रास, दलित स्त्री के संघर्ष व उसकी मुक्ति, दलित बालसाहित्य का अभाव, मीडिया में उसकी उपस्थिति आदि स्थितियों का वर्णन शेष है। अपनी संभावनापूर्ण रचनात्मकता को साकार करके ही दलित साहित्य इन सब से जुझ सकता है। दलित साहित्य, वैचारिकी की पहचान सम्पूर्ण मानवीय अनुभव की दास्तान में निहित होनी चाहिए। मानवीयता, समानता और सम्यक भावों की प्राप्ति के आवश्यक अवयव दलित साहित्य में अन्तर्युक्त हैं, जरूरत उन्हें बस जागृत करने की है।

संदर्भ ग्रंथ-

1. मीडिया और दलित (सं. श्यौराज सिंह 'बेचैन', एस.एस. गौतम), गौतम बुक सेंटर, 2014, पृ. सं. 161
2. समाज, राजनीति और जनतंत्र, कंवल भारती, स्वराज प्रकाशन दिल्ली, 2009, पृ. सं. 8
3. आधुनिकता के आईने में दलित, सं. अभय कुमार दुबे, वाणी प्रकाशन, 2004, पृ. सं. 39
4. हंस, अगस्त, 2004, (सं.) राजेन्द्र यादव, दरियागंज, दिल्ली, पृ. सं. 219

अंकन

भारतीय कला में वस्तुनिरपेक्ष कलाकारों का योगदान

डॉ. हेमन्त कुमार राय

अध्यक्ष, एसोसिएट प्रोफेसर
चित्रकला विभाग, एम. एम. एच. - कॉलेज,
गाजियाबाद (उ.प्र.)

गगन कुमार

शोधार्थी - चित्रकला विभाग
एम. एम. एच. - कॉलिज
गाजियाबाद (उ.प्र.)

वस्तुनिरपेक्ष कलाकृतियों के सौन्दर्यात्मकता का रस गृहण हेतु किसी प्रकार के पूर्व ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती। यदि पूर्व कालीन कलाओं पर विचार किया जाए यह निष्कर्ष निकल कर आता है अधिकाँश कलाकृतियों को कलाकार ने आत्म अभिव्यक्ति के आधार पर नहीं अपितु अपने आश्रयदाताओं की इच्छा के अनुसार ही निर्मित किया गया है। मध्यकाल की कला हो या मुगल काल की कला, इनमें ऐसा प्रतीत होता है कलाकार ने कलाकृतियों का निर्माण करते समय स्वयं को एक विशेष बंधन में बाँधने को विवश हो गया था। यद्यपि उसने अपनी कला में आश्चर्यजनक रूप से विषय वस्तु को पूर्ण रूप से सुसज्जित करने का प्रयास किया है तथापि उसकी कला में स्वयं के विचारों को दरकिनार कर, अपने आश्रयदाता के अनुसार कलाकृतियों का निर्माण का प्रदर्शन दिखाई देता है। ऐसा लगता है कि मानो कलाकार द्वारा निर्मित कलाकृतियों में उसके मन के भाव नहीं बल्कि उसके आश्रयदाता के अनुसार विषय वस्तु का रूपांकित करना ही कलाकार का उद्देश्य था। इस प्रकार कलाकृतियों के निर्माण करने से कलाकार का मन ऊब चुका था और कलाकारों ने स्वेच्छानुसार कलाकृतियों का निर्माण प्रारम्भ कर दिया व कला में आधुनिकता का प्रारम्भ हुआ। इस काल में अनेक शैलियों का उदय हुआ, जिसमें वस्तुनिरपेक्ष कला एक प्रमुख कला शैली है।

वह कला, जिसमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वस्तु के बाह्य रूप की ओर कोई संकेत नहीं होता है, वस्तुनिरपेक्ष कला कहते हैं।[1] अंग्रेजी भाषा में इस कला को 'एब्स्ट्रेक्ट' या 'नॉन फिगरेटिव' कहा जाता है, किंतु 'एब्स्ट्रेक्ट' का अर्थ - सारतत्व निकालना, होने के कारण अनेक विद्वान इस शब्द को उचित नहीं मानते है तथा वे 'नॉन फिगरेटिव' शब्द को ही कहना अधिक उचित मानते हैं। मोन्द्रिया तथा कान्डिस्की नामक प्रमुख कलाकारों को वस्तुनिरपेक्ष कला का प्रणेता माना जाता है। इस कला के पहले वर्ग में किसी प्रत्यक्ष के मूल रूप से प्रेरित होकर किंतु बाह्य रूप को हटाकर कलाकृतियों का निर्माण किया जाता है वही दूसरे वर्ग में काल्पनिक तथा भावात्मक आधार पर वस्तुनिरपेक्ष आकारों की योजना के माध्यम से कलाकृतियों का निर्माण किया जाता है। भारतीय कला पर वस्तुनिरपेक्षता का अत्यधिक प्रभाव पड़ा और अनेक भारतीय कलाकारों की कला में वस्तुनिरपेक्ष भावों का समावेश हो गया।

भारतीय कलाकारों में प्रमुख शान्ति दवे का जन्म वर्ष 1931 में गुजरात में हुआ था। उनकी आरम्भिक कला पर घनवाद का कुछ प्रभाव दिखाई देता है। शान्ति दवे ने अपनी कलाकृतियों में चमकदार रंगों के साथ तूलिका का विशेष प्रकार से प्रयोग किया है।[2] उन्होंने मोम, अलसी का तेल, वार्निष व जिंक ऑक्साइड के मिश्रण से तैयार मोटे रंगों को स्पैचुला के द्वारा कलाकृतियों के निर्माण में प्रयोग किया है। चित्र के धरातल पर रंग आगे की ओर उभरा हुआ है। उन्होंने अपनी अमूर्त कलाकृतियों को निजी तकनीक तथा रंग व्यवहार के माध्यम से

निर्मित किया है। उनकी कलाकृतियाँ किसी सादृश्यमूलकता के समान दिखाई नहीं देती है। उन्होंने अपनी कलाकृतियों में रंगों को इस प्रकार लगाया है कि रंग एक - दूसरे में समाहित प्रतीत होते हैं। भारत सरकार ने वर्ष 1985 में शान्ति दवे को पद्मश्री पुरस्कार से सम्मानित किया था।[3]

प्रतिष्ठित भारतीय कलाकार सैयद हैदर रज़ा का जन्म वर्ष 1922 में हुआ था। वर्ष 1939 में इन्होंने हाई स्कूल की परीक्षा पास की तदपश्चात नागपुर के कला विद्यालय में प्रवेश लिया और फिर वर्ष 1946 से वर्ष 1948 तक जे. जे. स्कूल ऑफ आर्ट - मुंबई से शिक्षा प्राप्त की वर्ष 1947 में भारत विभाजन के दौरान हुई त्रासदी में उनके चार - भाई बहन पाकिस्तान चले गए व रज़ा और उनकी छोटी बहन ने भारत में ही रहने का निश्चय किया था।[4] रज़ा वर्ष 1947 में निर्मित प्रोग्रेसिव कलाकार संघ के प्रमुख कलाकारों में से एक थे तथा इस संघ के कलाकार भारतीय चित्रकला में परिवर्तन करना चाहते थे। सभी कलाकारों का मानना था जिस प्रकार विज्ञान के प्रसार द्वारा हर ओर परिवर्तन हो रहा है उसी प्रकार कला में भी परिवर्तन होना चाहिए। रज़ा के अनुसार - "हमारा मानना था कि रुमान और काव्यात्मक शैली को छोड़कर उस समय हमें एक ऐसी शैली को अपनाना चाहिए जो उस समय के वातावरण को, देश के गाँव या शहर के हालात और जिंदगी को चित्रों में पेश कर सकें।"[5] सैयद हैदर रज़ा ने वर्ष 1948 से वर्ष 1950 के काल में केरल, राजस्थान, मध्य प्रदेश आदि राज्यों का भ्रमण किया और यहाँ के वातावरण तथा जीवन का बहुत ही निकटता से अध्ययन किया। रज़ा ने अपनी कलाकृतियों में भारत भ्रमण के दौरान अर्जित किए हुए अपने अनुभवों तथा पेरिस के माहौल को साथ जोड़कर अनेक प्रयोग किये थे। फ्राँसीसी कलाकार जानिन मोज़िला से विवाह के उपरान्त वे फ्रांस जाकर रहने लगे थे किन्तु भारत से आत्मीय लगाव के कारण अवसर मिलते ही रज़ा भारत आ जाते थे। जहाँ एक ओर श्री दरियाव सिंह राठौर ने रज़ा के मन में कला के प्रति रुचि जागृत की, वही दूसरी ओर श्री राजेंद्र लहरी के माध्यम से रज़ा का हिन्दी कविता के प्रति लगाव पैदा हुआ था।[6] रज़ा का हृदय पूर्ण रूप से पवित्र था उन्होंने कुरान के साथ रामायण और गीता का भी गहन अध्ययन किया था। सैयद हैदर रज़ा ने अपने कला जीवन के आरंभिक काल में दृष्य चित्र का निर्माण किया था धीरे-धीरे वे प्रकृति की तरफ आकर्षित होने लगे। प्राकृतिक दृश्य चित्र धीरे - धीरे उनकी कला में अमूर्त प्रभावों का रूप लेता गया। रज़ा ने रंगों तथा रेखाओं को एक नया अर्थ प्रदान किया था। सैयद हैदर रज़ा की कला में बिंदु एक ऊर्जात्मक पक्ष था, जिसका विश्लेषण करते हुए उन्होंने कहा था कि "जैसे रेखा, वृत्त, त्रिभुज, वर्ग तथा शष्ठभुज आदि कुछ आधारभूत रूप है वैसे ही हमें वृहदाकार से आधारभूत तत्व बीज तक पहुंचना है, बीज ही प्राण है, आइडिया है।" रज़ा ने जल रंग, एक्रेलिक रंग तथा तेल रंगों में भी कलाकर्म किया था। एक लघु प्रतीक के रूप में बिंदु शक्ति की एकाग्रता को प्रदर्शित करता है। रज़ा के अनुसार - "चित्रकला एक सजीव वस्तु है जो साँस लेती है। एक चित्रकार के पास दृष्टि होनी चाहिये क्योंकि एक सजीव अवधारणा और छिपे हुए यथार्थ का अन्वेषण इस दृष्टि से ही सम्भव है।"[7] उन्होंने सफेद, नारंगी, पीला, लाल और काला रंगों का अधिक प्रयोग किया था। रज़ा काले रंग को सर्वोपरि मानते थे, इसका तात्पर्य यही कहा जा सकता है कि रज़ा ने अपनी कला में सभी रंगो के उत्स को काले रंग के रूप में ही महत्ता दी है। विभिन्न प्रकार के रंगों की चमक समाप्त हो जाने के उपरांत अंततः काला ही शेष रह जाता है। रज़ा के अनुसार - "तमाम ज्यामितीय आकार सृष्टि की चालक शक्तियां हैं, मेरे चित्रों में और बिन्दु उस बीज का प्रतीक है जो एक जीवन की संभावना को धारणा करता है, और मेरे चित्रों का काला अंतरिक्ष और मेरे चित्रों का अंतरिक्ष ऊर्जाओं का भण्डार है।"[8] सैयद हैदर रज़ा के अनुसार - "My work is my own inner experience and involvement with the mysteries of nature and form which is expressed in colour, line, space

and light."[9] उन्होंने अपनी कलाकृतियों में कैनवास के धरातलीय प्रभाव का पूर्ण रूप से उपयोग किया था। रज़ा ने विदेश में निवास के संबंध में कहा था कि "फ्रांस में यद्यपि संघर्ष कम नहीं है तथापि जिस समाज में कलाकार रूप में परिचय ही एक उम्दा चीज मानी जाती हो, वहाँ कलाकार को एक तरह का भरोसा तो रहता ही है। फिर भी भारत से मेरा सम्बन्ध अटूट रहेगा।" भारत सरकार ने सैयद हैदर रज़ा को वर्ष 1981 में ''पदम् श्री'' तथा वर्ष 2007 में ''पदम् भूषण'' पुरस्कार से सम्मानित किया था। भारत के प्रति रज़ा की निष्ठा सराहनीय है। वे अपने संसाधनों से निर्मित 'रज़ा फाउंडेशन' नामक संस्था के माध्यम से नवीन कलाकारों व कवियों आदि को पुरस्कृत करते थे।[10] वर्ष 2016 को नई दिल्ली में सैयद हैदर रज़ा का निधन हो गया। रज़ा की कला का भारतीय कला में विशेष महत्व है उनकी कला, अनेक नवीन कलाकारों को प्रेरित करती रहेगी।

एम. एफ. हुसैन को आधुनिक भारतीय कला के प्रमुख चित्रकारों में से एक हैं। एम. एफ. हुसैन का जन्म वर्ष 1915 को महाराष्ट्र के पंढरपुर नामक गांव में हुआ था, पिता की नौकरी इंदौर में होने के कारण हुसैन को भी इंदौर आना पड़ा। बचपन से ही फिल्मों देखने के शौकीन रहे हुसैन ने इंदौर में चित्रकार रैम्ब्रॉ पर आधारित एक फिल्म भी देखी थी, जिससे प्रभावित होकर इन्होंने अनेक मुखाकृतियों का निर्माण किया था।[11] हुसैन को कला में अत्यधिक रुचि थी और इन्होंने इंदौर के कला विद्यालय में प्रवेश ले लिया था। कुछ समय पश्चात ये मुंबई चले गए और सिनेमा हाद्मडग बनाने का कार्य करने लगे, जिस कारण इनकी कला का अत्यधिक प्रचार होने लगा। इनकी कला से प्रभावित होकर वर्ष 1948 में प्रगतिशील कलाकार संघ ने हुसैन को प्रगतिशील कलाकार संघ में सम्मिलित होने का प्रस्ताव दिया, जिसे हुसैन ने हर्ष के साथ स्वीकार कर लिया और वे भी इस कलाकार संघ के सदस्य बन गए। चालीस के दशक में हुसैन ने अपने कलाकृतियों में यथार्थ तथा अमूर्त का अत्यधिक आकर्षित मिश्रण किया है। उन्होंने सामाजिक विषमता को विकृत मानवाकृतियों तथा घोड़ों आदि के माध्यम से प्रदर्षित किया है। हुसैन ने अपनी कलाकृतियों में नारी को प्रदर्शित किया है, जो पीड़ा तथा घुटन प्रतीक है उसी प्रकार उन्होंने अपनी कलाकृतियों में घोड़ा भी प्रदर्शित किया है, यह घोड़ा अनेक प्रकार की मनः स्थिति और गति का प्रतीक है। उन्होंने अपनी कलाकृतियों में चौड़े तथा बड़े पुंजों के प्रयोग के माध्यम से अपनी भावनाओं का प्रदर्शन किया था। इन्होंने अपनी प्रसिद्ध कलाकृति 'जमीन' के निर्माण में कलात्मक प्रयोग किये थे। उन्होंने अपनी कला में बड़े ही अच्छे तरीके से महत्वपूर्ण घटनाओं को प्रदर्शित किया है। हुसैन की कला पर पिकासो, ग्रीस लेजर आदि का प्रभाव देखा जा सकता है। हुसैन की कला को घनवादी व अमूर्त या दोनों का मिश्रण कहा जा सकता है। ललित कला अकादमी - नई दिल्ली ने वर्ष 1954 में हुसैन को 'एमिनेंट आर्टिस्ट' के रूप में मनोनीत किया था। भारत सरकार ने इन्हें वर्ष 1966 में 'पद्म श्री', वर्ष 1973 में 'पद्म भूषण' तथा वर्ष 1991 में 'पद्म विभूषण' से सम्मानित किया था।[12] वर्ष 1993 में हुसैन सहित चालीस कलाकारों ने कैनवस पर एक विशाल कलाकृति का निर्माण किया था। हुसैन ने वर्ष 2010 में कतर की नागरिकता ले ली और वर्ष 2011 में इनका देहांत हो गया। हुसैन एक ऐसे कलाकार थे जिन्होंने अपनी कलाकृतियों को सार्वजनिक स्थान पर जनता के बीच जाकर भी निर्मित करने से किसी भी प्रकार का कोई संकोच नहीं किया था। अनेक गुणों से संपन्न प्रभावशाली व्यक्तित्व वाले हुसैन एक चित्रकार के अतिरिक्त फिल्म निर्माता, फोटोग्राफर, फर्नीचर डिजाइनर, होद्मडग आर्टिस्ट तथा एक लेखक भी थे। हुसैन ने अपनी कला के माध्यम से भारतीय कला का विस्तृत विकास किया है।

सतीश गुजराल भारत के प्रसिद्ध कलाकारों में से एक है। भारत के पूर्व प्रधानमंत्री श्री इन्द्रकुमार गुजराल के छोटे भाई सतीष गुजराल एक मूर्तिकार, वास्तुकार तथा एक चित्रकार भी हैं। इनका जन्म वर्ष 1925 को ब्रिटिश इंडिया कालीन झेलम में हुआ था।[13] बाल्यावस्था में एक बार इनका पैर फिसल

गया था, जिसके कारण इनके सिर को काफी क्षति पहुँची तथा इन्हें कम सुनाई देने लगा। सतीश गुजराल के मन पर भारत के विभाजन का मानसिक आघात पहुँचा जो उनकी कलाकृतियों में भी दिखाई देता है। उनके कलाकर्म को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है पहले काल में उन्होंने मानवीय संघर्ष व सामाजिक त्रासदी आदि के मानवीय रूपाकारों का निर्माण किया तथा दूसरे काल में उन्होंने चित्र तथा म्यूरल बनाए। वे चित्रों के मानवीयाकारों से हटकर अपरूपता की ओर बढ़ चले। तीसरे काल में उन्होंने केवल म्यूरल का ही निर्माण किया। उन्होंने अपनी कला में गहरे रंग - नीला, पीला, भूरा, लाल, काला रंग का विशेष प्रकार से प्रयोग किया है। सतीश गुजराल ने जली हुई लकड़ी के साथ कलात्मक प्रयोग किये हैं, वे लकड़ी की पट्टियों को जोड़कर धरातल बनाते थे तद्पश्चात पूरे धरातल की ऊपरी परत को जलाकर उसे आवश्कतानुसार खुरचकर उस पर रासायनिक घोल डालते थे व ऊपर से आकृतिनुसार अनेक रंगों से रंग देते थे। उन्होंने अपनी आकृतिमूलक कलाकृतियों में भयानक तथा विकराल रूपों को प्रदर्शित किया है। भारत सरकार द्वारा सतीष गुजराल को वर्ष 1999 में 'पदम् विभूषण' से सम्मानित किया गया था।

बीरेन डे का जन्म वर्ष 1926 में बंगाल प्रेसीडेंसी, ब्रिटिश कालीन भारत में हुआ था।[14] उनकी कलाकृतियों में एक प्रकार का प्रकाशीय केन्द्र है, जो फैलता हुआ प्रदर्शित होता है। उन्होंने अपनी कलाकृतियों में अधिकांशतः चटक रंगों का प्रयोग किया है। उनकी कलाकृतियाँ अन्य कलाकारों की कलाकृतियों से बिल्कुल भिन्न दिखाई पड़ती हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि वे अपनी कलाकृतियों के माध्यम से अपने भीतर ही प्रकृति को खोज रहे हो। इन्हें वर्ष 1958 तथा वर्ष 1964 में ललित कला अकादमी - नई दिल्ली द्वारा दो बार सम्मानित किया गया था। वर्ष 1992 में भारत सरकार ने इन्हें पद्मश्री पुरस्कार से सम्मानित किया था। बीरेन डे चीजों की वास्तविकता जानने के पश्चात उन्हें आत्म-साक्षात करके प्रकृति के साथ तालमेल बैठाने का प्रयास करते थे। बीरेन डे के अनुसार - "मेरी पेंटिंग्स, मुझे लगता है, मेरे संपूर्ण की जैविक बानगी हैं - मैं जो हूं और जो मैं होना चाहता हूँ एक निरंतर प्रयास, अतएव एक संघर्ष ताकि मैं बिखरे टुकड़ों को जोड़ सकूं और यौगिक पूर्णत्व को प्रस्तुत कर सकूं। दो बिंदुओं के बीच का दोलन ही मेरा सिद्धांत है, कब्रिस्तान की शांति और सूर्य के केंद्र की शांति के बीच किसी भी तरह का अंत नहीं है, अंतिम सत्य नहीं है यह तो संभावित प्रस्फुटन की ओर यात्रा है - खोज, अनुभूति, ज्ञान के माध्यम से तथा अपने भीतर व बाहर फैली ऊर्जा का हीरक - बिंदु बनकर; अवधारणा का एक साथ अंतःस्फोट और विस्फोट। आइए, मुझे स्पर्ष कीजिए और हर तरह से स्पर्ष कीजिए वाली यह स्थिति है; कठोर प्रतिरोध मंथर लेकिन निश्चित रूप से स्वीकृति की प्रक्रिया। यह ऐसी प्रक्रिया है कि समय बीतने के साथ, दो बिंदुओं के बीच के अंतराल को, निश्चित रूप से कम करेगी। अंततः वह समय भी आ जाएगा, जब पूर्ण समर्पण करना होगा और 'वह' के साथ मिल जाना होगा। (प्रकाश? ऊर्जा? ईश्वर? अनुकंपामय चेतना की अवस्था? - मैं नहीं जानता कि इसका कैसे वर्णन करूं) मुझे लगता है कि यही चुनौती है। क्या सभी के लिए ऐसा नहीं है?"[15] अपनी कलाकृतियों के माध्यम से विष्व के महान ख्याति प्राप्त कलाकारों में इनकी गिनती होने लगी वर्ष 2011 में वीरेन डे का देहांत हो गया। भारतीय कला में उनके अमूल्य योगदान को हमेशा याद रखा जाएगा।

वर्ष 1918 में जन्मे के. एस. कुलकर्णी ने अनेक शैलियों में काम किया है। विदेशों की अपनी यात्राओं में गृहण किये गये अनेक प्रकार के सौन्दर्य - प्रभावों को एकत्रित कर उन्होंने एक विशेष प्रकार की शैली निर्मित करने का प्रयास किया है। उन्होंने अमूर्तन तथा आकृतिमूलकता को एकजुट करने की कोशिश की है। उनकी कला में भावात्मकता का प्रदर्शन दिखाई देता है। के. एस. कुलकर्णी के अनुसार - "मैं अपनी ही कलाकृतियों को एक दर्शक की

तरह देखता हूं। यह बात अलग है कि ये कलाकृतियां, सामूहिक चेतना तथा अंतरराष्ट्रीय संदर्भ में, वर्तमान चाक्षुष कलाओं का प्रतिनिधित्व करती हैं।"[16] वर्ष 1994 में के.एस. कुलकर्णी का देहान्त हो गया।

अविनाश के अनुसार - "चित्रकार रंग तथा रूप के माध्यम से मानसिक अनुगूंजों की जो अभिव्यक्ति करता है वही कलात्मक, दार्शिष्टक - अभिव्यक्ति है" अन्य भारतीय वस्तु निरपेक्ष चित्रकारों में छैल बिहारी वार्तरिया, रघुवंश कुमार भटनागर, रामकुमार, ज्योतिष, गायतोंडे, जहाँगीर सबावाला आदि प्रमुख हैं। इन सभी कलाकारों ने कला को ही अपना लक्ष्य बना लिया था और सभी कलाकार अपने कलाकर्म के प्रति अधिक सजग रहते थे। इन कलाकारों की कला के माध्यम से प्रेरित होकर नवीन कलाकारों को अपने कला मार्ग को सुगम बनाने में सफलता प्राप्त की जा सकती है। इन कलाकारों ने अपनी कला में लग्न, मेहनत व समर्पण के माध्यम से भारतीय कला को एक नई ऊँचाई तक पहुँचाया है। भारतीय कला में इन कलाकारों के महत्वपूर्ण अमूल्य योगदान को हमेशा याद किया जाएगा।

सन्दर्भ :

1. र.वि. साखलकर, आधुनिक चित्रकला का इतिहास, प्रथम संस्करण 1971 , पृष्ठ - 284
2. प्राणनाथ मागो, भारत की समकालीन कला - एक परिप्रेक्ष्य, पहला संस्करण 2006 - दूसरी आवृत्ति 2011 , पृष्ठ - 167
3. डॉ. गिर्राज किशोर अग्रवाल, आधुनिक भारतीय चित्रकला, पंचम संस्करण - 2006, पृष्ठ 192,
4. डॉ. मंजूषा गांगुली, चित्रकार रजाः परंपरा और परिवेश, प्रथम संस्करण-2001, पृष्ठ - 14 5, डॉ. मंजूषा गांगुली, चित्रकार रजाः परंपरा और परिवेश, प्रथम संस्करण-2001, पृष्ठ - 86 6, ज्योतिष जोशी, आधुनिक भारतीय कला (पिछले सौ वर्षों के श्रेष्ठतम कलाकारों पर एक अध्ययन) प्रथम संस्करण - 2010, पृष्ठ - 206
7. ज्योतिष जोशी, आधुनिक भारतीय कला (पिछले सौ वर्षों के श्रेष्ठतम कलाकारों पर एक अध्ययन) प्रथम संस्करण - 2010 , पृष्ठ - 203
8. डॉ. मंजूषा गांगुली, चित्रकार रजाः परंपरा और परिवेश, प्रथम संस्करण - 2001 , पृष्ठ - 62
9. https://en.m.wikipedia.org/wiki/S.H._Raza
10. ज्योतिष जोशी, आधुनिक भारतीय कला (पिछले सौ वर्षों के श्रेष्ठतम कलाकारों पर एक अध्ययन) प्रथम संस्करण - 2010 , पृष्ठ - 207
11. डॉ. गिर्राज किशोर अग्रवाल, आधुनिक भारतीय चित्रकला, पंचम संस्करण- 2006, पृष्ठ 148
12. https://en.m.wikipedia.org/wiki/M.F._Husain
13. https://en.m.wikipedia.org/wiki/Satish_Gujral
14. https://en.m.wikipedia.org/wiki/Biren_De
15. प्राणनाथ मागो, भारत की समकालीन कला - एक परिप्रेक्ष्य, पहला संस्करण 2006 - दूसरी आवृत्ति 2011, पृष्ठ - 161-162
16. प्राणनाथ मागो, भारत की समकालीन कला - एक परिप्रेक्ष्य, पहला संस्करण 2006 - दूसरी आवृत्ति 2011 , पृष्ठ - 151

शान्ति दवे, अनटाईटल्ड, 1960

सैयद हैदर रज़ा, अनटाईटल्ड, 1964

सतीष गुजराल, अनटाईटल्ड, 1963

मकबूल फिदा हुसैन, अनटाईटल्ड (बूँदी लैण्डस्केप), 1962

भारतीय लघु चित्रण शैली में राम

डॉ. मीरू दुसेजा

चित्रकला विभाग, कन्या महाविद्यालय
आर्य समाज, भूड, बरेली।

रामानुजाचार्य (ग्यारहवीं शती का मध्य) ने 12वीं शताब्दी में 'वैष्णव संप्रदाय' की स्थापना की। उन्होंने विष्णु के अनेक रूपों राम कृष्ण आदि की शक्तियों की आराधना स्तुति पर जोर दिया। उन्हीं की पाँचवीं शिष्य परंपरा के स्वामी रामानंद को राम भक्ति परंपरा के चिंतन का मेरूदंड कहा जा सकता है।

त्रेतायुग में रघुवंशी महाराज दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र श्रीरामचंद्र जी सामान्य मनुष्य की भाँति एक राज परिवार में जन्में। श्रीराम जी को त्याग, दृढ़ता, निष्ठा, समता भाव, भेद रहित प्रेम, एक पत्नी व्रत, वचन निर्वाह, बड़ों का आदर, धर्म पर श्रद्धा निर्बैर, अभय, कर्त्तव्यनिष्ठ, जिजिविषा, आदर्श नीतिज्ञ, न्याय प्रियता दैदिव्यमान, आलौकिक सौंदर्य इत्यादि विशेषताओं से ओत-प्रोत होने के कारण श्री राम जी मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम कहे गए।

साहित्य कला, संस्कृति में राम को विविध रूपों में देखा गया। वाल्मीकि, तुलसी, कबीर, मैथिलीशरण गुप्त, निराला, रहीम, भास, भवभूति, कालिदास, कम्बन रामायण, कृतिवास रामायण, मैक्समूलर, जोन्स, कीथ, ग्रिफिश आदि की दृष्टि ने राम के विविध पक्षों को रखा।

प्राचीनकाल से ही चित्रकला और साहित्य का संबंध घनिष्ठ रहा है, इन्होंने एक दूसरे के विकास को प्रेरित, पल्लवित और निर्धारित किया है। भारतीय कला सदा ही धार्मिक भावनाओं को अंगीकार कर प्रगति के पथ पर अग्रसर रही है। प्रगैतिहासिक काल से वर्तमान तक की कला पर प्रकाश डाले तो अधिकांश चित्र धार्मिक भावना से ओतप्रोत दिखाई देते है। भारतीय धर्म तथा दर्शन में साकार व निराकार ब्रह्म की कल्पना की गई है। इसी साकार ब्रह्म की कल्पना को साकार रूप प्रदान करने के लिए ललित कलाओं का सहारा लिया गया। स्थापत्य कला, मूर्तिकला के साथ-साथ चित्रकला भी एक ऐसा सशक्त माध्यम बनी जो दर्शक के मन पर अपना प्रभाव डाल सकी। हस्तलिखित पोथियों द्वारा मानव हित में मूल्यों और मान्यताओं के प्रचार और प्रचार करने की प्रथा का प्रारंभ हुआ।

साथ ही इन पोथियों को चित्रित करने का भी प्रचलन इस हयेय से प्रारंभ हुआ कि भाषा अथवा लिखित कथानक को अधिक सुगम्य एवं सर्वग्राहय बनाया जा सके। इस प्रकार सचित्र पोथियों द्वारा धर्म के प्रचार व प्रसार हेतु कला एक सशक्त माध्यम के रूप में कार्यरत हुई।

सचित्र पोथियों का प्रचलन सोहलवीं से अट्ठारहवीं शताब्दी में अपनी चरम सीमा पर था। इन पोथियों की रचनाओं के पीछे रचनाकारों का मुख्य उद्देश्य भौतिकता से परे अपने इष्टदेव की स्तुति का प्रचार कर मानव समाज में सत्य शिव सुंदर का वास करना था। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु सचित्र पोथियों की रचना की गई। सचित्र पोथी रचना की प्रक्रिया में आके गए चित्रों की पृष्ठ भूमि में समकालीन युग के ऐतिहासिक प्रमाण है जिसमें समसमायिक युग की सामाजिक, सांस्कृतिक गतिविधियों का समायोजन स्वतः ही हो गया है। विभिन्न समय व काल में श्रीराम से संबंधित पोथियों का चित्रण किया गया है। इस प्रकार के प्रपत्र साधारण नहीं वरन् अपने

आप में अपने समय की विस्तृत जानकारी को छुपाए हुए महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है।

मुगल चित्रकला का जन्म, उत्थान एवं पतन मुगल साम्राज्य के जन्म, उत्थान एवम् पतन के साथ सन्निहित है। भारत में मुगल साम्राज्य के जन्म, उत्थान एवम् पतन के साथ सन्निहित है। भारत में मुगलों की सल्तन्त स्थापित हो जाने के बाद चित्रकला के क्षेत्र में एक नई दिशा प्रकाश में आयी, वह थी लघु चित्रण परंपरा, अकबर की शाही चित्रशाला में सचित्र पांडुलिपि लेखन एवं चित्रण परंपरा, भारतीय चित्रकला क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान रखती है विभिन्न धर्मो तथा साहित्य में अकबर की अभिरूचि में उसे हिंदू पुराणों एवं प्रेमकथाओं से परिचित करवाया और इनमें से कई के फारसी भाषा में अनुवाद करने के आदेश दिए। राजकीय पुस्तकालय में उपलब्ध रामायण एवं महाभारत की अनुदित तथा चित्रित पांडुलिपियाँ अकबर की इसी अभिरूचि का परिणाम थी। रामायण का एक ऐसा ही संस्करण सन् 1587-88 से 1598-99 के मध्य चित्रित, वाशिंगटन में फ्रीयर आर्ट गैलरी में उपलब्ध है। एक अन्य लघुचित्र में राम के अनुज लक्ष्मण की जीवित करने के लिए हनुमान संजीवनी बूटी हेतु पूरा पर्वत उठा लाने का प्रसंग है। इस समय की पोथियों में खानखाना (रामायण) विश्व प्रसिद्ध है। रामायण की एक प्रति इस समय हिज हाइनेस महाराजा जयपुर के संग्रह में सुरक्षित है।

राजस्थानी चित्रकला भारतीय संस्कृति, भारतीय समाज तथा साहित्य की विभिन्न विधाओं को कुशलता तथा निपुणता से विकास की ओर अग्रसर करने में सूक्ष्म रूप से अग्रणी रही है। राजस्थानी शैली की विभिन्न शाखाओं में मेवाड़ शैली का गणमान्य स्थान माना गया है। इस समय में रामायण की रचना की गई। 1649 ईसवीं की रामायण की एक सचित्र प्रति प्रिस ऑफ वेल्स म्युजियम बंबई में और दूसरी प्रति सरस्वती भंडार उदयपुर में सुरक्षित है। इस समय साहबदीन नामक चित्रकार ने 1650 में 'बालकांड' ब्रिटिश संग्रहालय लंदन में तथा 1652 में 'युद्धकांड' (वाल्मीकि रामायण का छठा कांड जो अब ब्रिटिश म्यूजियम लंदन में प्रदर्शित है) एवं 1653 में 'किष्किंधा कांड' (कैसल संग्रहालय लंदन) तथा रामायण का उत्तरकांड जो साहबदीन की श्रेष्ठ कृति है, 1653 में महाराजा राजसिंह के समय में चित्रित हुआ और इस समय ब्रिटिश संग्रहालय में संग्रहीत है। मेवाड़ शैली का एक अन्य बहुचर्चित चित्रकार मनोहर ने 1649 'बालकांड' (रामायण का प्रथम कांड, कई चित्रित पृष्ठ प्रिस ऑफ वेल्स म्यूजियम बंबई में प्रदर्शित) 'अरण्डकांड' (रामायण का तृतीय कांड, सरस्वती भंडार, उदयपुर में संरक्षित, 1651 तिथियुक्त) 'उत्तरकांड' (रामायण का सातवां कांड 1653 तिथियुक्त, ब्रिटिश म्यूजियम लंदन में प्रदर्शित) को चित्रित किया गया है।

पहाड़ी दादियों में पनपी चित्र परंपरा पहाड़ी कलम के नाम से प्रसिद्ध है। पश्चिम हिमालय के पहाड़ी राज्यों में बसोहली शैली में चित्रित रामायण की दो प्रतियाँ भी प्राप्त है जिनमें से एक प्रति बसोहली शैली में चित्रित की गई है और दूसरी कुल्लू में चित्रित की गई है।

इसके अतिरिक्त थम्बा, गुलेर आदि में भी रामायण के चित्र प्राप्त हुए है।

आदि कवि श्री वाल्मीकि जी से लेकर आज तक असंख्य लेखकों, चित्रकारों और कवियो ने श्री रामकथा लिखकर व चित्रित करके अपनी लेखनी व तूलिका को धन्य किया है।

राष्ट्र कवि मैथिली शरण गुप्त जी अपने महाकाव्य 'साकेत' में लिखते है–

राम तुम्हारा वृत स्वयं ही काव्य है,
कोई कवि बन जाए सहज संभाव्य है।

संदर्भ ग्रंथ–

1– कला विलास– आर.ए. अग्रवाल
2– भारतीय चित्रकला का इतिहास– अविनाश बहादुर वर्मा
3– भारतीय चित्रकला– डॉ. शुकदेव श्रोप्रिय
4– भारतीय चित्रकला– वाचस्पति गैरोला

साक्षात्कार

पंडित देबू चौधरी से वर्ष-2009 में यह साक्षात्कार लिया गया था

शशिप्रभा तिवारी

सितार वादक पंडित देवव्रत चौधरी, जिन्हें प्यार से लोग 'देबू दा' या 'देबू जी' कहते हैं। वह सेनिया घराने के प्रतिनिधि कलाकार थे। वह परंपरागत सत्रह पर्दे के सितार को बजाते थे। उन्होंने कई वर्षों तक उस्ताद मुश्ताक अली खां साहब से वादन सीखा। कहावत है कि पूत के पांव पालने में ही दिखने लगते हैं, सो देबू जी जब मात्र बारह साल के किशोर थे, तभी उन्होंने आकाशवाणी के लिए बजाया। उस जमाने में यह बड़ी बात थी। उनकी उपलब्धियों की सूची बहुत लंबी रही है, मसलन-उनके मार्गदर्शन में तकरीबन चालीस विद्यार्थियों ने पीएचडी पूरा किया है। इतना ही नहीं, सन् 1987 में उन्होंने लगभग 70दिनों की स्वीडन की यात्रा की। इसमें उन्होंने 87 सभाओं में भारतीय शास्त्रीय संगीत के विषय में वहां के लोगों को जानकारी दी और 27 संगीत सभाओं में सितार वादन पेश किया।

सालों गुजर जाने के बाद भी, पंडित देबू चौधरी हमेशा अपने गुरू उस्ताद मुश्ताक अली खां साहब को याद करते रहे। वर्ष 1989 में उनके गुरू का इंतकाल हो गया था। पर उनके दिल में वह हमेशा बसे रहते थे। उनके घर के बैठक में उस्ताद जी की बड़ी-सी तस्वीर लगी हुई थी। गुरू के बारे में बताते हुए, देबू चौधरी ने कहा कि गुरू जी का दिल बहुत बड़ा था। उन्होंने सन् 1941 में पंडित रविशंकर का पहला प्रोग्राम कोलकत्ते में रखवाया था। मुझे लगता है, आज मैं जो भी हूं, गुरू की कृपा से हूं। गुरू के आशीर्वाद और मेरी मेहनत का नतीजा है कि मैं किसी योग्य बन पाया। मेरे साथ, न कोई बिजनेस हाउस था, न कोई प्रभावशाली व्यक्तित्व। मुझे शुरूआती दिनों में वरिष्ठ कलाकार महफिलों में बैठने तक नहीं देते थे। दरसअल, किसी ने मुझे जगह बनाकर नहीं दिया। मुझे संघर्ष करके अपने दम पर अपनी पहचान बनानी पड़ी।

अपने संघर्ष के दिनों को याद करते हुए, पंडित देबू चौधरी कहते हैं कि अपने मां-बाप, अपना घर, अपना शहर कोलकाता सब छोड़कर, सन् 1953 में दिल्ली आना पड़ा। उस समय मुझे दिल्ली विश्वविद्यालय के संगीत विभाग में नौकरी मिली। तब मुझे दो सौ रूपए तनख्वाह मिलते थे। मैं किराए के मकान में रहता था। कठिनाई क्या कहूं? पैसे बचाने जरूरी थे, इसलिए दिन में एक समय ही खाना खाता था। उन दिनों को याद करता हूं, तो आज भी मेरी आंखें आसुंओं से भींग जाती हैं। पर ईश्वर ने जो कुछ दिया, उससे कोई शिकायत नहीं रही। मुझे गर्व होता है कि आज दिल्ली विश्वविद्यालय के संगीत विभाग के नब्बे फीसदी स्टाफ मेरे शिष्य रह चुके हैं। वास्तव में, आज के लोगों की सबसे बड़ी कमी है, आरामतलबी! नौकरी मिल जाने के बाद, गाना-बजाना छोड़कर, सिर्फ नौकरी करते रह जाते हैं। अपना खुद का रियाज वगैरह बंद कर देते हैं या कम कर देते हैं। अपनी स्व की यात्रा के प्रति उदासीन हो जाते हैं।

बहरहाल, कलाकार को जिंदा रखने वाली संजीवनी उसकी सृजनात्मकता है। देबू जी ने आठ नए रागों का सृजन किया। इनके नाम हैं-विश्वेश्वरी, पलास-सारंग, अनुरंजनी, आशिकी ललित, स्वानंदेश्वरी,

कल्याणी बिलावल, शिवमंजरी और प्रभात मंजरी। राग विश्वेश्वरी का नाम उन्होंने अपने पिता विश्वेश्वर चौधरी के नाम पर रखा था। जबकि, पत्नी मंजू को समर्पित राग का नाम प्रभात मंजरी रखा था। उनका प्रिय राग झिंझोटी रहा है। इसे वह कई समारोह में पेश किया करते थे।

उस्ताद अमीर खां के व्यक्तित्व और उनकी गायकी से पंडित देबू चौधरी काफी प्रभावित नजर आते हैं। उनसे जुड़े प्रसंगों को याद करते हुए, उन्होंने बताया था कि मैंने सितार पर पहली बार राग चारूकेशी को हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत के अंदाज में बजाया। मैं सबसे पहले उस्ताद अमीर खां जी को सुनाया। मैंने आरोह में राग मालकौंस और अवरोह में राग कान्हड़ा का अंश कुछ विशेष अंदाज में अपने वादन में लिया था। राग चारूकेशी के इस रूप में 'स-ग-म-ध-नि- का प्रयोग था। मैंने शुद्ध गांधार, कोमल धैवत और कोमल निशाद का प्रयोग किया था। मेरा सितार वादन सुनकर, उस्ताद अमीर खां साहब ने कहा कि तानसेन के बाद संगीत खत्म हो गया होता, यदि हम नया सृजन नहीं करते। हम सोचते हैं, कुछ नई पहल करते हैं, कुछ नई रचना करते हैं, तभी हमारा संगीत जिंदा है। सृजन का यह सिलसिला हमेशा कायम रहना चाहिए।

बातचीत के इसी क्रम में पंडित देबू चौधरी अपने गुरू उस्ताद मुश्ताक जी की बातें कुछ इस तरह दोहराते हुए, उन्होंने बताया कि मेरे गुरूजी ने कहा था कि संगीत के साथ गद्दारी नहीं करना। कभी किसी के आगे सिर मत झुकाना। सिर झुकाना है तो ऊपर वाले के सामने झुकाओ। उनके नाम को रोशन करना है। उन्हें जीते जी उन्हें वो सम्मान नहीं मिला। उन्हीं को समर्पित 'यूमैक' सेंटर फॉर कल्चर स्थापित करने में जुटा हुआ हूं।

अपनी एक यादगार कार्यक्रम के बारे में उन्होंने चर्चा की। वह कहते हैं कि सत्तर के दशक की बात है। एनडीएमसी के हॉल में राग मारवा बजाया तो सामने उस्ताद चांद खां और उस्ताद निसार खां ने खूब आशिर्वाद दिया था। इसी तरह, शायद सन् अस्सी की बात है, इंडिया इंटरनेशनल सेंटर में राग विहाग बजाया। मैंने करीब आधे घंटे का आलाप किया। आलाप में हल्के-फुल्के चलन वाली मुरकी का प्रयोग बिल्कुल नहीं किया। कार्यक्रम के बाद उस्ताद नासिर हुसैन साहब ने कहा कि यह उस्ताद की तालीम बोल रही है।

पंडित देबू चौधरी मानते हैं कि इंसान का कर्म उसके व्यक्तित्व को उजागर करता है। अगर, नीयत अच्छी हो तो मंजिल अपने-आप मिल जाती है। हालांकि, आजकल के युवाओं में रियाज का चलन पहले से कम हुआ है। पहले हम घड़ी की सूई के मुताबिक यिाज किया जाता था। आज समय की कमी है। शिष्यों में लगन, धैर्य और मेहनत करने की इच्छाशक्ति भी कम है। अब तकनीक आधारित रियाज हो गया है। पहले एक चीज घंटे में होता था, अब आधे घंटे में हो जाता है। हमारा दौर तो 'चिल्ला' का था, जब हम एक मोमबत्ती के पूरे जलकर बुझ जाने तक रियाज किया करते थे। वैसे कोई भी साज बजाना आसान नहीं है। सितार में शारीरिक मेहनत अधिक है। मिजराब पहनना, मींड खींचना। एक सप्तक पूरा करने के लिए लगभग चौबीस इंच तक अंगुलियों को चलाना, एक कठिन काम होता है। जबकि, सरोद में जवा पकड़कर बजाना होता है। सप्तक भी आठ इंच की दूरी में पूरा हो जाता है। पर उसके साथ दिक्कत है कि उसमें पर्दे नहीं होते। इसके अतिरिक्त, आज कलाकार बनना ज्यादा मुश्किल हो गया है। अच्छे-अच्छे कलाकारों को जीने के लिए सिर झुकाना पड़ता है। एक जमाना था, जब कलाकार का मापदंड, उच्चकोटि के या वरिष्ठ कलाकार निर्धारित करते थे। आज आम जनता सिकंदर चुनती है, जो मैं स्वीकार नहीं कर पाता।

शास्त्रीय संगीत में रस और सौंदर्य का समायोजन होता है। यह मन को छूता है। इसी के मद्देनजर दिल्ली विश्वविद्यालय की ओर से दो दिवसीय समारोह दिसंबर-2019 में आयोजन किया गया था। इस परिसंवाद में दिल्ली विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो योगेश कुमार त्यागी, पूर्व राजनयिक चिन्मय गरेखान, संतूर वादक पंडित भजन सोपारी, सितार वादक

पंडित देबू चौधरी मंच पर मौजूद थे। उस परिसंवाद के दौरान वर्तमान परिदृष्य और शास्त्रीय संगीत में राग-ताल के सौंदर्य पर परिचर्चा की गई। इसके अलावा, कुछ कलाकारों ने अपनी कला का प्रदर्शन किया। उद्घाटन सत्र में सितार वादक पंडित देबू चौधरी ने मुख्य वक्ता थे। उन्होंने अपने वक्तव्य में कहा कि सौंदर्य और रस के बिना शास्त्रीय संगीत संभव ही नहीं है। हमारे गुरू उस्ताद मुश्ताक खां साहब कहते थे कि स्वर ईश्वर है, लय ज्ञान है, कर्म पथ है और ध्यान आत्मा है।

उस कार्यक्रम के दौरान ही, पंडित देबू चौधरी से मुलाकात हुई थी। पिछले वर्ष संकट मोचन संगीत समारोह-2020 में उन्होंने पंद्रह अप्रैल को सार्वजनिक कार्यक्रम बजाया। हालांकि, यह समारोह ऑन लाइन संपन्न हुआ था। इसमें देबू जी के साथ उनके सुपुत्र पंडित प्रतीक चौधरी और सुपौत्र अधिराज चौधरी मंच पर मौजूद थे। उसके बाद चार मई को तीन पीढ़ी ने पुनः आभासी मीडिया पर सितार वादन पेश किया। इसमें उन्होंने मात् वंदना विशेष रूप से बजाया था। इसमें राग स्वआनंद श्री और पटदीप पेश किया। विनम्रता के प्रतीक पंडित देबू चौधरी ने कार्यक्रम के शुरू में कहा कि मैं पचासी साल का हो गया हूं। मुझे अब बजाने में मेरे पुत्र प्रतीक और सुपौत्र अधिराज मदद करेंगें।

किसे पता था कि सफर ऐसे ही कभी रूक जाते हैं? एक मई 2021 को जब पंडित देबू चौधरी ने दुनिया का अलविदा कह दिया। खबर सुन कर विश्वास ही नहीं हुआ? बांग्लादेश के मेमनसिंह में 1935 ईस्वी में जन्मे देबू चौधरी ने कलाकारों को समाज में सम्माननीय स्थान दिलाया था। चार साल के नन्हीं उम्र में ही सितार को अपने हाथों में थाम लिया था, जो ताउम्र थामे रहे। वह सिर्फ, सितार वादक ही नहीं थे, वरन् एक बेहतरीन और सहृदय गुरू भी थे। उन्हें पद्मश्री और पद्मभूषण से सम्मानित किया गया था। उन्होंने पंचू गोपाल दत्ता और उस्ताद मुश्ताक अली खां से वादन सीखा था। और प्रतीक चौधरी के अलावा, हजारों विद्यार्थियों को सिखाया। इनमें कुछ के नाम हैं-अनुपम महाजन, नीलरंजन, पांचाली नंदी आदि। शायद, इसलिए कहा जाता है कि कलाकार अमर होते हैं।

सितार वादिका पांचाली नंदी रांची में पली-बढ़ी हैं। वह राजधानी दिल्ली में रहकर पंडित देबू चौधरी से सितार वादन सीखती रही हैं। वह कई शहरों में अपना कार्यक्रम पेश कर चुकी हैं।

Music in Tourism and Prospects: A Case study of Sikkim

Manoj Rai[1]*, Surendra Kumar[2], Sanjoy Bandopadhyay[3]

Abstract:

Music is profusely present in the life and culture of the people of Sikkim. The current research studied music in tourism as seen in different parts of the World, its applications, manifestations, and effects. The study included a quick overview of the presence of such applications in other parts of India. This investigation considered the prevalent situations of tourism in Sikkim, the general outline of eco-tourism, cultural-tourism, and eco-cultural tourism. The research was based on the available archived textual data and observations through visits to different tourist points of Sikkim. The study presented a comparative status of music in Sikkim Tourism, music applications in tourism at other parts of India and different World points. The inquiry was undertaken during 2020-21 to understand the current status of music in tourism in Sikkim and its future possibilities when the policymakers give due considerations to music-tourism and add this with the already conceived eco-cultural tourism.

Keywords: *music, Tourism, Festival, Sikkim, India, World, eco-cultural*

The World Tourism Organization [WTO], run by United Nations, defined tourism as, "Tourism comprises the activities of persons travelling to and staying in places outside their usual environment for not more than one consecutive year for leisure, business, and other purposes." (Definition of Tourism (UNWTO Definition of Tourism) / What Is Tourism/?, n.d.). Music is a potential component of tourism. Tourism in different parts of the globe mixed Music with tourism to advantage.

Music in Tourism: the World Scenario

Music tourism relies on evidence of cultural activities, incidents from the past, and tangible artefacts that can be photographed (Connell & Gibson, 2003). In many destinations, the local people play significant roles in promoting tourism. The popular UK-based newspaper The Guardian reported that Music-tourism contributed substantially to the British Economy. In 2010 about 7.7. million people spent 1.4 billion Pound Sterling, around 3067.4 Crore INR, while visiting the spots of music-tourism (Topping, 2011), as the forex for 1 GBP was Rs. 21.91 INR in 2010. Mintel reported (2008) that the estimated destination-driven trips were seventy-five per cent of all the music tourism. There were

approximately 55 million annual visits worldwide; this includes both domestic and international travel (as cited by Leaver & Schmidt, 2009, pp. 220-229).

Dunbar-Hall observed that places like Ubud in Bali [Indonesia] had been a significant tourist attraction (2001). In Ubud, the residents design music and dance, especially for tourists, and address the region's high level of cultural tourism organization in the region (Guerrón-Montero, 2006). Cultural tourism was a favourite activity in the history of Zanzibar in Tanzania. When it became increasingly known in western discourses, culture and heritage have become the main element for the marketing of Zanzibar as a tourist attraction (Kirkegaard, 2001). The relationship of a place with music history and traditions naturally initiate high involvement of the people and flame up their emotions and nostalgia. The place becomes a kind of pilgrimage searching for heritage and authenticity (Connell & Gibson, 2003). "Tourism to Zanzibar in February has grown by 400 per cent since the festival was first held in 2004" (VOA News, 2012). Some specialized tour operators in the USA, like New York based Pro Musica Tours, offers services for Music Holidays, individual music festival tours and major tours (Gibson & Connell, 2005, p. 82). Music could establish itself as a potential component of tourism. This human expression carries cultural and traditional components. Music-tourism mainly relies on music festivals. Celtic Colours International Festival is one of the booming music festivals that influenced Cape Breton Island's market on the Atlantic coast of North America (Brown, 2009). All these indicate how effectively music can play its role in making a geographical location a significant tourist attraction and contributing to the region's Economy.

In the 1986 ICTM colloquium,[4] the speakers and observers discussed the essential musical qualities of the music that should be offered to the visiting tourists. They mainly emphasized that cultural purity should be maintained, and there should not be dilutions or interferences of popular culture. Janice Millington-Robertson's Barbados contribution emphasized that: "traditional music can have a place in tourism, but it should be presented in its pure form that matches its proper origin. Traditional music should not be exploited by the outside elements as a commercial components" (Lewin, 1986). This opinion highlights the points like; traditional music can have a place in tourism. Nevertheless, it should be free from the elements outside the practised tradition when Traditional Music is offered.

Apart from traditional music, any kind of music can attract tourists in different ways and different moods. In the case of hotel LaCandelita, Panama, it is proved that music attracts tourists also in bars and restaurants. In the restaurant, the DJ plays Soka, Calypso, and Meringue. When the people started gathering in the restaurant, they started playing music matching the people's choices. A usual trick was to play techno-music on CDs in the bar. As they start playing music, immediately, the tourists and locals jump to the dance floor. A large group of tourists from different places

enjoy the loud music and fresh air of the ocean (Guerrón-Montero, 2006).

Music and arts are cardinal attractions for visitors from outside. By now, many commentators have pointed to the prevalence of music and art festivals in contemporary society (Quinn, 2010). There were numerous music and art festivals organized in the UK during the 1980s (Rolfe, 1992). In France, there was a significant rise in the number of such festivals. The number of music and arts festivals grew from about a dozen in the 1950s to more than a thousand in the middle of the 1990s (Brennetot, 2004). Gibson and Connell state about more than 600 music festivals in rural Australia alone (2005). From the tourism perspective, art and music festivals are important because these activities generate considerable attraction for the tourists and external visitors. Cultural and traditional activities have always been attractive phenomena for tourists. The energetic, attractive, and high visibilities of the festivals impress the tourism and policymakers seeking to construct new tourist destinations and revitalize the static attractions (Quinn, 2010). There are many festivals like the Northern Rivers Folk Festival (now the River City Festival), the Byron Bay Splendour in the Grass Festival, Nimbin's Mardi Grass Festival, the Chincogan Festival, Mullumbimby, and the Byron Bay East Coast Blues Festival organized in the countries like Australia and the USA which are marked as prominent tourist attractions (Gibson, Rural Transformation and Cultural Industries: Popular Music on the New South Wales Far North Coast, 2002).

Involvement of Music in Tourism: Indian Scenario

In India, the tourism industry has significantly grown during the last few decades. Globalization and economic liberalization helped this industry to grow to this level. In India, music appears basically as a component of cultural festivals and, in some cases, in religious tourism. These festivals showcase many forms of ethnic music, dance and other traditional activities of different communities. Many cultural festivals in India can attract tourists. Music festivals attract a considerable volume of tourists in cities like Varanasi, Mumbai, and other places in India (India Today, 2018).

India offers diverse tourist attractions. The country is famous for its historical monuments; it possesses abundant natural beauty and unnumberable places of religious interest. Different regions of the country have diverse and distinctive styles of handicrafts, folk dances, music and its people's unique culture (Lama, 2014). Music is a self-evident form of culture, and it has a prominent occupancy in cultural festivals. People witness noticeable presences of music because festivals provide appropriate space for demonstrating the uniqueness of cultures where music is an ineluctable component (Gibson & Connell, 2005). The festivals and functions also create networks for the performers through their opportunities to exhibit talents before the prospective buyers. It also helps to generate income among the local people (Larsen & O'Reill, 2005).

Considerable numbers of tourists are attracted to India due to its different

colourful festivals. Many of these festivals are associated with ethnic music. There are various fairs and festivals with a good volume of musical content that attract visitors from other places (Singh R. P., 2009). Here, we can mention the big music-festivals like the Sankatmochan Music Festival, Dhrupad Mela in Varanasi, or the exceptionally high budget show like the musical show of the Canadian pop artist Justin Bieber. The Justin Bieber's music performance on May 10 2017, in Mumbai, gathered huge audiences who purchased very highly-priced tickets. These kinds of music festivals and gigs are drawing heavy tourist flows (India Today, 2018).

India is a land of fairs and festivals; all the festivals cover various communities' cultures, traditions, and customs. Some festivals in India are regional; some festivals are city-specific, some are religion-based, and some are not included in all these criteria but celebrated on a particular date during a specific time (Durgamohan, 2015). There are many festivals in India where music remains the main attraction of the event. Hampi festival in Kerala in south India is one of the biggest festivals of this kind. Hampi festival is celebrated with the cultural extravaganza of dance, drama, music, fireworks, puppet shows and huge processions. They all get combined and enhance the richness of the bygone era. This festival also can help people in the cultural and economic aspects (Durgamohan, 2015). Horn-bill festival is one of the music festivals in northeast India. This festival is celebrated in the state of Nagaland. Local communities perform ethnic dance wearing the Horn-bill feather on their heads. (Bennett, Nyaoi, & Som, 1997). Local people think that the success of a festival relies on the international tourist who comes along with the camera and interacting with local community dance troupes (Longkumer, 2013).

Apart from ethnic music, other kinds of music are also being played and performed in different places in India. Goa is one of the places where people enjoy psychedelic and progressive rock music. The Hippies used to be the leading group that used different kinds of intoxicating substances like LSD and cocaine and enjoyed psychedelic music the whole night on the beach, especially during full moon nights. (Saldanha, 2002).

A General Overview of Tourism in Sikkim

Looking at the second smallest and least populous Indian state Sikkim, this is a landlocked state of India with 610577 inhabitants (Census 2011). The state has become a popular tourists' destination with its beauty of nature, beautiful culture, scenery, and biodiversity (Tourism Survey Report for the State of Sikkim, 2011-2012). In Sikkim, tourism was not highlighted before the 90s, but the state has gained massive popularity in tourism for two decades and became a central part of the state economy. Sikkim is mainly famous for ecotourism and pulls tourists from all over the World.

Sikkim has good touristic advantages because of its natural beauty and availability of required resources to support and promote Tourism through

government funding. The development planners of Sikkim identified Tourism as a highly potential sector. The planners included sociologists, economists, environmentalists, politicians, government representatives and public representatives. They concluded that tourism is the most suitable and viable industry for the state of Sikkim.

The status of tourism in Sikkim witnessed a precise upward curve. Sikkim was not so active in tourism until the 90s, but this has emerged with magnificent development in the tourism sector during the past two decades. Sikkim's volume of visiting tourists was lesser in numbers before the 90s, which leads to minimal contribution to the state economy, but this particular sector has become one of the most prominent revenue collectors in Sikkim. It has gained massive popularity at the national and World levels with millions of flowing tourists from all over the World (East Himalaya, n.d.). Sikkim recorded an impressive rise in tourist interests during recent years. From 2012 to 2017, the number of tourist visits increased by 243.57%. Among these tourists, the increase in national tourists has been recorded as 246.33%, when the foreign tourists' increase has been recorded as 185.4% (Sikkim Department of Tourism & Civil Aviation, 2018). There are plenty of natural resources in Sikkim that are profusely used by the service industries like tourism that includes hospitality industries and cottage industries. The people of Sikkim offer many natural destinations for tourists.

The Government of Sikkim offers good funding and facilities to the people of Sikkim to facilitate the growth of the tourism industry. Sikkim is especially famous for its mountains, falls, rivers and lovely scenic beauty. This region is a heaven for incoming tourists from different parts of the World. Sikkim tourism sector has grown as one of the potential businesses in its own space that offers the natural beauty of the place, landscape, mountains, endemic flora and fauna, wildlife, local culture, dresses and ornaments, traditional cuisine, art and heritage. So, this phenomenon helps the local community to grow socially and economically (Cajee, 2018).

Community-Based Tourism in Sikkim

Community-Based Tourism (CBT) is a type of sustainable tourism that brings the people in one row in the community. It also facilitates respect towards the local culture, tradition and heritage (Lama, 2014). In 2002 Sikkim organized the South Asian Regional Conference on Ecotourism. Sikkim initiated the concept of community-based tourism, which was one of the outputs of the conference. This state became the first state that entwined ecotourism with considerable community participation. The main component of community-based tourism in the state is homestay (Sikkim Department of Tourism & Civil Aviation, 2018, p.9).

There are several villages in Sikkim where community-based tourism and rural tourism are practised and promoted. Eleven villages in Sikkim were promoted by the Ministry of Tourism Government of India under a rural tourism project. The identified villages are; Pastenga, Pendam Gadi Budang and Tumin in East Sikkim, Chumbung, Tingchim, Maniram

Bhanjgyang, Rong, Srijunga Martam, and Darap in west Sikkim, Lachen in North Sikkim and Jaubari in South Sikkim.

The only identified village in West Sikkim for CBT is Darap. Darap is a small village at an altitude of 5100 feet above sea level. The village is dominated by the Limboo community (sub-community of Nepali). 95% population in Darap is Limboo; they occupied a place of pride in Sikkim's richest cultures and heritage. People of the village say tourism is not disturbing their culture and tradition, but it is helping in the promotion of their culture and tradition (Singh A. A., 2016).

Cultural Tourism in Sikkim

Sikkim, as already discussed, is especially famous for its rich cultural presence and beauties of nature. Several cultural festivals get organized in different cities of the state. Local food and beverage are made available in these festivals, along with different traditional dance and music presentations by different local communities. Various ethnic groups participate in cultural festivals with great enthusiasm and gusto. These activities promote a revival of interest and pride among local people in their cultural heritage. People highlight the local cultural practices so that they can share their unique cultures with tourists. Invaluable educational opportunities such as homestays and town-hall-style rounds of talks are encouraged to share the cultural signatures through serving indigenous food, music, folklore and traditional goods of the local community. Every visitor is treated with appreciation and respect by the local communities. (Singh A. A., 2016). Music is the main element which has more attraction for visitors in all cultural activities. The presentation of folk dance and music occupy a prominent place and a central attraction for the tourist in Sikkim. Men and women recreate songs and dance as they do during different rituals for birth, weddings and any other festivals (Pradhan, 2016). Besides all this, one can notice some influences of modern elements emerging in traditional art forms. These influences are visible mainly in folk songs and folk dances of Sikkim; those are under pressure from the mass media, and these are at times dominated by Hindi and English pop culture (Pradhan, 2016). Presentation of local culture and tradition for the tourists results in the generation of money by showcasing the exclusivity of the traditional elements, and it naturally supports the preservation of the culture. Hence, the point is to promote tourism to generate income and create respect for local customs and traditions (Cooley, 1902).

Eco-cultural Tourism in the Villages of Sikkim

Eco-cultural tourism [ECT] is a combination of eco-tourism[5] and cultural tourism. ECT can be approached from several directions. The concept of eco-cultural tourism is framed in the integrated ecotourism as sustainable nature-based tourism, village tourism, and cultural tourism (A.Fennell, 1999). When ecotourism combines with cultural activities in the villages, it is called eco-cultural tourism. It is another form of tourism where both the ecological and cultural aspects meet and create a new site for tourists.

ECT can be explained in another way like, travelling to the destination where the priority is given to nature, and the culture also works as a significant attraction. This combination is an excellent strategy to support the conservation of natural habitats, an exhibition of various indigenous cultures and one of the alternatives to economic sustainability (Cajee, 2018).

Village tourism or rural tourism has emerged as the third type of eco-cultural tourism and is one of the main attractions for tourists within eco-cultural tourism. The introduction of rural tourism policy by the Government of India started attracting tourists to travel in the village areas. They can put themselves away from the congestion of cities and can enjoy the village culture and heritage, traditional food and music. Thus, the visitors mentally get rejuvenated and get enriched culturally and spiritually (Lama, 2014).

Discussions

The investigation revealed that Music had been successfully applied in different parts of the World to generate high volume tourist flow and leading to an impressive generation of funds that, as a result, supported the regional Economy. In India, the study discussed some examples of music-tourism, but this requires further data support to analyze different correlations like applications of music and their corresponding impacts on the volume of tourist flow and their corresponding fund generations through related sources. The present article pointed out that music is getting applied in the Eco-cultural tourism in Sikkim. The study showed immense scope to appropriately boost ECT and the presence of music to generate awareness and respect towards one's cultural practices and help in the growth of the state economy.

Declaration:

The article used the obtained data and analysis from the PhD work of the first author Manoj Rai pursuing his PhD at the Department of Music, Sikkim University.

1 Works Cited

Definition of Tourism (UNWTO Definition of Tourism) / What Is Tourism/? (n.d.). Retrieved May 17, 2019, from UNWTO: http://www.tugberkugurlu.com/archive/definintion-of-tourism-unwto-definition-of-tourism-what-is-tourism

Lashua, B., Long, P., & Pracklen, K. (2014, April 1). Introduction to the Special Issue: Music and tourism. *Tourist Studies, 14*(1), 3–9.

Topping, A. (2011, May 16). *Culture.* Retrieved from The Guardian: https://www.theguardian.com/music/2011/may/16/uk-music-tourism-billion-economy

Connell, J., & Gibson, C. (2003). *Sound Tracks, Popular Music Identity and Place.* London: Routledge.

Guerrón-Montero, C. (2006). Can't Beat Me Own Drum in Me Own Native Land: Calypso Music and Tourism in the Panamanian Atlantic Coast. *Anthropological Quarterly*, 633-665.

Kirkegaard, A. (2001). Tourism Industry and Local Music Culture in Contemporary Zanzibar.

VOA News. (2012, February 10). Retrieved November 19, 2018, from Voice of America: https://www.voanews.com/a/zanzibar-music-festival-faces-financial-cultural-challenges-139158444/159588.html

Gibson, C., & Connell, J. (2005). *Music and Tourism On the Road Again*. Toronto: Channel View Publications.

Janssen, A. B. (2014). Popular music as cultural heritage: scoping out the eld of practice . *Heritage Studies*, 224-240 .

Brown, K. G. (2009). Island tourism marketing: music and culture. *International Journal of Culture, Tourism and Hospitality Research* , 25-32.

Lewin, A. L. (1986). Fourth International Colloquium "Traditional Music and Tourism," Held at Kingston, and Newcastle, Jamaica,. *traditional music*, 211-212 .

Quinn, B. (2010). Arts festivals, urban tourism and cultural policy . *Journal of Policy Research in Tourism, Leisure and Events*, 264–279.

Rolfe, H. (1992). Arts festivals in the UK. 85.

Brennetot, A. (2004). Des festivals pour animer les territoires / When French art festivals bring life to living. 29-50.

Gibson, C. (2002). Rural Transformation and Cultural Industries: Popular Music on the New South Wales Far North Coast. 337-356.

India Today. (2018, February 13). *What is music tourism? Why is it gaining popularity in India?* Retrieved November 22, 2018, from India Today: https://www.indiatoday.in/lifestyle/travel/story/what-is-music-touri

Lama, R. (2014). *Community Based Tourism Development (A Case Study of Sikkim)*. Kurukshetra.

Larsen, G., & O'Reill, D. (2005). *Music Festivals as Sites of Consumption: An Exploratory Study.*

Jairazbhoy, N. A. (1977). Music in Western Rajasthan: Stability and Chang. *International Folk Music Council*, 50-66.

Singh, R. P. (2009). *Holi Place and Pilgrimages: Essay of India*. New Delhi: Shubhi Publications.

Durgamohan, M. (2015). The Cultural and Economic Significance of Hampi Festival. *Worldwide Hospitality and Tourism Themes, 7*(4), 377-392.

Bennett, E. L., Nyaoi, A. J., & Som, J. (1997). Hornbills Buceros SPP. and Culture in Northern Borneo: Can They Continue to Co-exist? *Biological Conservation*, 41-46.

Longkumer, A. (2013). Who sings for the Hornbill?: the performance and politics of culture in Nagaland, Northeast India*. *2*, 87–96.

Saldanha, A. (2002). Music tourism and factions of bodies in Goa. *tourist studies, 2*, 43–62.

Cajee, D. L. (2018). Eco-Cultural Tourism in Darap Village, West Sikkim . *Journal Of Humanities And Social Science* , 55-61.

Singh, A. A. (2016). Community Based Tourism and local Culture in India .

Pradhan, P. (2016). Culture and Tourism: A Study of Sikkim.

Cooley, C. H. (1902). *Human Nature and the Social Order.* New York: Charles Scribner's Sons.

Bhattarai, B., & Pandey, d. (2012). Eco – tourism: a n Engin E o F Economic g rowth in s ikkim. *rural development*, 52.

A.Fennell, D. (1999). Ecotourism: An Introduction. *Sustanable Development*, 204–205.

Sikkim Department of Tourism & Civil Aviation. (2018). p-24. Retrieved from Sikkim Department of Tourism & Civil Aviation.

(2011-2012). *Tourism Survey Report for the State of Sikkim*. Ministry of Tourism(Market Research Division, Govt. of INDIA).

Dunbar-Hall, P. (2001). Culture, Tourism and Cultural Tourism: Boundaries and frontiers in performances of Balinese music and dance. *Journal of Intercultural Studies, 22*(2), 173-187.

East Himalaya. (n.d.). Retrieved February naturebeyond, from naturebeyond: http://www.naturebeyond.co.in

(Footnotes)

[1] Research Scholar, Department of Music, School of Professional Studies, Sikkim University
Email: manojreeyaaz@gmail.com

[2] Assistant Professor, Department of Music, School of Professional Studies, Sikkim University
Email: skumar02@cus.ac.in
[3] Former Professor, Department of Music, School of Professional Studies, Sikkim University Email: sitardivine@gmail.com
* Corresponding Author: Manoj Rai, Research Scholar, Department of Music, School of Professional Studies, Sikkim University
Email: manojreeyaaz@gmail.com
[4] The Fourth Colloquium of the ICTM [International Council for Traditional Music] was held in Jamaica during 10-14 July 1986. The primary purpose of the Colloquium was to examine the significance of traditional music and dance in tourism.
[5] Ecotourism means nature-friendly activities in tourism. It introduced natural areas for travelling or trekking to appreciate nature and the culture without disturbing the integrity of the ecosystem while creating economic opportunities
(Bhattarai & Pandey, 2012)
.

गुरु-शिष्य शिक्षण परम्परा के परिप्रेक्ष्य में ऑनलाईन संगीत शिक्षा

महुआ बनर्जी, शोध शिक्षार्थी[1]

संगीत विभाग, नेहरू ग्राम भारती (मानित) विश्वविद्यालय, प्रयागराज

डॉ. कावेरी त्रिपाठी, शोध निर्देशिका

असिस्टेंट प्रोफेसर, संगीत विभाग, नेहरू ग्राम भारती (मानित) विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रस्तवाना-

विश्व की प्राचीनतम संस्कृति के रूप में हिन्दू संस्कति का एक विशेष स्थान है। हिन्दू संस्कृति में संगीत का एक विशिष्ट स्थान है। वैदिक काल में संगीत का प्रयोग वेदों में परिलक्षित होता है। वैदिक काल में सामवेद के ऋचाओं को सामगान के माध्यम से देव आराधना का श्रोत माना जाता था। प्राचीन काल में ऋषि-मुनि अपने आराध्य की आराधना के लिए संगीत का आश्रय लेते थे। संगीत देव आराधना और मोक्ष प्राप्ति का एकमात्र मार्ग समझा जाता था। प्राचीन काल के ऋषि-मुनियों ने भारतीय शास्त्रीय संगीत के अनेक ग्रन्थों की रचना की, जिसके फलस्वरूप भारतीय शास्त्रीय संगीत वर्तमान समय में भी अडिग और अखण्ड है।

वैदिक युग में गुरु अपने आश्रमों में शिक्षा दिया करते थे। शिक्षा के माध्यम से शिक्षार्थी की विचार शक्ति बढ़ती है, जिससे वह उचित निर्णय ले सके और सभी का मार्गदर्शन कर सके।

शिक्षा के आवश्यक तत्वों के विषय में महाभारत में कहा गया है-

अद्रोहः सर्वभूतानोकर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च दानं च शीलमेतत् प्रशस्यते।।[3]

अर्थात-

"व्यक्ति के आन्तरिक गुणों में शील और विनय अर्थात् मन, कर्म और वचन से द्वेष न रखना, सब प्राणियों के प्रति प्रेम व अनुग्रह रखना तथा त्यागी व दानी होना आदि, शिक्षा के वांछनीय तत्व हैं।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार - "मनुष्य की आत्मनिहित पूर्णता की अभिव्यक्ति ही शिक्षा कहलाती है।"[4]

यहाँ सांगीतिक शिक्षा का उल्लेख है। संगीत में स्वर, लय, ताल, राग के नियम ये सभी सांगीतिक शिक्षा के अन्तर्गत आते हैं। संगीत की उचित शिक्षा प्राप्त कर प्रत्येक कलाकार श्रोताओं के मन को मुग्ध कर सकते हैं। इस सन्दर्भ में डॉ श्रीपद रामचन्द्र नाईक ने कहा है- "श्रोताओं की नजरें, मन, कान आदि को आकर्षित कर लेने की शक्ति अनुशासन से भी संगीत कला में होती है। इसलिए शिक्षार्थियों में अनुशासन निर्माण करने के लिए जिन उपायों का प्रयोग किया जाएगा, उनमें संगीत शिक्षा का भी प्रयोग किया जाए। निश्चित रूप से वे सफल हो जायेंगे जो कि देश कार्य के लिए आवश्यक है।[5]

प्राचीन भारतीय शिक्षा के मुख्य उद्देश्य के विषय में डॉ ए.एस. अल्तेकर कहते हैं-

"प्राचीन भारतीय शिक्षा का मुख्य उद्देश्यों एवं आदर्शों का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है - ईश्वर भक्ति एवं धार्मिकता का समावेश, चरित्र का निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, नागरिक एवं सामाजिक कर्तव्य पालन की भावना का समावेश, सामाजिक कुशलता की उन्नति और राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण एवं प्रसार।"[6]

अतः समाज को उन्नत अवस्था में लाने के लिए शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है। इसके अतिरिक्त शिक्षार्थियों में ईश्वर भक्ति और धार्मिकता के प्रचार-प्रसार के लिए संगीत शिक्षा नितान्त आवश्यक है। यह माना जाता है कि व्यक्ति की मुक्ति का एकमात्र मार्ग ईश्वर भक्ति है और ईश्वर भक्ति का एकमात्र मार्ग संगीत है। शिक्षार्थियों में धार्मिकता और ईश्वर के प्रति आस्था को जाग्रत करने के लिए संगीत का ज्ञान होना आत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए प्रत्येक गुरु को अपने शिष्य को शिक्षा देते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि शिक्षार्थी के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास हो और उसमें उत्तम चरित्र का निर्माण हो।

प्राचीन काल में भारत में प्राथमिक शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी। उस समय प्राथमिक शिक्षा का कोई केन्द्र भी नहीं था। उस समय बालक का परिवार ही उसके शिक्षा का केन्द्र था। इसके पश्चात् कुछ ब्राह्मणों और ऋषियों ने व्यक्तिगत रूप से शिक्षा देने का कार्य प्रारम्भ किया। जिसके फलस्वरूप, गुरु-शिष्य शिक्षण प्रणाली का विकास हुआ। प्राचीन भारत में शिक्षा प्राप्त करने का प्रमुख स्थान गुरुकुल था, जहाँ शिक्षार्थी शिक्षित होते थे। इन्हीं गुरुकुलों से गुरु-शिष्य शिक्षण परम्परा का विकास हुआ।

गुरु-शिष्य शिक्षण पद्धति-

वैदिक युग में ग्रन्थों द्वारा जो विवरण प्राप्त होता है उसके अनुसार किसी भी विद्यालय का उल्लेख नहीं मिलता है, और जो कुछ भी मिलता है उसके अनुसार संगीतकला की जो शिक्षा दी जाती थी, उसे गुरु-शिष्य परम्परा के नाम से सम्बोधित किया गया। अतः प्राचीन काल में संगीत कला का ज्ञान गुरुमुख से दिया जाता था।

प्राचीन काल में शिक्षार्थी गुरु गृह में रहकर नियमानुसार विद्या ग्रहण करते थे। इस परम्परा को गुरु-शिष्य परम्परा या गुरुकुल पद्धति कहते हैं। उस समय जिन शिक्षार्थियों को संगीत सीखने की इच्छा होती थी, वे गुरु के आश्रमों में रहकर संगीत सीखते थे। आश्रमों में रहकर वे गुरु की सेवा करते थे। गुरु के आश्रम लोगों की भीड़-भाड़ से दूर, प्रकृति की असीम सौन्दर्यता के बीच हुआ करते था। सभी गुरु अपने विषय में पारंगत होते थे और वे ही अपने शिक्षार्थियों का चयन भी करते थे और उन शिष्यों को शिक्षा देकर अपने ही समान पारंगत कर देते थे।

प्राचीन काल में गुरु अपनी स्वेच्छा से शिष्य का चयन कर सकते थे और शिष्य भी अपनी स्वेच्छा से गुरु का चयन कर सकते थे। उस समय द्रव्य अर्जन या लाभ-हानि जैसी कोई परिस्थिति नहीं थी। अतः गुरु-शिष्य का परस्पर सम्बन्ध अत्यन्त मधुर था। उस समय निष्काम भाव से संगीत शिक्षण होता था। उस समय गुरु शिक्षार्थियों को कर्तव्यपरायणता, शिष्टाचार, लगन और गुरु-निष्ठा की कसौटी पर खरा उतरने पर ही उसे शिष्य के रूप में स्वीकार करते थे। प्रत्येक परीक्षा में खरा उतरने पर गुरु उस शिष्य को विद्या दान देते थे। शिष्य को विद्या ग्रहण के साथ ही साथ गुरु सेवा, आश्रम की सफाई, भोजन तैयार करना तथा भिक्षा माँगकर अन्न लाना होता था।

संगीत की शिक्षा देते समय गुरु यह नहीं देखते थे कि कितने दिन-महीने या वर्ष बीत गए, वे सिर्फ अपने शिष्य को स्वयं के समान पारंगत करना चाहते थे। गुरु-शिष्य परम्परा में कुछ चीजें अच्छी थी, तो कुछ खराब।

प्राचीन काल में लिखने की व्यवस्था नहीं थी। अतः जो गुरु मुख से सुनते थे उसे स्मरण रखना होता था। गुरु से बार-बार पूछना धृठता मानी जाती थी। इसके अतिरिक्त, इस परम्परा में एक गुरु केवल पाँच या छः शिष्यों को ही संगीत की शिक्षा देते थे, अतः संगीत सर्वसुलभ नहीं था। यही परम्परा जब कालान्तर में घराने के नाम से प्रचलित हुई, उस समय भी गुरु अपने पुत्र या सगे सम्बन्धी को ही शिक्षा देते थे। प्रत्येक गुरु की अपनी विशिष्ट शैली थी, उदाहरणस्वरूप - स्वरों में उतार-चढ़ाव, आवाज में गाम्भीर्य, तानों में बढ़त, इत्यादि। प्रत्येक शिष्य अपने गुरु की शैली के अनुरूप ही गायन-वादन या

नृत्य करता था। दूसरे किसी घराने की शैली को वह नहीं अपनाता था।

गुरु शिष्य परम्परा में जिस प्रकार गुरु शिष्य का चयन करते थे, उसी प्रकार शिष्य भी गुरु का चयन करते थे, जैसा कि महाभारत की घटनाओं से विदित होता है। महाभारत में महामहिम भीष्म ने कौरवों और पाण्डवों की शिक्षा के लिए गुरु द्रोणाचार्य का चयन किया था। एकलव्य ने भी द्रोणाचार्य को अपना गुरु मानकर उसी अनुरूप तीर चलाने का अभ्यास किया।

स्वामी हरिदास ने तानसेन की आवाज सुनकर उन्हें अपना शिष्य बनाया और तानसेन ने स्वामी हरिदास की प्रतिभा को देखकर उन्हें अपना गुरु स्वीकार किया। गुरु के प्रति समर्पण का भाव ही शिक्षार्थी को उन्नति के पथ पर अग्रसरित करता है। गुरु के प्रति श्रद्धा और आस्था में कमी ही इस परम्परा में लोप का प्रमुख कारण हैं।

प्रो. रामाश्रय झा ने घरानों की प्रशंसा करते हुए कहा है -"जिस भाँति पतित पावनी गंगा की धारा में किसी प्रकार का अशुद्ध या अपवित्र जल तथा वस्तु मिल जाने पर वह पवित्र समझा जाता है उसी प्रकार संगीत के क्षेत्रा में भी 'घराना' शब्द पतित पावनी गंगा की ही भाँति बना हुआ है। जिज्ञासुओं के इतना कह देने से कि अमुक गायक अमुक घराने का है, श्रोताओं को आत्म सन्तुष्टि हो जाती है।"[7]

जिस प्रकार शिशु के विकास के लिए उसके माता-पिता की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार शिक्षार्थी को शिक्षा प्राप्त करने के लिए एक उत्तम गुरु की आवश्यकता होती है। शिक्षा ग्रहण करने के लिए उचित शिक्षण पद्धति भी अत्यन्त आवश्यक है। प्राचीन काल में शिक्षण पद्धति 'गुरु-शिष्य परम्परा', उसके पश्चात् 'घरानेदार शिक्षण पद्धति' तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् 'संस्थागत शिक्षण पद्धति' के नाम से प्रचलित है।

वर्तमान समय में महामारी के कारण जब शिक्षार्थी विद्यालयों या संस्थाओं में नहीं जा पा रहे हैं, ऐसे में आन-लाईन शिक्षण पद्धति के माध्यम से संगीत शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

ऑन-लाईन संगीत शिक्षण पद्धति -

वर्तमान समय की परिस्थिति को देखते हुए महामारी के कारण लोग काल के ग्रास बन रहे हैं। ऐसे में व्यक्ति अपने घर से बाहर निकलने पर अपने को असुरक्षित महसूस कर रहे हैं। विद्यालय, कार्यालय, दुकानें लगभग सभी बन्द हैं। बच्चे घर पर बैठकर ऑनलाईन शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। सरकारी एवं गैर-सरकारी कार्यालयों के लोग घर में रहते हुए अपना कार्य कर रहे हैं। देश की अर्थव्यवस्था को धक्का अवश्य लगा परन्तु सरकार भी अपने अथक प्रयासों से देश की स्थिति में लगातार सुधार ला रही है।

वर्तमान समय में संगीत की शिक्षा भी इसी प्रकार ऑनलाईन संगीत शिक्षण मंच की नितान्त आवश्यकता है। इस मंच के माध्यम से शिक्षार्थी घर पर रहते हुए संगीत में प्रवीण हो सकते हैं। वर्तमान समय में अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों से संगीत विषय लुप्त होता जा रहा है। कुछ हिन्दी माध्यम के विद्यालय, जहाँ संगीत विषय है, वहाँ भी समयाभाव के कारण संगीताचार्य शिक्षार्थियोंको पूर्ण ज्ञान प्रदान नहीं कर पा रहे हैं। शिक्षार्थियों को जब तक रागों का पूर्ण ज्ञान एवं रागों के भाव स्पष्ट नहीं होंगे, तब तक वह अपनी आने वाली पीढ़ी को संगीत की शिक्षा सही ढंग से प्रदान नहीं कर सकेंगे।

वर्तमान परिस्थिति में यह आवश्यक हो गया है कि भारतीय शास्त्रीय संगीत की शिक्षा आनलाईन सुचारु रूप से प्रदान किए जाने की ओर कदम उठाया जाए। इसके लिए कम्प्यूटर विशेषज्ञों के माध्यम से यूजर फ्रेंडली ऍप बनाकर संगीत की शिक्षा प्रदान की जा सकती है। इसी ऍप के माध्यम से शिक्षार्थियों के मूल्यांकन की भी व्यवस्था की जा सकती है। गुरु भी अपनी गायन शैली का वीडियो बनाकर इस ऍप में अपलोड कर सकते हैं जिससे शिक्षार्थियों को भी गुरु के गुणों के सन्दर्भ में जानकारी प्राप्त हो सके।

इस प्रकार ऍप के माध्यम से राग को सीखने के लिए कोई निश्चित समयावधि नहीं होगी। शिक्षाथह्न

जब तक राग के स्वरूप को स्पष्ट रूप से समझ नहीं लेता है, तब तक वह गुरु द्वारा ऍप में अपलोड की गई रिकार्डिंग को सुनते हुए अभ्यास कर सकता है। भले ही रागों या तालों को सीखने में समय लगे, शिक्षार्थियों को उसमें निपुणता प्राप्त करनी चाहिए। जिससे कि मंच पर प्रदर्शन के समय वह पूर्णरूपेण तत्पर हो सके।

संगीताचार्य वर्ष के अन्त में अपने शिक्षार्थियों का मूल्यांकन करके उत्तीर्ण होने पर उन्हें उच्चतर संगीत शिक्षा में नामांकन के लिए प्रोत्साहित कर सकते हैं। ऑनलाईन मूल्यांकन एवं ऑनलाईन प्रमाणपत्र प्राप्त होने से अन्य शिक्षार्थियों में भी शास्त्रीय संगीत को सीखने की इच्छा जागृत होगी और इस प्रकार सभी संगीत की लहरों में बहते हुए पारंगत बन सकते हैं। शिक्षाथह्न इस ऍप में गुरु द्वारा निर्धारित की गई शुल्क को आनलाईन माध्यम से जमा करके अपना पंजीकरण करवा सकते हैं। ऐसे शिक्षार्थी अन्य संगीत प्रेमी अभ्यर्थियों को भी ऐसे ऍप की जानकारी प्रदान कर सकते हैं जिससे वे सभी अपना पंजीकरण करवाकर घर पर रहते हुए संगीत की शिक्षा प्राप्त कर सकें।

उपसंहार -

भारतीय शास्त्रीय संगीत की प्राचीन और नवीन पद्धति में कुछ समानताएँ हैं और कुछ विषमताएँ भी हैं। दोनों ही पद्धतियों में शास्त्रीय संगीत अपने विशाल रूप में परिलक्षित होता है। वर्तमान समय में संगीत शिक्षा की ओर रुझान जो कि कम होती जा रही थी, ऑनलाईन संगीत शिक्षण पद्धति के माध्यम से उसकी स्थिति में सुधार अवश्यमभावी है। प्राचीन काल की ही भाँति इस शिक्षण पद्धति के माध्यम से संगीत का सर्वांगीण प्रचार-प्रसार सम्भव होगा। प्राचीन काल में लड़कियों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए अत्यन्त असुविधा होती थी, क्योंकि उन्हें घर से बाहर निकलकर पढ़ने की अनुमति नहीं मिल पाती थी। वर्तमान परिस्थिति में, ऑनलाईन शिक्षण पद्धति में न तो घर से दूर जाने की आवश्यकता होगी और न ही आश्रमों में रहने की जरूरत है। अतः शिक्षार्थी चाहे गाँव में रहे, या शहरों में रहे, वह कहीं पर भी रहकर ऍप के माध्यम से अपने गुरु के सम्पर्क में रह सकता है, और संगीत की शिक्षा प्राप्त कर सकता है।

न केवल बालक-बालिकायें, बल्कि विवाहित स्त्री-पुरुष भी, जिन्होंने परिवार के दबाव में आकर जिन्होंने अपने संगीत सीखने की इच्छा को दबा दिया था, वे भी दिनभर अपना कार्य समाप्त करने के पश्चात् संगीत की ऑनलाईन क्लास के माध्यम से अपनी संगीत सीखने की इच्छा को पूर्ण कर सकते हैं। खुद संगीत सीखने के साथ ही साथ वह अपने बच्चों को भी सिखा सकते हैं। अतः इससे शास्त्रीय संगीत का प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में वास हो सकेगा।

ऑनलाईन माध्यम से संगीत शिक्षा प्राप्त करने में स्त्री-पुरुष, जाति भेद या छोटे-बड़े की भी कोई सीमा नहीं होगी। चार वर्ष के शिशु से लेकर सौ वर्ष का व्यक्ति भी इन कक्षाओं में भाग ले सकता है। यहाँ सभी जाति एवं धर्म के शिक्षार्थियों को कक्षाओं का लाभ उठाने की अनुमति होगी। शिक्षार्थी चाहे हिन्दू हो या मुस्लिम, सिख हो या इसाई, ब्राह्मण हो या क्षत्रिय, वैश्य हो या शूद्र, वह अमीर हो या गरीब, सभी इन कक्षाओं का लाभ ले सकते हैं।

अतः यहाँ पर स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए संगीत की ऑनलाईन शिक्षा की ओर विशेष प्रयास किए जाने की आवश्यकता है। ऑनलाईन संगीत शिक्षा के माध्यम से भारत के किसी भी प्रान्त या जिले के लोग अच्छे संगीतकार या गुरु के सान्निध्य में रहकर उत्तम शास्त्रीय संगीत की शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं।

सन्दर्भ सूची

[3] महाभारत, शान्ति पर्व, 124, 66

[4] डॉ एस.के. मंगल, आधुनिक भारतीय समाज में शिक्षा, प्र. 5

[5] संगीत कला विहार, जनवरी, 1968 ई - पृ. 15

[6] डॉ ए.एस. अल्तेकर, पृ. 8, 9

[7] डॉ स्वतन्त्र शर्मा, घरानों की उपादेयता, 1982 ई., पृ. 41
1. "उदीयमान भारतीय समाज के शिक्षक", एन.आर. स्वरूप सक्सेना, शिखा चतुर्वेदी
2. "दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र", ओम प्रकाश बाल्मीकि
3. "धर्म संगीत एवं संस्कृति", डॉ रेखा सेठ एवं डॉ नीलिमा गुप्ता
4. "भारत में शिक्षा प्रणाली का विकास", डॉ एस.पी. गुप्ता एवं डॉ अलका गुप्ता
5. "भारत में शिक्षा प्रणाली का विकास एवं समस्यायें", डॉ सुषमा जोशी
6. "भारतीय संगीत की परम्परा, वंशानुक्रम एक वातावरण", डॉ हरिकिशन गोस्वामी
7. "भारतीय संगीत के विविध आयाम", डॉ श्रीमती रेणु राजन
8. "भारतीय शिक्षा और उसकी समस्यायें", श्री अवीन्द्र शील
9. "भारतीय संगीत में गुरु-शिष्य परम्परा और संस्थागत संगीत शिक्षा", डॉ संतोष दत्तात्रेयराव परचुरे एवं डॉ पुष्पम नारायण

ग़ज़ल गायकी के दो महानायकों पद्मभूषण जगजीत सिंह जी एवं उस्ताद गुलाम अली जी का सांगीतिक परिचय

डॉ. स्मृति त्रिपाठी

(पी.एच.डी.,एम.फिल., एम.ए., प्रवीण), अतिथि प्राध्यापक, संगीत विभाग,
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, म.प्र,

संगीत कला का एक रूप है। यद्यपि संगीत की किसी एक परिभाषा का सर्वस्वीकार होना कठिन है, परन्तु यह कहा जा सकता है कि कला का वह रूप जो ध्वनियों के माध्यम से प्रदर्शित किया जाता है, संगीत कहलाता है। एक परिभाषा के अनुसार "एकीकृत तथा अविरत रचना हेतु स्वरों को व्यवस्थित अनुक्रम में संयोजित करना संगीत है।" सामान्य भाषा में कहा जाय तो स्वर एवं लय को व्यवस्थित रूप से संयोजित करने से संगीत का प्रादुर्भाव होता है।

भारत में संगीत की परम्परा विश्व की प्राचीनतम संगीत परम्पराओं में से एक है। यह कला ब्रह्मा जी से शिवजी तथा शिवजी से देवी सरस्वती को प्राप्त हुई। देवी सरस्वती को संगीत और साहित्य की अधिष्ठात्री देवी माना गया है। भारतीय संगीत को मूल वेदों मे खोजा जा सकता है। सामवेद में सात स्वरों का वर्णन है - "तस्य हैतस्य साम्नो यः स्वं, वेद, भवति, हास्य स्वं, तस्य स्वर एवम् स्वर" अर्थात जो साम के स्वर को जानता है उसे 'स्व' प्राप्त होता है। भारतीय संगीत की परम्परा वेद, आगम, पुराण आदि से निर्मित हुई है।

'संगीत कं न मोहयेतु' अर्थात संगीत से कौन मोहित नही होता। संगीत का माध्यम नाद सर्वाधिक सूक्ष्म है जिस कारण इससे प्राप्त आनन्द सबसे उच्चस्तरीय होता है। नाद की ध्वनि तरंगो के विविध स्वरूपों से स्वर रचना होती है तथा उन स्वर रचनाओं से ही संगीत बनता है। संगीत का प्रयोजन सांसारिक चिंताओं से दबे हुए या थके हुए मानव को उन चिंताओं से मुक्त कराकर अलौकिक सुख की प्राप्ति करना है। भारतीय संगीत हमारी धरोहर है। हमारे भारतीय संगीत की और उसके प्रस्तुति की एक विशेषता यह है कि यहाँ व्यक्तिगत स्वर तथा सोच को सर्वोपरि महत्व मिलता है। यह संगीत पद्धति वैज्ञानिक, सौन्दर्य शास्त्रीय, संवाद तथा स्वरसंगति के ठोस तत्वों पर आधारित सदियों से विकसित होती आई है और समय-समय पर इसमें संगीतकारों ने अपनी व्यक्तिगत प्रतिभाओं का योगदान दिया है तथा इस पर अपनी व्यक्तिगत प्रस्तुति और स्वरों की छाप छोड़ी है। ऐसे कई प्रतिभाषाली कलाकारों ने हिन्दुस्तानी संगीत पर अपनी कालजयी मुहर लगाई है। अपनी विशिष्ट शैलियों का प्रदर्शन करते हुए कलाकारों को धन-सम्पदा, मान-सम्मान तथा पुरस्कारों से सुशोभित किया गया है।

आज हमारे देश में प्रचलित शास्त्रीय संगीत को मार्गी-देशी संगीत कहा जाता है, इसकी प्रमुख दो धाराएँ विद्यमान हैं प्रथम हिन्दुस्तानी संगीत तथा द्वितीय कर्नाटकी संगीत। हिन्दुस्तानी संगीत जिसे उत्तर भारतीय संगीत नाम से भी जाना जाता है इसे भी प्रमुखतः दो भागो में बाँटा गया है- शास्त्रीय एवं उपशास्त्रीय संगीत। इन भागों में विभिन्न गायन शैलियाँ सुनने को मिलती है हम इन शैलियों का अनुसरण करते हुए धारण करते हैं। नाद का हृदयरंजक

जिस गायकी में प्रकट होता है वह अधिक लोकरंजक, प्रभावशाली और अनुरंजक प्रमाणित होती है। ख्याल, ध्रुपद और धमार जैसी गायन शैलियां शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत आती हैं तथा उपशास्त्रीय संगीत में ठुमरी, टप्पा, सुगम संगीत के अतिरिक्त जो गायन शैली मुख्य रूप से उभर कर आती है वह है गज़ल। गज़ल जो अपने मूल में एक काव्यात्मक- साहित्यिक रचना है, संगीत के साथ संगठित होकर संगीत की एक विशिष्ट शैली बन गयी है। गज़लों में साहित्यिक एवं सांगीतिक दोनो ही पक्षों का स्तर उच्चकोटि का होता है और उसमें जीवन का तथ्य भी अन्तर्निहित होता है।

ग़ज़ल 'गज़ाला' शब्द से बना है। इसकी उत्पत्ति ईरान में हुई है। ग़ज़ल के शब्द अधिकतर उर्दू, फारसी भाषा में होते हैं परन्तु ग़ज़ल अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है 'प्रेमपात्र से वार्तालाप'। एक ग़ज़ल में कम से कम पांच और अधिक से ग्यारह शेर होते हैं। सारे शेर एक ही रदीफ और काफिर में होता है। और प्रत्येक शेर में एक स्वतंत्र भाव रहता है। ग़ज़ल का पहला शेर मतला और अंतिम शेर मक्ता कहलाता है, मक्ते में शायर अपना उपनाम रखता है। श्रृंगार परक होने के कारण काव्य रसिकों तथा संगीतानुरागियों की ग़ज़ल परम प्रिय रही हैं और सूफियों का भी एक मुसल्सल सफर तय करने के बाद फारस होते हुए हिन्दुस्तान पहुंची। ग़ज़ल ने मजारों तथा नवाबों की महफिलों से गुजरते हुए कोठों तक का सफर बड़ी कुशलता से पूरा किया। ग़ज़ल के शब्द स्वरभेद, राग, स्थायी, अन्तरा, तान, अलंकार, लय, सम आदि संगीत के सभी तत्व विद्यमान रहते हैं।

वर्तमान काल की ग़ज़लों में हुस्न-इश्क और प्यार की अमराईयों की महक के साथ पारिवारिक प्रेम, देश प्रेम तथा विश्व प्रेम का व्यापक समावेश मिलता है। ग़ज़ल को व्यापकता प्रदान करने और उसे नया आयाम देने में मीर, गालिब, इकबाल, फैज अहमद फैज आदि शायरों का बहुत योगदान रहा है। ग़ज़ल में मानवीय एवं इन्द्रिय प्रेम का स्थान है। ग़ज़ल में मानव जीवन के विविध निजी एवं सामूहिक जीवन प्रसंगों, प्रेम, श्रद्धा, अनुराग, सुख, दुख, वियोग, आशा, निराशा, समर्पण, त्याग, बलिदान, भक्ति आदि का समावेश है। फारसी या उर्दू कविता में छन्द में बंधे हुए शब्दों को शेर कहते हैं किन्तु एक ही छन्द में बंधे हुए कई शेरों से बनी रचना में जब गीतात्मक का तत्व प्रकट होता है तो वह ग़ज़ल कहलाती हैं। उर्दू ग़ज़ल में विषय वस्तु की व्यापकता तथा विविधता का एक मुख्य कारण यह भी है कि इसे सभी प्रांतों, धर्मों, मतों और भाषाओं में बोलने वाले विद्वानों ने अपने पूर्व ज्ञान और अनुभव से सजाया-संवारा है एवं इसके उत्थान में अपना योगदान दिया है। उर्दू ग़ज़लों में हिन्दू धर्म की कथाओं और प्रतीकों का सन्दर्भ लेकर भी चित्र उजागर किए गए है जिस प्रकार जीवन के विषयों को सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता उसी प्रकार ग़ज़ल के विषयों को सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता जैसे जिन्दगी में परिवर्तन होते रहते हैं वैसे ही ग़ज़ल के विषयों में तब्दीली आती है। कम से कम शब्दों में गागर में सागर भरने की कला ग़ज़ल की खूबी है। प्राचीनकाल की ग़ज़ल गायकी में आलाप, तान, मुर्की, सरगम तथा खटका आदि का भी प्रयोग होता था। तालों में कहरवा, दादरा, रूपक आदि छोटे अंतराल वाली तालों का ही प्रयोग किया जाता था। स्वतंत्रता के बाद ग़ज़ल गायन शैली बहुत अधिक विकसित हो गयी थी।

ताल ठेकों के मूल तालों में किए गए परिवर्तनों के फलस्वरूप वर्तमान काल की ग़ज़ल गायकी भावानुभूति एवं रसानुभूति के स्तर पर जनसाधारण में अधिक प्रभावशाली और लोकप्रिय होती जा रही है। अन्तर्मन की भावनाओं से जाग्रत कल्पना, स्वर, लय तथा ताल के माध्यम से अभिव्यक्ति होती है और यही सांगीतिक बंदिश बन जाती है। अगर ग़ज़ल के शब्दों में निहित भाव गम्भीरता लिए हुए होते हों तो ऐसे राग का चयन किया जाता है जिस राग के स्वर संयोजन में तथा राग के स्वभाव लक्षण में गम्भीरता हो। स्वरभेद, लय तथा ताल मनुष्य के विचारों, भावों और रसों को प्रदर्शित करने का सबसे

सशक्त माध्यम है। ग़ज़ल की भाषा संकेत व इशारों की भाषा है। प्रेम की बात बड़ी सूक्ष्म, अदब और तहजीब से की जाती है यानि भाषा और उपदेश की वहां कोई जरूरत नहीं, साथ ही साथ शायर के दिल के दर्द का इजहार, मिलन की आकांक्षा, विरह की पीड़ा आदि सभी इसमें शामिल है। कला और सांस्कृतिक माध्यम से संगीत का एवं संगीत में ग़ज़ल गायन शैली का भारत व पाकिस्तान जैसे दो पड़ोसी मुल्कों में मित्रवत संबंध का संचरण रहा है। दोनो देशों में शुरु से ही ग़ज़ल शैली का एक अपना महत्व रहा है जहाँ पर कलाकारों ने अपनी प्रतिभा के कारण अपनी-अपनी भूमि को सजाया-सँवारा है और ग़ज़ल को एक अलग पहचान दी है। वर्तमान समय में ग़ज़ल सम्राट जगजीत सिंह व उस्ताद गुलाम अली के गाए ग़ज़लों ने मुल्को के सम्बन्ध मे माधुर्य, शान्ति एवं सौहार्द का अविरल संचार किया है।

गाता था दिल से इसलिए,
हर दिल के अन्दर जा बसा,
जगजीत जग को जीतकर,
जगदीश के घर जा बसा,
उनकी आवाज धरोहर है,
इन बहती हुई हवाओं की,
उसके यश-कीर्ति सुरक्षित है,
बाहों में चारों दिशाओं की,
जब भी मिले हम मैने उसका,
स्नेह भी न स्वर सुना,
साक्षात में आत्मीयता,
आवाज में सागर सुना,
उनकी आवाज धरोहर है,
इन बहती हुई हवाओं की।

प्रस्तुत पंक्तियों को जगजीत जी के लिए रवीन्द्र जैन जी ने लिखी है। सत्तर के दशक के अद्वितीय, भावनात्मक, आविष्कृत, दूरदर्शिता व कल्पनाओं में जगजीत सिंह जी को भारत में सबसे विख्यात ग़ज़ल गायक बनाया। कौन ऐसा शख्स है जो हिन्दुस्तान, पाकिस्तान या पूरी दुनिया में इस शहंशाह को नहीं जानता। गहरी, सुरीली, सजीली जैसे शहद की नदी, इस आवाज को सुनकर सहज तथा आनन्द का एहसास होता है। ऐसी आवाज के जादूगर जगजीत सिंह जी का जन्म 8 फरवरी 1941 को राजस्थान के श्रीगंगानगर में एक सिक्ख परिवार में हुआ। इनके बचपन का नाम 'जीत' था। पिता सरदार अमर सिंह धमानी सरकारी कर्मचारी थे और मां बच्चन कौर पंजाब में ही समरल्ला के आलन गांव की रहने वाली थी। इन्होंने संगीत की शिक्षा सर्वप्रथम छगन लाल शर्मा तत्पश्चात सेनिया घराने के जमाल खान साहब से प्राप्त की। इनका मानना था कि 'संगीत प्रेरणा की वस्तु है, प्रतियोगिता की नहीं'। संगींत में अपनी एक अलग पहचान बनाने के लिए इन्होंने मुम्बई की धरती पर कदम रखा। संघर्ष के दौरान चित्रा सिंह जी का साथ मिला, जिससे ग़ज़ल गायकी के क्षेत्र में उभर कर सामने आए। जगजीत जी ने ग़ज़ल गायकी को शास्त्रीय संगीत के भारी बोझ से हल्का कर के शास्त्रीय सगीत के सूक्ष्म प्रभावशाली तत्वों का उपयोग अपनी ग़ज़ल गायनशैली में सीधी साधी और उर्दू फारसी के गूढ़ शब्दों से रहित ग़ज़लों के साथ किया।

इनकी आवाज जब कानों में घुलती है तो सीधे दिल में घर कर जाती है। सिर्फ ग़ज़ल ही नहीं इसके साथ पंजाबी, हिन्दी, उर्दू, बंगाली, सिंधी, नेपाली, गुजराती भाषा में भजन गाए और साथ-साथ सबद, कीर्तन भी। फिल्मों में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया।इन्होंने आम लोगों की जीवन के दर्द को अपने स्वर में पिरोकर उनके दिल में उतर जाने वाले ग़ज़लों को पेश किया। अपनें पुत्र की मृत्यु के बाद इन्होंने अपनी आय को अपनी अलबम तथा कार्यक्रम से बांटना शुरू किया। हमेशा ही बच्चों व जरूरत मन्दों की सहायता में लगे रहे। इनका स्वभाव था कि बिना जान-पहचान के वो हमेशा मद्द करने के लिए तैयार रहते थे। इन्होंने कैंसर ट्रस्ट, स्कूल, हास्पिटल व अन्य कम्पनियों के लिए काम किया।

जगजीत जी ने दुनिया में विखरे संगीत प्रेमियों को खुशनुमा पल बाटें हैं और हर उस इंसान को

शायरी से रूह को सींचा है उसे सपनें दिए हैं और ग़ज़ल गायकी में ऐसा मुकाम पाया जो दूर-दूर तक शायद ही कोई और हो पायेगा। शिव कुमार बटालवी व अटल बिहारी बाजपेयी जैसे प्रसिद्ध व्यक्ति की

कविताओं को अपनी आवाज दी। हर दिन रोजमर्रा की जिन्दगी में हम मुश्किलें झेलते हैं उनसे भी वो बावस्ता होती थी इसलिए वो अपनी ग़ज़लों के जरिए आम लोगों के बहुत करीब आए।

परखना मत परखने से कोई अपना नहीं रहता,
किसी भी आइनें में देर तक चेहरा नहीं रहता।

इनकी ग़ज़लों में एक संदेश होता था। ग़ज़लों के आम शब्दों एवं विचारों से निकलकर कुछ कवियों ने समाज के बारे में भी लिखा है- कैफी आजमी, साहिर व फैज अहमद फैज आदि। इन्होनें सामाजिक तथा साम्प्रदायिक समस्याओं पर कविताओं को लिखा, जिसको जगजीत जी ने अपनी आवाज के द्वारा लोगों तक पहुंचाया। 1976 में ग़ज़ल की स्थिति जो थी उसे सही स्थिति और नयी दिशा में लाने का श्रेय जगजीत सिंह जी को ही दिया जाता है। अन्त में 70 वर्षीय जगजीत सिंह जी का लीलावती हास्पिटल में ब्रेन हेमरेज के कारण देहान्त हो गया लेकिन ग़ज़ल का सफर यही समाप्त नही होता, आज के समय में ग़ज़ल को जिंदा रखने वाले बहुत से कलाकार हैं परन्तु जो पाकिस्तान ही नही भारत के साथ-साथ विश्व मे भी अपनी ग़ज़ल का परचम लहराया, वह नाम है गुलाम अली जी का, जिनका जन्म (विभाजन से पहले) 5 दिसम्बर 1940 में सियालकोट पाकिस्तान के गाँव में हुआ था। ये एक संगीत परिवार से ताल्लुक रखते है। गुलाम अली जी अपने युग के सर्वश्रेष्ठ गज़ल गायकों में से एक है। बड़े गुलाम अली खाँ से प्रेरित होकर इनके पिता ने इनका नाम 'गुलाम अली' रखा। पन्द्रह साल की उम्र में ही शास्त्रीय संगीत सीखने के लिए पटियाला घराने के बड़े गुलाम अली खाँ की शरण में गए लेकिन इनकी अत्यधिक व्यस्तता के कारण खाँ साहब के तीन भाइयों बरकत अली, मुबारक अली व अमानत अली खाँ से प्रशिक्षण लिया। शास्त्रीय संगीत की बारीकियों के साथ- साथ ठुमरी व राग गायन भी सीखा। इन्होंने अपने स्वर और गायकी को ऐसा बुलन्द किया कि जिसकी गूँज भारत ही नही, पूरे विश्व में फैल गयी है। इनके संगीत की शुरुआत 1960 में लाहौर के रेडियो से हुई। ग़ज़लों की रचना रागों के आधार पर एवं रागों में घरानेदार गायकी का सम्मिश्रण करते है। बी0 आर0 चोपड़ा की निकाह (1982) फिल्म से 'चुपके चुपके रात दिन' गीत के साथ हिन्दी सिनेमा में प्रवेश किया। इनकी मशहूर ग़ज़लों में हंगामा क्यों है बरपा, आवारगी, हमको किसके गम ने मारा, हम तेरे शहर में जैसी ग़ज़लें शामिल है। पंजाबी, हिन्दी, उर्दू के अतिरिक्त नेपाली भाषा में भी खूबसूरत ग़ज़लें गायी है।

गुलाम अली जी 1976 से जगजीत सिंह जी को जानते थे। दोनों विख्यात ग़ज़ल गायको में बहुत समानताएँ है, दोनों की गायन शैली में अन्तर को समझ पाना संगीत क्षेत्र के व्यक्तियों के लिए एक कठिन शोध का विषय बन गया है। दोनों ही कलाकार को हारमोनियम के साथ ग़ज़ल प्रदर्शन करते देखा गया है लेकिन गायकी का अंदाज दोनों में पृथक है। इसके साथ- साथ वाद्यों के चुनाव में, ग़ज़लों के चुनाव में तथा रचनाओं में भी अन्तर देखने को मिलता है। जगजीत सिंह हंसमुख प्रवृत्ति के थे जो लोगो के प्रति इनको और भी आकर्षक बना देता है।

दोनों ही अच्छे शायरों का चयन करते हुए उनकी रचना करके उत्कृष्ट प्रदर्शन के लिए प्रसिद्ध है। एक ही क्षेत्र में होते हुए दोनों की पहचान उनकी गायकी के अंदाज से है। दोनों की एक साथ अंतिम प्रस्तुति इन्दौर में 3 सितम्बर 2011 को तालकटोरा में हुआ था फिर 21 सितम्बर 2011 को प्रेस कान्फ्रेन्स में साथ थे। सम्मुखानन्द हॉल में 23 सितम्बर 2011 को दोनों का कार्यक्रम होना निश्चित था लेकिन जगजीत सिंह की तबियत ठीक ना होने की वजह से यह कार्यक्रम गुलाम अली व हरिहरन के द्वारा प्रस्तुत किया गया। जगजीत सिंह की मृत्यु के बाद उनको श्रद्धान्जलि अर्पित करने के लिए गुलाम अली ने कई समारोहों में अपना अनूठा प्रदर्शन किया।

संदर्द्ध ग्रंथ सूची

1. रिज़वी आबिद- संकलनकर्ता, जगजीत सिंह की सुपरहिट गज़लें, प्रकाशक- राधा पॉकेट बुक्स, 33, हरी नगर, मेरठ-250002।
2. शर्मा डॉ अमिता, ईस्टर्न बुक लिंकनेस 3825, न्यू इन्द्रवाल, जवाहर नगर, प्रथम संस्करण-2000 दिल्ली।
3. भण्डारी डॉ प्रेम, हिन्दुस्तानी संगीत मं गज़ल गायकी, प्रकाशक- राधा पब्लिकेशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1992।
4. रायचौधुरी नुपुर, बीसवीं शताब्दी के महान संगीतज्ञ पं. दिलीपचन्द्र वेदी, प्रकाशक- कनिश्का पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली-110002, प्रं. संस्करण-2002।
5. गोस्वामी शैलेन्द्र कुमार, हिन्दुस्तानी संगीत के महान रचनाकार सदारंग अदारंग, प्रकाशक- कनिष्का पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली-110002, प्रं. संस्करण-2001।
6. शाह उदय, 'गज़ल के छन्द एवं ताल का महत्व' संगीत कला विहार, नवम्बर 2012।
7. संगीत कला विहार, अंक-4, अप्रैल 2013 से चयनित संदर्भ लेख।
8. संगीत कला विहार, अंक-6, जून 2005 से चयनित संदर्भ लेख।
9. शुक्ल प्रेम, 'जग जीत गए' उदीयमान संस्थान स्मारिका, नवम्बर 2011, इलाहाबाद।
10. SADHANA J & BHAWESH SETH, GHAZAL WIZARD GHULAM ALI, PUBLISHER- TIMES GROUP BOOKS, NEW DELHI.

सांगीतिक ग्रंथों की सम-सामयिकता

डॉ. विनय कुमार मिश्र

संगीत का प्रादुर्भाव सृष्टि रचना के साथ ही हो चुका था। आदिकालीन मानव और आदिकालीन संगीत कला दोनों एक दूसरे के पर्यायवाची है। वायु और अग्नि अर्थात् प्राण उष्णता का सम्पर्क जैसे ही स्थापित हुआ, सुमधुर स्वर-लहरियाँ गूंज उठी और इन स्वर लहरियों ने सकल ब्राह्मणों को मधुर ध्वनियों से झंझृत कर दिया। यही नदियाँ प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप वायुमण्डल में व्याप्त है।

किसी भी कला का स्वरूप-निर्धरण ऐतिहासिक प्रक्रिया के द्वारा ही संभव होता है। अन्य कलाओं की भाँति भारतीय संगीत का शास्त्रीय रूप भी शताब्दियों की साधना एवं सतत् प्रयोगशीलता की प्रतिपफल है शास्त्रीय संगीत क्रमब(नियम अनुशासन और व्याकरण ब(अभिव्यक्ति का विधिवत् विधान है। हमारे भारतीय संगीत की प्रवृत्ति भारतीय दर्शन की ऐसी स्त्रोत है जहाँ हम समूची भारतीय संस्कृति के प्राचीनतम गरिमामय इतिहास देख सकते हैं।

इसमें संदेह नहीं कि समूची भारतीय संगीत का मूल स्त्रोत वेद ही है। जहाँ आध्यात्मिक एवं रसात्मक भावना पल्लवित हुई है। ''भारतीय मनीवियों सनातन विधान के रूप में वेद को भगवान का निःश्वास कहा गया है।''[1]

संगीता का आधार ग्रंथ गान्धर्व वेद था जो आज उपलब्ध नहीं है। भरतमुनि प्रणीत नाश्वशास्त्र ही आज संगीत का प्राचीतम ग्रंथ है। भरत, दत्तिल, विशाखिल याष्टिक आदि सम्प्रदायों के मुख्य आचार हुए हैं। इनमें सम्प्रदाय भेद से कुछ न कुछ अन्तर अवश्य है। जैसे आज संगीत के घराने अलग-अलग हो गए है उसी प्रकर सम्प्रदायों में भी कुछ अंशों में भेद होता था। अभिनव गुप्त ने अनके स्थानों पर अपने सम्प्रदाय का उल्लेख किया है। यद्यपि बाद में संगीत शास्त्र के ग्रंथों में सम्प्रदाय का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त नहीं होता, 'संगीत रत्नाकर' एवं 'संगीत राज' जैसे विशिष्ट ग्रंथों की रचना ही इस तथ्य का प्रमाण है कि तब तक किन्हीं अंशों में संगीत शास्त्र के सम्प्रदाय विद्यमान थे। 19वीं शताब्दी के अन्त में संगीत का भी कोई शास्त्र होता है-इस पर विचार प्रायः समाप्त सा हो गया था। संगीत का क्रिया पक्ष तो संगीत जीवियों में सम्यकरूपेण चला आ रहा था किन्तु अब राजदरबारों के भंग हो जाने से संगीतज्ञ अपने उदरभरण हेतु ईधर-उधर भटक रहे थे। ऐसे में संगीतशास्त्र चिंतन धीरे-धीरे कम होता जा रहा था।

परन्तु हमारे भारतीय संगीत के जो मूलभूत ग्रंथ है वे आज भी वैसे मानक बन हुए हैं। नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरत को नाटक के क्षेत्र में हम भले भूल गए हों, शास्त्रीय नृत्य और शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में वे आज भी वैसे भी मानक बने हुए हैं, जैसे आज से दो हजार साल पहले रहे होंगे।

भरत का नाम हर कला-साधन की जबान पर मिलेगा। मंचीय और ललित कलाओं के समुच्चय पर भरत के नाट्यशास्त्र जैसी समग्र कृति संसार की किसी अन्य भाषा में शायद ही हो। 36 अध्यायों, 6000 श्लोकों तथा कुछ गद्यात्मक अनुच्छेदों के इस विशाल ग्रंथ ने दो सहस्त्राविदयों से अधिक समय में निरंतर प्रवाहित भारतीय कला-धारा के लिए अजस्त्र

स्त्रोत का काम किया है। इस सुदीर्घ कालखंड में भारतीय नृत्य, संगीत, नाटक, मूर्तिकला, चित्रकला और साहित्य तक में जो काम हुआ है, उसमें इस कालजयी कृति की अनुगूँज सर्वत्र विद्यमान है। ललित कलाओं के लिए भारत में भरत का स्थान पूर्वपुरूष-जैसा है। भरत नाट्यशास्त्र में नाटकों के प्रकार, उनके स्वरूप, उनकी कथावस्तु, कथावस्तु के विभिन्न अंग और चरण तथा उनके सृजन संबंध विधि-निषेध, नायक-भेद और उनके मानक, नायिका तथा अन्य पात्रों के मानक रंगमंच, नृत्य के प्रकार, उनकी तकनीक, उनके अंग संचालन की विस्तृत और सूक्ष्म विवेचना बारीक से बारीक भावों की अभिव्यक्ति के लिए विभिन्न आंगिक मुद्राएँ और अंगिमाएँ, भाव, विभाव, अनुभाव और संधारी, स्थायी भाव, रस की निष्पति, रस के प्रकार, उनके क्रम इनकी मूर्च्छनाएँ, उनके मिश्रण तथा प्रयोग के मानक, वाद्य और गायन की विधियाँ ऐसे अनगिनत विषयों का जिस समग्रता से विवेचन हुआ है, वह अरस्तु के नाट्यशास्त्रीय विमर्श को बहुत पीछे छोड़ जाता है।

भरत के नाट्यशास्त्र में प्रयुक्त 'नाट्य' शब्द का तात्पर्य आजकल साधारणतः नाटक से लिया जाता है। किंतु नाट धातु में व्यक्ष प्रत्यय से बने 'नाट्य' को मूल शाब्दिक अर्थ है नृत्य, दूसरा अर्थ है, कलात्मक अनुकरण, स्वॉग, हाव भाव-प्रदर्शन, अभिनय, वस्तुतः भारतीय परम्परा में अभिनय और नृत्य पृथक नहीं है, नृत्य भी मूलतः अभिनय है के साथ नृत्य की किसी भी प्रस्तुति में नृत्य के साथ भावानिभय प्रधान होता है और 'नृत्' के नाम से शु(नृत्य की प्रस्तुति प्रायः कार्यक्रम के अंत में बस उपसंहार के रूप में ही होती है, उसमें भी भावाभिनय विरोहित नहीं होता, बस वह गौण हो जाता है पारचात्य भाव बोधा में, जो अब यहाँ भी सामान्य हो गया है, नृत्य का मतलब नृत या अंग संचालन तक सिमटकर रह गया है, जो भरत मुनि के राम देश में विडंबना ही कहा जाएगा।

भरत में 'रस' को काव्य की आत्मा और नाट्य को जीवन की वह अनुकृति बताया है, जिनमें विभिन्न मानवीय भावों का संकीर्तन हो, जो लोक के सुख-दुःख की रसानुभूति कराकर मनोरंजन के माध्यम से दर्शक को प्रवीण बनाता है और सही अर्थ में प्रवीण होना ही 'रसिक' होना है। हमारे भारतीय सांगितिक ग्रंथों की ऐसी विशेषता रही जो क्रमवार रूप से अपनी वैशिक्यटता का मानक सिद्ध कर सम-सामयिक रही है।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में संगीत के दोनों पक्षों (प्रयोग और शास्त्र) के लिये पंडित दिगम्बर पुलुवकर एवं पंडित विष्णु नारायण भारतखंडे कर्णधर के रूप में सामने आए।

पं. भरतखंडे ने अपने जीवन काल में 6500 पृष्ठों का साहित्य प्रकाशित किया। कहा जाता है कि 2500 पृष्ठों के लगभग उनके शिष्यों के पास अब भी अमुद्रित रूप में पड़ा है। पंडित भारतखंडे संगीत शास्त्र चिन्तन के क्षेत्र में एक आधर स्तम्भ के रूप में स्थापित हुए जिसके पफलस्वरूप संगीत शास्त्र पर पुनः विचार आरम्भ हुआ। पं. भारतखंडे का उद्देश्य अन्य विषयों की भाँति संगीत को पाठशालाओं में लाकर चोग्घ शिला एवं शिक्षक तैयार करना था। इसलिए इसे व्यवस्थित, तर्कसंगत एवं ग्रंथानुसार बनाना आवश्यक था।

पंडित भारतखंडे के प्रयासों से संगीतशास्त्र की अस्व्यस्तता का सामान्यतः निवारण हो गया। उनके अथक प्रयत्नों से उत्तर भारत में एक व्यवस्थित एवं तर्क संगत प(ति स्थापित हुई। इनसे पूर्व उत्तर भारत में कोई व्यवस्थित प(ति नहीं थी अर्थात् संगीतशास्त्र सम्बन्धी मुख्य बिन्दुओं पर एक वाक्यता नहीं थी। भरतखंड जी की मुख्य दृष्टि स्वर एवं राग पर ही केन्द्रित थी। उसमें भी अनेक साहित्य का अधिकांश भाग रागों सम्बन्धी ही दिखलाई देता है। पं. भारतखंडे ने 'संगीत रत्नाकर' 'नाट्यशास्त्र' आदि ग्रंथों को अध्ययन करने की सलाह देते हुए लिखते हैं ''मेरी समझ से हिन्दुस्तानी मेरे द्वारा बताये गए इन सत्रह गंथों का भली प्रकार अध्ययन करें और उसके पश्चात् भरत शारंगदेव के ग्रंथों की ओर बढ़े। उन 17 ग्रंथों में वर्णित रागों को आज हम गा रहे हैं, यह बात तो नहीं, किन्तु उनकी सहायता से हमारे आज के संगीत पर उसके इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश पड़

सकता है। इन ग्रंथों में से प्रथम 12 ग्रंथ उत्तर भारतीय संगीत के लिये तथा शेष दक्षिणी के लिये उपयोगी है।''[3]

मनुष्य की यह अत्यन्त स्वाभाविक प्रवृति रही है कि वह अपने जीवन की गंभीर, करूण, मधुर सभी घटनाओं और अनुभूतियों को संजोकर रख लेना चाहता है, क्योंकि अभिव्यक्ति उसे मन की सहण लालसा है, साहित्य, अध्यात्म और कला के ग्रंथ मनुष्य की इसी अभिव्यक्ति का प्रत्यक्ष प्रतिफलन है, इतिहास ग्रंथ युगीन घटनाओं और उनके प्रभावों का ही संकल्प है, जिनसे तद्युगीन परिवेश का परिचर प्राप्त होता है, जीवन का रहस्य और गंभीरतय ज्ञान अनूठे उपनिषदों में सूत्रात्मक संक्षिप्त शैली में संगृहीत है। इतिहास और काव्य का अद्भूत मिश्रण है पुराण ग्रंथ, गणित, ज्योतिष, चिकित्सा, राजनीति, व्याकरण, विज्ञान आदि कुछ ग्रंथों में अक्षुण्ण रूप से संगृहित है।

संदर्भ :

1. भारतीय संगीत शास्त्र : तुलसीदास देवांगन पृष्ठ-20 (I शतपथ ब्राह्मण 224, II वृददारण्योकपनिषद)
2. संस्कृत-हिन्दी कोण, वामन शिवराम आप्टे
3. भारतखंडे संगीतशास्त्र, 41 पृ.-722-723

नहीं रहे सुरों के साधक

पं. विजयशंकर मिश्र

वह 25 अप्रैल, 2021 की शाम थी जब जंगल के भीषण आग की तरह लपलपाती हुई एक खबर लोगों के दिलों को झुलसाती चली गई—'प्रतिष्ठित शास्त्रीय गायक पद्मभूषण पं. राजन मिश्र नहीं रहे।' सुनकर दिल दहल गया। नेपाल के प्रसिद्ध संगीतकर पं. झूमक लाल मिश्र की दो बेटियाँ थीं। दोनों का विवाह बनारस के कबीर चौरा के दो प्रतिष्ठित संगीतकारों के परिवार में हुआ था— एक का राजनजी के पिता प्रसिद्ध सारंगीवादक पं. हनुमान प्रसाद मिश्र से और दूसरी का मेरे पिता प्रतिष्ठित तावलिक पं. गामा महाराज से।

बनारस के कबीर चौरा की जिन सँकरी गलियों में 1951 में राजनजी का जन्म हुआ था, उन सँकरी गलियों में आकाश की बुलंदी को चुनौती देने वाले अनेक महान कलाकारों का स्थाई निवास था। पं. राम सहाय, प्रतापजी, पं. दरगाही मिश्र, पं. बड़े रामदासजी, पं. कंठे महाराज और पं. सुखदेव महाराज जैसे महान् संगीतकारों ने इन्हीं गलियों में संगीत की साधना करके उसे संगीत के विश्वाकाश में स्थापित किया था। और, इन्हीं गलियों में पं. राजन मिश्र का बचपन बीता था। संगीत उन्हें विरासत में मिला था। उनके पिता पं. हनुमान प्रसाद मिश्र, पितामह पं. सुर सहाय मिश्र, प्रपितामह पं. गणेश मिश्र और उनके पिता पं. राम बख़्श मिश्र सभी महान सारंगी वादक थे लेकिन राजन ने जब संगीत के क्षेत्र में पदार्पण किया, वह सांगीतिक बदलाव का समय था। सारंगी का दौर समाप्त होता हुआ दिख रहा था। प्रसिद्ध सारंगी वादकों के पुत्र उस्ताद अमीर ख़ाँ और उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ गायन के क्षेत्र में प्रसिद्ध हो चुके थे। इसे देखकर पं. हनुमान प्रसाद मिश्र ने अपने बड़े पुत्र राजन को गायन और छोटे पुत्र साजन को सारंगी के क्षेत्र में ठहारने का निर्णय लिया। उनके छोटे भाई प्रसिद्ध सारंगी वादक पं. गोपाल मिश्र ने भी उनका समर्थन किया लेकिन चूँकि अच्छी सारंगी बजाने के लिए गायन का ज्ञान आवश्यक होता है, अतः साजन को भी गायन की शिक्षा दी जाने लगी और फिर साजन भी लक्ष्मण की तरह बड़े भाई राजन की अँगुली पकड़े उनके साथ-साथ सुरों की पगडंडियों पर निकल पड़े...उनके सुर में अपना सुर मिलाते हुए, उनकी आवाज़ मिलाते हुए. ..दो जिस्म एक जान की तरह...

पं. राजन मिश्र की आरंभिक संगीत शिक्षा उनके दादा गुरु पं. बड़े रामदासजी से हुई थी, जिनसे उनके पिता पं. हनुमान प्रसाद मिश्र और चाचा पं. गोपाल प्रसाद मिश्र ने भी सीखा था लेकिन, राजनजी जब मात्र 9 वर्ष थे तभी 1960 में पं. बड़े रामदासजी की मृत्यु हो गई थी। दोनों भाइयों ने आगे की शिक्षा अपने पिता पं. हनुमान प्रसाद मिश्र और चाचा पं. गोपाल प्रसाद मिश्र से प्राप्त की। इस भूमिका का तात्पर्य यह स्थापित करना है कि पं. राजन मिश्र ने अपना गाना खुद बनाया और खुद गाया। उनके पिता और चाचा ने उन्हें रागों की जानकारी दी, बंदिशों का ज्ञान दिया, लेकिन उन्हें गले से कैसे निकालना है, इसका सुचिंतित निर्णय स्वयं राजनजी ने लिया। राजनजी पढ़े-लिखे थे, प्रगतिशील विचारधारा के समर्थक थे। परंपराओं पर पूरी आस्था रखने के

बावजूद जर्जर और निरर्थक रूढ़ियों को नकारने की हिम्मत रखने वाले थे, इसलिए उनके भावपूर्ण संगीत में नवाचार, नवीन परंपराओं का सूत्रपात देखा जा सकता है।

पं. राजन मिश्र पहले शास्त्रीय गायक थे जिन्होंने अपने गायन में रागों और स्वरों के साथ-साथ शब्दों की भूमिका को भी रेखांकित किया जबकि, वो जिन महान् गायकों को सुनते और सुनते हुए बड़े हो रहे थे वहाँ सिर्फ़ सुरों का एकछत्र साम्राज्य था। उन गायकों का कहना था कि शब्दों का महत्व सुगम संगीत में होता है, शास्त्रीय संगीत में नहीं लेकिन राजनजी ने शब्दों की सत्ता को स्वीकारा, गायन में सार्थक पदों के महत्व को माना, साहित्य की उपयोगिता से सहमति व्यक्त की...और सिर्फ़ इतना ही नहीं... उन्हें एक प्रकार की नाटकीयता से भी जोड़ा। उदाहरण के लिए जब ये 'बादर गरज नभ घोर शोर अति करते है' को गाते थे तब गमक के द्वारा गरज-नभ-घोर-शोर आदि शब्दों को एक अतिरिक्त गंभीरता से जोड़ते थे, इसी प्रकार 'बिहुला बाजे छुम छन-नन-नन' को गाते समय काकु-भेद के प्रयोग द्वारा किसी नई-नवेली दुल्हन के पायल की आवाज़ को चिह्नित करने का सफल प्रयास करते थे। गोस्वामी तुलसीदास कृत भजन 'जननी मैं न जिऊँ बिन राम' को जिस मार्मिक और करुणा भाव से वे प्रस्तुत करते थे, उसे सुनकर लोगों की आखें नम हो जाती थीं। 'हे शिवशंकर हे करुणाकर' को उनकी वाणी कुछ इस तरह निनादित करती थी कि शंकर अनेक रूपों में श्रोताओं, दर्शकों के सम्मुख उपस्थित हो जाते थे। एक घटना याद आ रही है। पं. राजन-साजन मिश्र वृंदावन के स्वामी हरिदास संगीत समारोह में गा रहे थे। उनके गायन का समापन होने पर मैं उनसे जाकर मिला और उनके एक तान की विशेष रूप से प्रशंसा की, कई और प्रशंसक भी वहाँ खड़े थे। ये कुछ बोले नहीं, बस, हँसकर मेरा हाथ दबा दिया उन्होंने लेकिन, भीड़ थोड़ी कम होने पर मेरे कान में धीरे-से बोले, ''वह तंत्रकारी अंग का तान था। उस्ताद विलायत ख़ाँ उस अंग का तान बजाते हुए अपनी तीनों अँगुलियों का प्रयोग करते थे।'' यह सुनकर मैंने चौंककर उनकी ओर देखा और वे एक बार फिर मुस्कुरा दिए...एक रहस्यमयी मुस्कान।

बनारस में संगीत की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। इतिहास गवाह है कि बौद्ध काल में भी यहाँ संगीत की समृद्ध धारा प्रवाहित हो रही थी फिर, सोलहवीं शताब्दी में स्वामी हरिदासजी के गुरु स्वामी हित हरिवंशजी महाराज के माध्यम से 'मिश्र बिरादरी' में भी संगीत की अविरल धारा बहने लगी, जो अभी भी बह रही है। फिर भी कुछ कतिपय संगीत लेखकों द्वारा काशी या बनारस की संगीत परंपरा का अनुल्लेख जान-बूझकर किया जाता रहा। काशी के संगीतकारों ने भी इस ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया और प्रायः अपने गाने-बजाने में ही व्यस्त और मस्त रहे लेकिन, बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में तीन कलाकारों—पं. किशन महाराज, पं. रंगनाथ मिश्र और पं. राजन मिश्र ने इस विषय पर खुलकर बोलना शुरू किया। राजनजी ने तो इसके लिए कड़ा संघर्ष भी किया। जब उन्होंने देखा कि अन्य घरानों के संगीतकारों द्वारा बनारस को छोटी चीज़-ठुमरी, दादरा मात्र का घराना कहकर इसकी गरिमा को नकारने की साज़िशें हो रही हैं तो उन्होंने संकल्प ले लिया कि जब तक बनारस की ख़्याल गायकी को पूरे भारत में मान्यता नहीं दिला दूँगा, तब तक अपने किसी भी कार्यक्रम में ठुमरी-दादरा नहीं गाऊँगा। यह बहुत कठोर संकल्प था, लेकिन तीन दशक से अधिक समय तक उन्होंने इसे निभाया और जब तक पूरी दुनिया में उन्होंने बनारस घराने को मान्यता नहीं दिला दी तब तक ठुमरी-दादरा गायन की ओर मुड़कर भी नहीं देखा। वे कहते भी थे कि, ''अब जब हर ओर बनारस की ख़्याल गायकी को मान्यता मिल गई, इसका डंका बजने लगा है तो मैं ठुमरी और दादरा आदि भी गाने लगा हूँ लेकिन बनारस की ख़्याल गायकी को स्थापित करने के बाद।'' भारत की कोई भी दिशा-पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण-कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है, जहाँ उनके शिष्य न हों, वेसे तो दुनियाभर में फैले हुए है उनके शिष्य।

भारत में युगल गायन की परंपरा काफ़ी पुरानी है लेकिन पं. राजन-साजन मिश्र ने अपने सुविचारित

गायन के माध्यम से एक बिल्कुल नया आकर्षण प्रदान किया, जिसका अनुकरण उनकी बाद की पीढ़ी के कलाकारों ने किया। इन दोनों भाइयों ने 'जुगलबंदी' को 'युगल गायन' का रूप देते हुए गायन में प्रतिद्वंद्विता की भावना को समाप्त करते हुए सहयोग, सामंजस्य और तालमेल पर बल दिया। एक गायक जहाँ छोड़े दूसरा उसके आगे की स्वर मात्रा आरंभ करे और हर गायक डेढ़ से दो मिनट के अंतराल के बाद गायन का सिरा दूसरे भाई को थमा दे, इससे श्रोता-दर्शकों को एकरसता का बोध नहीं हो पाता है और गायन का आकर्षण शुरू से अंत तक बना रहता था। वैसे भी राजनजी को श्रोताओं-दर्शकों के मन को भाँपने में कमाल की महारत हासिल थी। मैं उनके दर्जनों ऐसे कार्यक्रमों का गवाह हूँ जिनमें उन्होंने अँधेरे में डूबे सभागारों की बत्तियाँ यह कहते हुए जलवा दी थीं कि, ''मैं देखूँ तो आज हमें सुनने के लिए कौन-कौन लोग आए हैं? तभी तो गाऊँगा।''

पं. राजन मिश्र से मेरे नज़दीकी और आत्मीय संबंध थे। रोज़ हमारी बातें भले ही न होती हों, लेकिन जब होनी होता थी तो निर्बाध हो जाती थी। सूचना और प्रसारण मंत्रालय के प्रकाशन विभाग से मेरी पुस्तक 'मनके : भाव सुर लय के' प्रकाशित हो रही थी। मुझसे कहा गया कि आप चाहें तो किसी से भूमिका लिखवा लीजिए। मैंने राजनजी को फ़ोन मिलाया, उन्होंने सहर्ष सहमति दे दी। दो-तीन दिन बाद मैंने उन्हें पुस्तक की पांडुलिपि पहुँचा दी और अगले सप्ताह दोनों भाइयों ने भूमिका लिख दी। नवंबर 2011 के पुस्तक मेले में इसका लोकार्पण होना था। मैंने सोचा कि अगर भूमिका राजनजी ने लिखी है तो लोकार्पण के लिए भी क्यों न उन्हें ही आमंत्रित किया जाए। मैंने उन्हें फ़ोन मिलाया, लेकिन उन्होंने फ़ोन नहीं उठाया। दो मिनट बाद ही एक-दूसरे नंबर से उनका फ़ोन आ गया। पता चला कि वे विदेश में है लेकिन लोकर्पण के तीन-चार दिन पहले भारत आ जाएँगे। सारी बातें तय हो गई। राजनजी भारत आ गए, लेकिन उनकी आँखों में कुछ परेशानी थी जिसकी वजह से उन्हें तेज़ बुख़ार था। लोकार्पण के लिए प्रख्यात संतूर वादक पं. भजन सोपोरी एवं पं. सुरिंदर सिंह भी आने वाले थे। अपनी अस्वस्थता के बावजूद पं. राजन मिश्र अपने अनुज पं. साजन मिश्र के साथ आ गए। उनके जैसा बड़ा आदमी और विशाल हृदय वाला कलाकार ही भरी सभा में यह कह सकने का साहस कर सकता था—''विजयशंकर मिश्र उस में मुझसे छोटे हैं लेकिन, इस पुस्तक को लिखकर इन्होंने जो बड़ा काम किया है। उनके लिए मैं इन्हें प्रणाम करता हूँ।''

केंद्रीय संगीत नाटक अकादेमी सम्मान और पद्मभूषण के अलंकरण सहित देशभर के अनेकानेक सम्मानों से विभूषित बनारस घराने के महान् गायक पं. राजन मिश्र कोरोना की विश्वव्यापी बीमारी से लड़ते हुए 25 अप्रैल 2021 की शाम नाद ब्रह्म में लीन हो गए लेकिन, ऐसे कलाकार कभी भी मरते नहीं हैं, अमर होते हैं और पं. राजन मिश्र भी अपने दिव्य संगीत के साथ अमर हैं।

पूर्वाञ्चल लोक कलाओं में सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना का प्रतिबिम्ब

डॉ. सुरेंद्र कुमार

सहायक आचार्य (गायन) संगीत विभाग, सिक्किम केंद्रीय विश्वविद्यालय, गंगटोक

पूर्वाञ्चल की सांस्कृतिक, सामाजिक जनजीवन यहाँ की चेतना का प्रतिबिंब है। जनसाधारण की अनुभूतियाँ प्रवृति एवं आकांक्षाओं का सजीव चित्रण यहाँ की कलाओं में प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है। इस प्रदेश की सभी अवस्थाएँ इन लोक कलाओं में अभिव्यक्त होती है। इनके रचयिता का मुख्य उद्देश्य होता है, जनता का मनोरंजन और यहाँ की समकालीन समस्याओं जैसे–परिवार नियोजन, दहेज-प्रथा, नशा-उन्मूलन, विधवा-विवाह, कन्या भ्रूण हत्या, राम के आदर्शों आदि की ओर ध्यान आकर्षित करना होता है। इसके साथ ही लोक धर्म, परंपरागत मान्यताएँ, सामाजिक रूढ़ियाँ, ग्रामीण-बोलियाँ आदि इन सभी पहलुओं का यथार्थ परिचय इनमें अनायास ही मिल जाता है।[1] हमारे शास्त्रों में काव्य का मुख्य उद्देश्य होता है समाज के हृदय की रसानुभूति कराना जो रस निष्पति का लोकप्रिय साधन है, हमारी ''लोककलाएँ''। यहाँ लोकरंजन के साथ-साथ लोगों में मधुर उपदेश देना भी इनका मुख्य उद्देश्य होता है। सामाजिक सुधार एवं मनोरंजन के साथ-साथ यह प्रचार के भी बहुत बड़े साधन रहे हैं। सामाजिक कुरूतियों एवं भ्रष्टाचार पर कटाक्ष के साथ-साथ यहाँ के कलाकार अपने काला के माध्यम से कुछ ऐसी बात कह जाते हैं जिन्हें कि ग्रामीण जनता सामान्य जीवन में सुनने में रूचि नहीं रखती, कारण इस भोजपुरी भाषी क्षेत्र के लोग अधिकांश गाँवों में निवास करते हैं और अधिकतर अशिक्षित भी हैं अतः वहाँ अचानक सुधार लाना इतना आसान प्रतीत नहीं होता, लेकिन जिस बात को समाज सेवक तथा बड़े-बड़े पदाधिकारी भी इन्हें समझा नहीं पाते तो इन लोककलाओं के द्वारा संगीत, गायन, वादन, नृत्य कलाओं ने बड़े रूचिकर एवं मनोरंजनात्मक ढंग से समाज के लोगों को बता देते हैं और ग्रामीण लोग इन कलाओं के द्वारा उसका अनुसरण भी कर लेते हैं क्योंकि ग्रामीण जनता किसी का भाषा सुनने एकत्रित हो या न हो पर विभिन्न लोककला देखने और सुनने के लिए सारा गाँव उमड़ पड़ता है।[2] साथ ही आस-पास के लोग झुंड बनाकर इसका आनंद लेने के लिए एकत्रित हो जाते हैं और सारी रात उसी के रस में डुबे रहते हैं। इस कला से कलाकार समयानुसार प्रसंग बनाकर शिक्षा के रूप में हर बात ऐसे मनोरंजन एवं रोचक ढंग से कह जाते हैं जैसे कि यह सभी बातें हम सभी के साथ वर्तमान में गुजर रहा है। कलाकार अपनी ऐसी प्रस्तुति देते हैं कि जो यह संदेश या शिक्षा ग्रामीणों के मस्तिष्क एवं हृदय पर अमिट छाप छोड़ देती है, और ग्रामीण जनता इन बातों को आसानी से मान भी लेती हैं, तो इस समाज में जितनी भी सामाजिक कुरीतियाँ हैं उन्हें ग्रामीण लोगों से दूर करने का एक मात्र साधन यहाँ की 'लोककलाएँ' ही एक सबल माध्यम प्रतीत होता है।[3]

साथ ही यहाँ के रंगमच पर प्रेम, आर्थिक संकट, अधिकारियों की उच्छृंखलता, वीरों का शौर्य, साहसियों के साथ साहस, धार्मिकों की तपस्या, ढोंगियों का आडंबर एवं नवीन सभ्यता की 'त्रुटियों'

को लोकविधाओं ने अपनी कथा का विषय-वस्तु बनाया है। इस पूर्वञ्चल क्षेत्र में लोकनाट्य के रचयिता नाट्यशास्त्र के विधि-विधानों के विशेष नियमों के बंधनों से मुक्त होकर लोक जीवन रूपी कार्यशाला में प्रयोग के रूप में समाज का यथार्थ चित्रण इन नाट्यों में प्रदर्शित करते हैं। इस प्रदेश का लोक नाट्य एक ऐसी कला के रूप में दिखाई पड़ता है, जहाँ सभी वर्ग के व्यक्ति भेद-भाव रहित होकर मंचन करते हे और देखते भी हैं यह एक ऐसा सशक्त माध्यम है जो समाज की विभिन्न जातियों में एकता स्थपित करने की शक्ति रखता है। लोकनाट्य से मनोरंजन तो होता ही है किंतु साथ-साथ ही इनसे समाज में शिक्षा भी मिलती है और हृदय की उदारता का भी विकास होता है। हमें जैसे ही यहाँ मनोरंजन का अवसर मिलता है लोकबुद्धि अनुकरणात्मक प्रवृत्तियों के मनोनुकूल साधन ढूँढ लेती है। गाँव के प्रतिभाशाली बालक एवं युवकों में कभी-कभी मौलिक घटना से संबंध प्रहसन उतारने की होड़ सी लगी रहती है, इनकी चिर नवीनता ही इनकी लोकप्रियता का मुख्य आकर्षण होता है जो दर्शकों में गुदगुदी पैदा कर मन की ग्रंथियों को खोल देता है।[4] इस प्रदेश के लोकरंगमंच पर संगीत के गायन, वादन, नृत्य और संवादों चारों को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है, इनके सम्मिश्रण से ही मनोरंजन और शिक्षा मिलती है इसमें संगीत की उपस्थिति ही लोगों को आकर्षित कर लेता है। यहाँ रामलीला नाट्य के माध्यम से हमारे समाज में यह संदेश दिया जाता है कि हमें मर्यादा पुरुषोतम राम के गुणों का अनुसरण करना चाहिए और इसके माध्यम से इस समाज में दिखाई देता है कि आदर्श बेटे को कैसा होना चाहिए, लक्ष्मण, भरत, शत्रुधन आदि पात्रों के अभिनय के भाई के संबंधों की विशिष्टता दिखाई पड़ती है और दर्शक अपने जीवन में इसे अनुसरण कर अपनाते भी हैं। यहाँ के लोकनाट्य में नारी-जीवन, नारी की सामाजिक स्थिति, नारी-मनोविज्ञान और नारी की तत्कालीन समस्याओं को सूक्ष्मता से नाट्य के माध्यम से समाज में पहुँचाया जाता है, संयुक्त परिवार को तोड़ने में कुटनी जैसी नारियों को नाट्य के माध्यम से घृणास्पद ढंग से प्रस्तुत कर इस सांस्कृतिक दुःचक्र से बचाने की प्रेरणा दी जाती है ताकि समाज को सीख मिले।'' इस संस्कृति में दलित वर्ग लोग भी अधिक है, जो अशिक्षित और उपेक्षित दिखाई पड़ते थे पर आज लोककथाओं के माध्यम से दलितों की सामाजिक, आर्थिक समस्याओं को उजागर कर इसके रचयिताओं ने चेतना भरने का काम किया, जिससे उन्हें पता चले कि वे अपनी स्थिति से निजात कैसे पा सकते हैं। बाल-विवाह, अनमेल-विवाह, बहुविवाह, धन के लिए बेटियों को बेचने का अपराध, संपत्ति के कारण संयुक्त परिवार का विघटन, बहुविवाह, दुश्चरित्रता, अपराध नशाखोरी, चोरी, जुआ खेलना आदि कुप्रवृतियाँ दलितों में व्याप्त थी, जिससे सामाजिक जीवन दुःखमय व्यतीत होता था। इन कलाओं के माध्यम से यहाँ के लोगों ने इन कुरूतियों को त्याग करना शुरू किया जो इन लोककलाओं की अप्रतिम सफलता मानी जाएगी।

गीत-

यह उधो जाके श्याम सुंदर के शाम कहिह।
हो निंदिया उनके खातिर भइलबा हराम कहीह।।

इससे जहाँ इस भूभाग के लोग अपने लोकजीवन को अपने धर्म के प्रति आस्थावान बनाया था। यहीं ये लोकथाएँ अपनी परंपराओं को भी पोषित किया है। कृष्णलीला से जुड़े समस्त चरित्रों को दुबों का निवारण करने वाला स्वीकार किया गया है, लोक मानस का अटूट विश्वास है कि धर्म एवं सदाचार की हमेशा ही विजय होती है इसलिए वह आज भी सच्चाई के मार्ग पर चलने की प्रेरणा इन लोक कलाओं से प्राप्त करता है। इन नाट्यों के माध्यम से प्राचीन समय से प्रचलित सभी सामाजिक, जातिगत, संस्कृति विशेषताओं को जाना जा सकता है। चोर, डाकू, ढोंगी, पाखंडी लोभी, लालची, बेईमान तथा दुराचारी व्यक्तियों की खबर बिना किसी भय एवं संकोच के इन नाट्यों और गीतों में प्रस्तुत की जाती है जो इससे संबंधित लोगों पर सीधे शब्दों से प्रहार कर इन्हें सुधार के लिए संदेश वदिया जाता है। इसके साथ ही सदाचारी, समाज सेवक, स्वामीभक्त

लोगों को एक आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया जाता है ताकि लोगों के अंदर उनकी तरह विशेषताएँ अर्जित कर समाज को अच्छा आदर्श बनने की प्रेरणा प्राप्त हो सके। यह भी कटु सत्य है कि यहाँ की सामाजिक बुराई में जातिगत द्वेष में समय के साथ इनमें भी परिवर्तन आया, जो पहले से सुदृढ़ दिखाई दे रहे है।'' आज के समाज में सेवक को हीन दृष्टि से देखा जाता है, लेकिन हमारे भारतीय संस्कृति की विशेषता है जो सेवक को पूजनीय बनाती है यह हमें लोकगाथाओं के कुछ कथाओं से परिलक्षित होता है। इनमें मनोरंजन के साथ-साथ ग्रामीण जनता में शिक्षा प्रसार का भी सबल माध्यम होते हैं। इस प्रदेश में सभी प्रचलित कलाओं में पौराणिक, धार्मिक आख्यानों से सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि लोकविधाओं के संगीतमय संवादों में सत्यधर्म के पालन हेतु त्याग, कर्मगति की अनिवार्यता, पतिव्रत धर्म निर्वाह हेतु त्याग, पति-पत्नी, पिता-पुत्र, माता-पिता का पारिवारिक होना आदि का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य इनमें निहित रहता है संचित रहता है। यहाँ दुखियों के दुःख दूर करने वाले महापुरुष अपने अलौकिक कृत्यों द्वारा जनमानस में पूजनीय मानें जाते हैं।[6]

यहाँ की वीरगाथाओं में आन-मान और शान पर मर मिटने वाले वीरों द्वारा स्वदेश प्रेम की शिक्षा भी मिलती है। धन कुबेरों से धन लेकर गरीबों में बाँट देने की नीतियाँ भी यहाँ की वीरगाथाओं में देखी जाती है। प्रेम-पीर को मंदाकिनी में बहने वाले प्रेमी पात्र एक-दूसरे को प्राप्त करने के लिए प्रेमपथ में आने वाली अनेकानेक बाधाओं को पार करके भी प्रेमी को पाने में सफल हो जाते हैं और आदर्श प्रेम पराकाष्ठा का संदेश भी इनके माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। जनसाधारण में किसी भी बातों के प्रचार एवं प्रसार के लिए आजकल सरकार भी लोककलाओं के माध्यम से अपनी बात लोगों तक अभिव्यक्त कर देती है, जैसे—परिवार नियोजन, बालविवाह तथा दजेज प्रथा का विरोध, सरकार द्वारा बेरोजगारों को ऋण देने की नीति द्वारा बेरोजगारी की समस्या का समाधान आदि का प्रचार इनके माध्यम से बड़ी आसानी से लोगों के बीच प्रचारित कर दिया जाता है, यहाँ के दहेज प्रथा संबंधी नाटकों और गीतों के द्वारा शादी के समय दहेज प्रथा की बुराइयों को भी उजागर किया जाता है।

गीत-

देली ली दरोगा बाबू अंगना में जाइके।
बेटी कइसे मारल वाली फंसरी लगाइके।।

इन गीतों के माध्यम से यह बताया जाता है कि अगर दहेज लेने वाला या कन्या को प्रताड़ित करने वालों को शिकायत पर दोषी लोगों को सजा भी दिलायी जाएगी, जिससे समाज के अंदर एक जागरूकता का संदेश जाता हैं। शादी के बाद कोई कन्या दुःखी कोई विधवा, किसी का पति शराबी, तो कोई जुआरी, किसी के ससुराल वाले दहेज कम मिलने पर नाराज इस प्रकार इनमें सभी प्रकार के सामाजिक कुरीतियों से अवगत कराया जाता है और कलाकार दर्शकों के तरफ इशारा करते हुए कहते हैं— हे भाईयों, तुम भी इस प्रकार के अनमोल विवाह मत करना जिससे आपके धर की लड़कियाँ दुःखी रहे और बाल विवाह मत करना जिससे आपकी बेटियाँ नरक की जिंदगी जिये। क्योंकि बेटी दुःखी रहेगी तो माँ-बाप दुःखी रहेगे। और बेटी सुखी रहेगी तो माँ-बाप भी सुखी रहेंगे। कलाकार यह भी कहते हैं कि दहेज के लोभी माँ-बाप के बेटे को कभी अपनी कन्या मत ब्याहना वरना बेटी जीवन भर दुःख ही पाएगी। शराबी तथा जुआरी को भी अपनी कन्या मत ब्याहना नहीं तो वह कन्या जिंदगी भर रोती ही रहेगी, जो माँ-बाप के लिए असहनीय होगा, फिर यह भी शिक्षा देते हैं कि संतान कम से कम पैदा करें, यदि परिवार का कल्याण अथवा भलाई चाहते हो तो अधिक संतानों की समस्या से बचना होगा जिसका समाधान परिवार नियोजन है।[7] जिससे अधिक संतान उत्पत्ति से पारिवारिक परेशानियाँ अधिक और आर्थिक साधनों की कमी रहती है जिससे यहाँ की गरीब जनता को कई कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। यह शिक्षा हमें इनके माध्यम से दी जाती है।

भाषा शास्त्र की दृष्टि से यहाँ गीतों का महत्व बहुत अधिक है क्योंकि इन प्रदेशों में प्रचलित या लिखित साहित्य का उदाहरण केवल इन गीतों में ही हमें मिलता है। वैसे भोजपुरी बोली का लिखित साहित्य नहीं के बराबर है पर इस बोली का यदि कोई विशेष अध्ययन करना चाहे तो यह लोकनाट्य में प्रयुक्त गीतों से उसे अध्ययन हेतु आधार शिलाएँ प्राप्त हो जाएगी। कृषि तथा पशुपालन संबंधी अनेक जानकारी हमें इन भोजपुरी गीतों के माध्यम से प्राप्त हो जाती हैं। जिससे हमें यह ज्ञात हो जाता है कि परंपरा से चल रहे हमारे रीति-रिवाज कितने समृद्ध है।[8] भौगोलिक ज्ञान की दृष्टि से भी इन गीतों को सुनने से हमें पता चलता है कि किस गाँव या इस प्रदेश के शहर में कौन-कौन सी विशिष्ट वस्तु-पदार्थ होती थी या बनती थी। गीतों में 'गहमर' का पान, मिर्जापुर का पत्थर, पटने की झुल तथा गोरखपुर के हाथियों को महत्त्वपूर्ण बताया गया है। आज भी मगहिया पान का नाम हर व्यक्ति के जुबान पर विद्यमान रहता है तथा मिर्जापुर का पत्थर बड़ा ही मजबूत और टिकाऊ माना जाता है। जिससे भोजपुरी प्रदेश में प्रादेशिक भौगोलिक जानकारी हमें इन लोकविधाओं में गीतों के माध्यम से दर्शकों को संदेश दिया जाता है कि यह मशहूर सामग्रियाँ यहाँ से हमें लाना चाहिए या लेना चाहिए। ऐतिहासिक दृष्टि से यहाँ इन गीतों का विशेष महत्व है। मुगलों के अत्याचार तथा उनकी परस्त्री कामुकता का वर्णन से पता चलता है कि उनके शासन काल में सभी को दिन में रात सी अनुभूति होती थी। उस समय किसी की भी बहू-बेटियाँ सुरक्षित नहीं थी। इन मुगलों के खिलाफ इस प्रदेश के वीर योद्धा 'वीर कुंअर सिंह' की लड़ाई का वर्णन भी मिलता है जिससे यहाँ की सच्ची घटनाओं की शिक्षा हमें प्राप्त होती है।[9]

गीत-

हमार धरती ह वीरवन के खान भाई जी।
यहवा केतनन ले भाईले महान भाईजी।।

पूर्वाञ्चल में सामाजिक दृष्टि से भी इन गीतों को उपयोगी माना जाता है जिससे सामाजिक उत्सवों जैसे– जनेऊ, विवाह, गौना और विदाई के साथ-साथ सभी संस्कारों से संबंध रखने वाली बहुत सी बातों का वर्णन इनमें पाया जाता है। दहेज प्रथा का मार्मिक चित्रण, ननद तथा भौजाई का शाश्वत विरोध और झगड़ा, सास तथा बहू की दैनिक कलह, परदे की प्रथा का अभाव, विधवा स्त्री की दयनीय दशा, पुत्री के जन्म की निंदा तथा उसके साथ कटु व्यवहार आदि विषयों की झांकिया इन गीतों में उपलब्ध होती है और इन्हें बताने के साथ-साथ लोगों को यह संदेश भी देती है कि आप अनैतिक कमों को छोड़ नैतिक कर्मों पर ध्यान दे जिससे समाज सुधरे और हम भारत के अच्छे नागरिक होने के कर्तव्य को पूरा कर सके। इन ग्रामीण गीतों में भोजपुरी समाज का बड़ा ही सजीव चित्रण प्रस्तुत किया जाता है जो ग्रामीण जनता आत्मसात कर बुराईयों को दूर करने की ठान लेती हैं।[10] सांस्कृतिक धरोहर के रूप यह लोकगीत बड़े महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। भोजपुरी गीतों में संस्कृति जैसे–स्त्रियों का चरित्र बड़ा ही उदप्त, शुद्ध तथा पवित्र दिखाया जाता है। स्त्री एक पवित्रता, सती, साध्वी के रूप में चित्रित की जाती है जब एक देवर अपनी भाभी से अनुचित व्यवहार करता है तो वह कहती है कि मैं तुम्हारे कुत्सित आचरण के कारण तुम्हारी दोनों बाँहों को काट दूँगी। इन सभी गीतों के माध्यम से यह संदेश दिया जाता है कि हम सभी को समाज में स्त्रियों को अच्छी नजर से देखना चाहिए और इनका सम्मान हम करेंगे तभी हमारा समाज उन्नति की तरफ अग्रसर होगा। इस प्रकार यह सभी लोक गीत, लोक नाट्य के माध्यम सवे समाज में जागृति लाने के सबल माध्यम रहे हैं और इनमें सफलता भी मिली है। यह लोककला जनता में प्रचार एवं प्रसार का मुख्य साधन रहे हैं। भोजपुरी समाज एवं संस्कृति में बहुत परिवर्तन हुए है पर अपनी प्राचीनता को अपनाते हुए पूर्वाचल के सभी लोक दलों में सभी प्रकार के ऊँच-नीच जातियों के व्यक्ति एक होकर, सफल प्रदर्शन द्वारा सवमाज का स्वस्थ मनोरंजन एवं शिक्षा प्रसार करते हैं। लोकनाट्यों द्वारा समाज में पनपने वाली कुरीतियों एवं विकृतियों को कटाक्ष कर दूर

किया जाता है। इस संस्कृति में व्याप्त कुरीतियों, पनपने वाले भ्रष्टाचारों का पर्दाफाश कर उन्हें दंडित करने का भय समाज को दिखाकर अनेकानेक विकृतियों को दूर करने में भोजपुरी लोकनाट्यों का बहुत ही महत्त्वपूर्ण हाथ होता है।[11]

अतः इस प्रकार से हम यह कह सकते हैं की पूर्वाञ्चल के भोजपुरी लोकविधाएँ सामाजिक कुरीतियों, संस्कृति के उत्थान में अवरोधकों की ग्रामीण जनता में से दूर करने का लोककलाएँ एक सबल माध्यम दिखाई पड़ता है। साथ ही यहाँ यह भी आभास होता है की इनके विकास और आधुनिकीकरण की ओर सरकार और समाज के बुद्धिजीवी वर्ग के लोगों को इसपर अत्यंत तन्मयता से ध्यान देने की विशेष आवश्यकता दिखाई पड़ती है।

संदर्भ सूची-

1. लोकनाट्यों में संगीत, डॉ. ज्ञानवती वेद मेहता, पृ. -208
2. हमारी नाट्य परंपरा, डॉ. श्रीकृष्णदास, पृ.-48
3. भारतीय संगीत का इतिहास, उमेश जोशी, पृ.-52
4. संगीत कला बिहार, मासिक पत्रिका, अक्टूबर, 1999 पृ.-310
5. हिमाचली लोकनाट्य धज्जा, डॉ. परमानंद बंसल, पृ.-337
6. राजस्थान का लोक संगीत, पुरुषोतमलाल मेनारिया, पृ.-5-6
7. लोकनाट्यों में संगीत, ज्ञानवती वेद मेहता, पृ.-209
8. भैरवी शोध पत्रिका, अंक-5, पृ.-107
9. भैरवी शोध पत्रिका, अंक-5, पृ.-57
10. संगीत का योगदान मानव जीवन के विकास में, डॉ. उमाशंकर शर्मा, पृ.-164
11. भोजपुरी संस्कृति एवं लोकनाट्य में सांगीतिक परंपरा, डॉ. सुरेंद्र कुमार, पृ.-184